महाकवि भूषण कृत

शिवराज-भूषण

(विशद भूमिका, शब्दार्थ, पद्यार्थ, ऐतिहासिक स्थानों और व्यक्तियों के परिचय सहित)

(पाँचवाँ संस्करण)

टीकाकार

पं० राजनारायण शर्मा

हिन्दी प्रभाकर

भूमिका-लेखक

श्री देवचन्द्र विशारद

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

जालन्धर और इलाहाबाद

[मूल्य ३।।)

प्रकाशक
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी-भवन
३१२ रानी मंडी;
इलाहाबाद-३

मुद्रक
इन्द्रचन्द्र नारंग
कमल मुद्रणालय
३१२, रानी मंडी
इलाहाबाद—३

समर्पण

पूज्य कुरुवर देशोपकारक श्री लाला कृष्णजसराय जी बी० ए०, एफ़०
टी० एस०, भूतपूर्व इन्स्पैक्टर-जनरल शिक्षा-विभाग अलवर,
मंत्री कमर्शियल कालेज देहली, वर्तमान मंत्री कमर्शियल
हाई स्कूल देहली, जिनकी छत्रच्छाया में मैंने शिक्षा
प्राप्त की और अब शिक्षण-कार्य करता
हुआ साहित्य-सेवा करना सीख रहा
हूँ, उन्हीं के करकमलों में
यह तुच्छ भेंट सादर
समर्पित
है
ओ३म् शम्

राजनारायण शर्मा

धन्यवाद-प्रकाश

इस टीका के लिखने में हमें जिन-जिन पुस्तकों से सहायता मिली है उनकी सूची यहाँ दी जा रही है। इन पुस्तकों के लेखकों, इनके संग्रहकर्त्ताओं एवं सम्पादक महोदयों को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

इनके अतिरिक्त हमें महामहोपाध्याय श्री० हरिनारायण जी शास्त्री, प्रोफेसर संस्कृत हिन्दू कालेज देहली; महामहोपाध्याय श्री आर्यमुनि, प्रिंसिपल संस्कृत कालेज मोगा (पंजाब); श्री पं० चन्द्रदत्त जी शास्त्री, राजपंडित अलवर; राजकवि जयदेव जी ब्रह्मभट्ट, अलवर; स्वर्गीय श्री पं० बाबूराम जी शर्मा, एम० ए०, प्रोफेसर हिंदू कालेज देहली; श्री लाला रामजीलाल जी गुप्त, एम० ए०, साहित्यरत्न; मित्रवर आचार्य पं० रामजीवनशर्मा, हिन्दी प्रभाकर, साहित्यरत्न आदि महानुभावों से पर्याप्त सहायता मिली है। एतदर्थ हम इन महानुभावों को हृदय से धन्यवाद देते हैं।

राजनारायण शर्मा

सहायक पुस्तकों की सूची

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल
२. हिन्दी भाषा और साहित्य, बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०
३. हिन्दी नवरत्न, श्री मिश्रबन्धु
४. छत्र प्रकाश, बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०
५. कविता कौमुदी, श्री रामनरेश त्रिपाठी
६. भूषण ग्रन्थावली, श्री मिश्रबन्धु
७. भूषण ग्रन्थावली, श्री रामनरेश त्रिपाठी
८. भूषण ग्रन्थावली, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता
९. भूषण ग्रन्थावली, साहित्य सेवक कार्यालय, बनारस
१०. भूषण ग्रन्थावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
११. भूषण ग्रन्थावली, श्री ब्रजरत्नदास
१२. सम्पूर्ण भूषण (मराठी) इतिहास-संशोधक-मंडल पूना
१३. शिवाबावनी, श्री राधामोहन गोकुलजी, कलकत्ता
१४. शिवाबावनी, पं० हरिशंकर शर्मा
१५. शिवाबावनी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१६. शिवाबावनी, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी
१७. शिवाबाबनी, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग
१८. छत्रसाल दशक, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी
१९. अलंकार मंजूषा, ला० भगवानदीन
२०. भारती भूषण, सेठ अर्जुनदास केडिया
२१. काव्य प्रदीप, पं० रामबहोरी शुक्ल
२२ मराठों का उत्थान और पतन, गोपाल दामोदर तामस्कर
23. Shivaji & His Times by J. N. Sarkar.
24. A History of the Maratha People by Kincaid and Parasnis.
25. Life of Shivaji Maharaj by Takakhav & Keluskar.
26. Medevial India by U. N. Ball.

सूची

कवि-परिचय

महाकवि भूषण के वास्तविक नाम से हिन्दी जगत् अब तक अनभिज्ञ है। उनका जन्म कब हुआ, देहावसान कब हुआ, यह निश्चित तौर से नहीं कहा जा सकता। कवि ने अपने वंश तथा जन्मस्थान के विषय में अपने काव्य-ग्रन्थों में जो संक्षिप्त परिचय दिया है, तथा ग्रन्थ-निर्माण की जो तिथि दी है, बस उनका उतना ही परिचय प्रामाणिक माना जा सकता है। उनके जीवन की अन्य घटनाएँ, उनके भाइयों की संख्या तथा नाम और उनके जन्म तथा देहावसान की तिथियाँ आदि सब अनुमान अन्य साहित्यिक ग्रन्थों के साक्ष्य तथा किंवदन्तियों पर ही अवलम्बित हैं।

'शिवराज-भूषण' के छंद संख्या २५ से २७ तक में भूषण अपना परिचय यों देते हैं—"शिवाजी के पास देश-देश के विद्वान याचना (पुरस्कार-प्राप्ति) की इच्छा से आते हैं; उन्हीं में एक कवि भी आया जिसे 'भूषण' नाम से पुकारा जाता था। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कश्यप गोत्र, धैर्यवान श्री रत्नाकर जी का पुत्र था और यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर नामक उस गाँव में रहता था, जिसमें बीरबल के समान महाबली राजा और कवि हुए हैं, तथा जहाँ श्री विश्वेश्वर महादेव के समान बिहारीश्वर महादेव का मन्दिर था।"

इन पद्यों में निर्दिष्ट त्रिविक्रमपुर, आधुनिक तिकवाँपुर, यमुना नदी के बाएँ किनारे पर ज़िला कानपुर, परगना व डाकखाना घाटमपुर में मौजा "अकबरपुर बीरबल" से दो मील की दूरी पर बसा है। कानपुर से जो पक्की सड़क हमीरपुर को गई है उसके किनारे कानपुर से ३० और घाटमपुर से सात मील पर सजेती नामक एक गाँव है, जहाँ से तिकवाँपुर केवल दो मील रह जाता है। "अकबरपुर बीरबल" अब भी एक अच्छा मौजा है, जहाँ अकबर बादशाह के सुप्रसिद्ध मंत्री, अंतरंग मित्र और मुसाहिब महाराज बीरबल का जन्म हुआ था। ऐसा जान पड़ता कि राजा बीरबल ने अपने आश्रयदाता तथा अपने नाम पर इस मौजे का नया नामकरण किया, पर उनसे पहले इसका क्या नाम था इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस मौजे में राधाकृष्ण का एक

प्राचीन मंदिर भी वर्त्तमान है, जिसे भूषण ने बिहारीश्वर का मंदिर लिखा है। इस प्रकार हम महाकवि भूषण के पिता, उनके वंश तथा गाँव के बारे में एक निर्णय पर पहुँच जाते हैं। पर इस गाँव में भूषण के वंश का अब कोई व्यक्ति नहीं रहता।

ऐसा प्रसिद्ध है कि भूषण के पिता रत्नाकरजी देवी के बड़े भक्त थे और उन्हीं की कृपा से उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए—चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ उपनाम जटाशंकर। ये चारों भाई सुकवि थे। सबने पर्याप्त काव्य-ग्रंथ लिखे, पर किसी ने भी अपने ग्रंथ में एक दूसरे का अथवा पारस्परिक भ्रातृत्व का उल्लेख नहीं किया। चिंतामणि, मतिराम और भूषण के भाई होने की बात कई जगह पाई जाती है। सबसे पहले हम मौलाना गुलामअली आज़ाद के 'तज़किरः सर्वे आज़ाद' में इसका उल्लेख पाते हैं। इसमें चिंतामणि के विषय में लिखा गया है कि मतिराम और भूषण चिंतामणि के ही भाई थे तथा वे कोड़ा जहानाबाद के निवासी थे। चिंतामणि संस्कृत के बड़े पंडित थे और शाहजहाँ के बेटे शुजा के दरबार में बड़ी इज्जत से रहते थे। यह ग्रन्थ सं० १८०८ में बना था और इसके लेखक गुलामअली के पितामह मीर अब्दुल जलील बिलग्रामी सैयद रहमतुल्ला के मित्र थे, जिन्होंने चिंतामणि जी को पुरस्कृत किया था। गुलामअली फारसी के सुकवि, इतिहासज्ञ तथा प्रसिद्ध गद्य-लेखक थे। अतः उनके कथन को अकारण ही अशुद्ध नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त सं० १८७२ में समाप्त हुई 'रसचन्द्रिका' के लेखक कवि बिहारीलालजी ने जो कि चरखारी-नरेश राजा विजयबहादुर विक्रमाजीत तथा उनके पुत्र महाराज रत्नसिंह के दरबार के राजकवि थे, अपना वंश-परिचय अपने ग्रन्थ में इस प्रकार दिया है—

> वसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिंदी के तीर।
> बिरच्यो भूप हमीर जनु मध्यदेश के हीर॥
> भूषण चिंतामणि तहाँ कवि भूषण मतिराम।
> नृप हमीर सनमान ते कीन्हें निज-निज धाम॥
> है पंती मतिराम के सुकवि बिहारीलाल
> जगन्नाथ नाती विदित सीतल सुत सुभ चाल

कस्यपबंस कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत।
कविराजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत ॥
विविध भाँति सनमान करि ल्याये चलि महिपाल।
आए विक्रम की सभा सुकवि बिहारीलाल ॥

मतिराम के वंशधर कविवर बिहारीलाल ने यद्यपि इन पद्यों में चिंतामणि, भूषण तथा मतिराम के भ्रातृत्व का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया, पर उन्होंने उनके जन्मस्थान, गोत्र और कुल का स्पष्टतया एक होना बताया है, जिससे गुलामअली के लेख का समर्थन होता है। महाराष्ट्र लेखक चिटणीस ने भी 'बखर' में चिन्तामणि और भूषण के भाई होने का उल्लेख किया है। तजकिरः सर्वे-आज़ाद अथवा रसचन्द्रिका में जटाशंकर उपनाम नीलकंठ का कहीं उल्लेख नहीं, अतः अधिक मत केवल तीन ही भाई मानता है; पर शिवसिंह-सरोज तथा मनोहर-प्रकाश आदि ग्रंथों में जटाशंकर को भी उनका भाई माना गया है।

कहा जाता है कि चिंतामणि सबसे बड़े भाई थे, उनसे छोटे भूषण और उनसे छोटे मतिराम थे। संवत् १८९७ में लिखे गये वंशभास्कर नामक ग्रन्थ में लिखा है—"जेठ भ्राता भूषणरु मध्य मतिराम तीजो चिंतामणि भये ये कविता-प्रवीन।" इस प्रकार वह उलटा क्रम मानता है।

भूषण का जन्म कब हुआ, यह भी अभी निर्भ्रान्त रूप से नहीं कहा जा सकता। शिवसिंह-सरोज में भूषण का जन्मकाल संवत् १७३८ विक्रमी लिखा है। कई सज्जन भूषण को शिवाजी का समकालीन नहीं मानते वरन उनके पौत्र शाहू का दरबारी कवि मानते हैं। शाहू ने अपना राज्याभिषेक-समारंभ विक्रमी संवत् १७६४ में किया। शिवसिंह-सरोज में लिखित भूषण का जन्म-काल मान लेने से अवश्य ही भूषण शाहू के दरबारी कवि कहे जायँगे। पर भूषण ने अपने ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' का समाप्तिकाल संवत् १७३० बताया है जो शिवसिंह-सरोज में लिखित उनके जन्मकाल से भी ८ वर्ष पहले ठहरता इसके अतिरिक्त भूषण-कृत 'शिवराज-भूषण' में एक विशेष बात दर्शनीय उसमें एक काल-विशेष की घटनाओं का ही विशद वर्णन है तथा किसी भी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं है जो संवत् १७३० के बाद की हो। यदि

भूषण शिवाजी के समकालीन न हो कर उनके बाद के होते तो पहले वे अपने आश्रयदाता शाहू जी को छोड़ कर शिवाजी के यश का वर्णन करने में ही अधिक समय न लगाते, और यदि शिवाजी का यश-वर्णन करते भी तो अपने अलंकार ग्रंथ में शाहू का भी उल्लेख अवश्य करते। यदि 'शिवराज भूषण' शाहू जी के समय में लिखा गया हो, तो उसमें शिवाजी के १७३० के बाद के कार्यों का भी वर्णन होना चाहिये। शिवाजी के राज्याभिषेक जैसी महत्त्वपूर्ण घटना (जो संवत् १७३१ की है) का भी शिवराज-भूषण में उल्लेख न देख कर यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि भूषण का ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' शिवाजी के राज्याभिषेक से पहले ही समाप्त हो चुका था। अतः उसमें लिखा गया समाप्तिकाल ठीक है। अंत में समाप्ति-काल-द्योतक दोहे के अतिरिक्त प्रारम्भ में भी भूषण ने शिवाजी के दरबार में जाने का उल्लेख किया है। अतः जब तक अन्य कोई बहुत प्रबल प्रमाण उपस्थित न हो तब तक कवि द्वारा लिखित तिथियों पर अविश्वास करना उचित नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार महाकवि भूषण का कविताकाल संवत् १७३० के लगभग ठहरता है, और उनका जन्म उससे कम से कम ३५—४० बरस पहले हुआ होगा। मिश्रबंधु इनका जन्मकाल उससे लगभग ५६ वर्ष पूर्व संवत् १६७१ (ई० सन् १६१४) मानते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् पं० रामचंद्र शुक्ल ने इनका जन्मकाल संवत् १६७० माना है। पर हमें यह ठीक नहीं जँचता क्योंकि यदि 'शिवराज-भूषण' की समाप्ति पर भूषण की अवस्था ६० वर्ष के लगभग मानी जाय तो शाहू के राज्याभिषेक के समय भूषण ९४ वर्ष के ठहरते हैं। अतः हमारी सम्मति में इनका जन्मकाल १६९० और १७०० के बीच में मानना चाहिये।

किंवदन्ती है कि बचपन में ही नहीं, अपितु युवावस्था के प्रारम्भ तक भूषण बिलकुल निकम्मे थे। पर उनके भाई चिन्तामणि की दिल्ली-सम्राट् के दरबार में पहुँच हो गई थी और वे ही धन कमा कर घर भेजते थे, जिससे घर का खर्च चलता था। चिन्तामणि के कमाऊ होने पर उनकी स्त्री को भी पर्याप्त अभिमान था। एक दिन दाल में नमक कम था, भूषण ने अपनी भावज से नमक माँगा। इस पर उसने ताना मार कर कहा—हाँ बहुत सा नमक कमा कर तुमने रख दिया है न, जो उठा लाऊँ! यह व्यंग्योक्ति भूषण

न सह सके, और तत्काल ही भोजन छोड़ कर उठ गये और बोले—अच्छा, अब जब नमक कमा कर लायेंगे, तभी यहाँ भोजन करेंगे। ऐसा कह भूषण घर से निकल पड़े, और उसी समय उन्होंने कवित्व शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया। सोती हुई कवित्व-शक्ति विकसित हो उठी और वे थोड़े ही दिनों में अच्छे कवि हो गये।

उन दिनों कविता द्वारा धनोपार्जन का एक ही मार्ग था, राजाश्रय। इसी मार्ग को उस समय के अनेक कवियों ने अपनाया था। भूषण के बड़े भाई चिन्तामणि भी राजाश्रय से ही धन और मान पा रहे थे। भूषण ने भी चित्रकूटाधिपति सोलंकी 'हृदयराम सुत रुद्र' का आश्रय ग्रहण किया। उस समय साधारण कवि शृंगार रस की ही कविता करते थे। पर भूषण ने उस कविता-धारा में न बह कर वीर रस की चमत्कारिणी कविता प्रारंभ की। इनकी चामत्कारिक कविताओं से प्रसन्न हो 'हृदयराम सुत रुद्र' ने इन्हें 'कवि भूषण' की उपाधि दी जैसा कि भूषण ने 'शिवराज-भूषण' के छंद-संख्या २८ में कहा है। तभी से इनका 'भूषण' नाम इतना प्रचलित हुआ कि उनके वास्तविक नाम का कहीं पता नहीं चलता।

विशाल-भारत की अगस्त सन् १९३० ई० की संख्या में कुँवर महेन्द्र-पालसिंह ने अपने एक लेख में बताया था कि तिकवाँपुर के एक भाट से उन्हें पता लगा था कि भूषण का असली नाम 'पतिराम' था जो मतिराम के वज़न पर होने से ठीक हो सकता है। पर अभी तक इस विषय में निश्चित तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता।

ये हृदयराम या रुद्रशाह सोलंकी, जिन्होंने इन्हें कवि भूषण की उपाधि दे कर सदा के लिए अमर कर दिया, कौन थे, इसके विषय में भी निश्चित तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता। भूषण ने सोलंकी-नरेश का केवल शिवराज-भूषण के छन्द सं० २८ में तथा फुटकर छन्द संख्या ४१ (बाजि बंब चढ़ो साजि) में ही उल्लेख किया है। अग्निकुल से चार क्षत्रिय कुलों का जन्म हुआ कहा जाता है, जिनमें एक सोलंकी भी हैं। रुद्रशाह सोलंकी का पता तो इतिहास में नहीं मिलता पर उनके पिता हृदयराम का नाम मिलता है। ये गहोरा प्रान्त के राजा थे। गहोरा चित्रकूट से तेरह मील पर है। चित्रकूट

पर भी इनका उस समय राज्य प्रतीत होता है। कर्वी जो चित्रकूट से तीन ही मील पर है, इनके राज्य में सम्मिलित था। संवत् १७८२ के लगभग महाराज छत्रसाल ने शेष बुन्देलखंड के साथ इस राज्य पर भी अधिकार कर लिया था।

रीवाँ का बघेल राजवंश सोलंकी ही है। कई कहते हैं कि इनके ज़मीदारों में से बर्दी के एक बाबू रुद्रशाह हो गये हैं जिनके पिता का या बड़े भाई का नाम हरिहरशाह था।

कुछ लोग भूषण के 'हृदयराम सुत रुद्र' का अर्थ रुद्र का पुत्र हृदयराम करते हैं। उनके अर्थानुसार गहोरा प्रान्त (चित्रकूट) के अधिपति रुद्रशाह के पुत्र हृदयराम ने इन्हें कवि भूषण की पदवी दी थी। पर अभी तक इस विषय में निश्चित तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता।

कवि भूषण के सब जीवन-लेखक इस बात में सहमत हैं कि भूषण ने पहले-पहल सोलंकी-नरेश का आश्रय लिया था, जिन्होंने इन्हें 'भूषण' की पदवी दी। पर इस राज्य से भूषण कहाँ गये, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि भूषण यहाँ से दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब के दरबार में गये, जहाँ कि उनके भाई चिन्तामणि पहले ही रहते थे। वहाँ से वे शिवाजी के यहाँ पहुँचे। दूसरों का मत है कि शिवाजी की ख्याति तथा वीरता का हाल सुन कर भूषण सोलंकी-नरेश का आश्रय छोड़ कर वहाँ से सीधे मराठा दरबार में गये। पहले मत वाले भूषण के शिवाजी के दरबार में पहुँचने तक की नीचे लिखी कहानी कहते हैं।

दिल्ली पहुँचने के अनन्तर अपने भाई चिन्तामणि के साथ भूषण भी दरबार में जाने लगे। एक दिन औरंगज़ेब ने भूषण की कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। भूषण ने कहा कि मेरे भाई चिन्तामणि की शृङ्गार की कविता सुन कर आपका हाथ ठौर-कुठौर पड़ने के कारण गंदा हो गया होगा, पर मेरा वीर-काव्य सुन कर वह मूँछों पर पड़ेगा। इसलिए मेरी कविता सुनने से पहले उसे धो लीजिए। यह सुन कर औरंगज़ेब ने कहा कि यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हें प्राण-दण्ड दिया जायगा। भूषण ने इसे स्वीकार कर लिया। बादशाह हाथ धो कर सुनने बैठा। अब भूषण ने फड़कते स्वर में अपने वीर-रस के पद सुनाने प्रारम्भ किये। अंत में उनका कहना ठीक निकला। बादशाह

का हाथ मूँछों पर पहुँच गया। बादशाह यह देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भूषण को पारितोषिक आदि दे कर सम्मानित किया। अब भूषण का दरबार में अच्छा मान होने लगा। पर ऐसे उत्कृष्ट छंद कौन से थे, जिन्होंने औरंगज़ेब का हाथ मूँछों पर फिरवा दिया, इसका पता नहीं लगता। श्री कुँवर महेन्द्रपालसिंह जी कहते हैं कि भूषण का वह छंद निम्नलिखित था—

कीन्हें खंड-खंड ते प्रचंड बलबंड बीर,
मंडल मही के अरि-खंडन भुलाने हैं।
लै-लै दंड छंडे ते न मंडे मुख रंचकहू,
हेरत हिराने ते कहूँ न ठहराने हैं॥
पूरब पछाँह आन माने नहिं दच्छिनहू,
उत्तर धरा को धनी रोपत निज थाने हैं।
भूषन भनत नवखंड महि-मंडल में,
जहाँ-तहाँ दीसत अब साहि के निसाने हैं॥

भूषण ने किस प्रकार औरंगज़ेब का दरबार छोड़ा इस विषय में भी एक बड़ी सुन्दर दन्त-कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि एक दिन बादशाह ने कवियों से कहा कि तुम लोग सदा मेरी प्रशंसा ही किया करते हो, क्या मुझ में कोई ऐब नहीं है? अन्य कवि लोग तो चापलूसी करते रहे, पर जातीय कवि भूषण से चुप न रहा गया। अभय दान ले कर उन्होंने "किबले की ठौर बाप बादशाह शाहजहाँ" (शि० बा० छं० १२) तथा 'हाथ तसबीह लिये प्रात उठै बन्दगी को' (शि० बा० छं० १३) ये दो पद सुनाये। औरंगज़ेब का चेहरा तमतमा उठा; वह भूषण को प्राणदंड देने को उद्यत हो गया, पर दरबारियों ने अभय वचन की याद दिला कर भूषण की जान बचाई। अब भूषण ने वहाँ रहना उचित न समझा और अपनी द्रुतगामिनी कबूतरी घोड़ी पर चढ़ कर उन्होंने दक्षिण की राह ली।

भूषण जब दिल्ली को छोड़ कर अपनी घोड़ी पर चढ़े जा रहे थे तो रास्ते में हाथी पर चढ़ कर नमाज़ पढ़ने के लिए आता हुआ बादशाह मिला। भूषण ने उसकी ओर देखा तक नहीं। तब बादशाह ने एक दरबारी द्वारा भूषण से पुछवाया कि वे कहाँ जा रहे हैं। भूषण ने उत्तर दिया कि अब मैं

छत्रपति शिवाजी महाराज के दरबार में रहूँगा, वहीं जा रहा हूँ। बादशाह ने यह बात सुन कर इन्हें पकड़ने की आज्ञा दी, पर इन्होंने जो एड़ लगाई तो पीछा करने वाले मुख देखते रह गये और ये हवा हो गये।

परन्तु इस किंवदन्ती पर विश्वास करने वाले यह भूल जाते हैं कि औरंगज़ेब दशरथ नहीं था। ये दोनों छन्द सुन कर औरंगज़ेब ने वचनबद्ध होने के कारण भूषण को छोड़ दिया यह हम नहीं मान सकते।

कइयों का यह भी कहना है कि जब शिवाजी दिल्ली आये तो भूषण की भी इनसे भेंट हुई थी। यदि यह बात सत्य मानी जाय तो भूषण के दक्षिण पहुँचने की आगे दी गई कथा सत्य नहीं प्रतीत होती।

ऐसा कहा जाता है कि संध्या के समय रायगढ़ पहुँच कर भूषण एक देवालय में ठहर गये। संयोग-वश कुछ रात बीते महाराज शिवाजी छद्मवेश में वहाँ पूजा करने के लिए आये। बात-चीत में भूषण ने अपने आने का प्रयोजन कह डाला। इनका परिचय पा कर उस तेजस्वी छद्मवेशी व्यक्ति ने इनसे कुछ सुनाने को कहा। भूषण ने उस व्यक्ति को उच्च राज-कर्मचारी विचार कर तथा उसके द्वारा दरबार में शीघ्र प्रवेश पाने की आशा कर उसे प्रसन्न करना उचित समझा तथा "इंद्र जिमि जम्भ पर" (शि० भू० छं० ५६) फड़कती आवाज़ में पढ़ सुनाया। उसे सुन कर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पुनः सुनाने को कहा। इस प्रकार १८ बार उस छन्द को पढ़ कर भूषण थक गये। उस छद्मवेशी व्यक्ति के पुनः आग्रह करने पर भी वे अधिक बार न पढ़ सके। तब अपनी प्रसन्नता प्रकट कर तथा दूसरे दिन दरबार में आने पर शिवाजी से साक्षात्कार कराने का वचन दे कर उस छद्मवेशी व्यक्ति ने उनसे बिदा ली। दूसरे दिन जब भूषण दरबार में पहुँचे तो उसी छद्मवेशी व्यक्ति को सिंहासन पर बैठे देख कर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। भूषण समझ गये कि कल छंद सुनने वाले व्यक्ति स्वयं शिवाजी महाराज थे। शिवाजी ने भी उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और कहा कि मैंने यह निश्चय किया था कि आप जितनी बार उस छंद को पढ़ेंगे, उतने ही लाख रुपये, उतने ही गाँव, तथा उतने ही हाथी आपकी भेंट करूँगा। आपने १८ बार वह छंद सुनाया था, अतएव १८ लाख रुपया, १८ गाँव और १८ हाथी आपकी भेंट किये जाते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि भूषण ने उस छद्मवेशी व्यक्ति को प्रथम भेंट के अवसर पर केवल एक ही कवित्त १८ बार या ५२ बार न सुनाया था अपितु भिन्न-भिन्न ५२ कवित्त सुनाये थे, जो शिवाबावनी ग्रंथ में संगृहीत हैं। और शिवाजी ने उन्हें ५२ हाथी, ५२ लाख रुपये तथा ५२ गाँव दिये थे। कुछ भी हो, इतना निर्विवाद है कि भूषण के कवित्त शिवाजी ने सुने अवश्य थे और प्रसन्न हो कर उन्हें प्रचुर धन भी दिया था। कहते हैं कि भूषण ने उसी समय नमक का एक हाथी लदवा कर अपनी भाभी के पास भेज दिया।

शिवाजी से पुरस्कृत होने के अनन्तर भूषण उनके दरबार में राजकवि पद पर प्रतिष्ठित हुए और वहाँ रह कर कविता करने लगे। हिन्दूजाति के नायक तथा 'हिन्दवी स्वराज्य' की सर्वप्रथम कल्पना करने वाले शिवाजी के उन्नत चरित्र को देख कर महाकवि भूषण के चित्त में उसको भिन्न भिन्न अलंकारों से भूषित कर वर्णन करने की इच्छा उत्पन्न हुई*। तदनुसार शिवराज-भूषण नामक ग्रंथ की रचना हुई, जिसमें भूषण ने अलंकारों के लक्षण दे कर उदाहरणों में अपने चरित्र-नायक शिवाजी के चरित्र की भिन्न-भिन्न घटनाओं, उनके यश, दान और उनकी महत्ता का ओजस्वी छन्दों में उल्लेख किया। वीर रसावतार नायक के अनुरूप ही ग्रंथ में भी वीर-रस का ही परिपाक है। यह ग्रंथ शिवाजी के राज्याभिषेक से प्रायः एक वर्ष पूर्व संवत् १७३० में समाप्त हुआ, जो कि उसके छन्द संख्या ३८२ से स्पष्ट है। कुछ लोग उसकी समाप्ति सवत् १७३० में कार्तिक या श्रावण मास में मानते हैं, और कुछ लोग प्रथम पंक्ति का पाठान्तर करके उसकी समाप्ति ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी को मानते हैं। पिछले मत के पोषक अधिक हैं।

यहाँ पर यह प्रश्न विचारणीय है कि भूषण शिवाजी के दरबार में कब पहुँचे, और वहाँ कब तक रहे। इस प्रश्न के बारे में भी हमें भूषण के ग्रन्थों का ही सहारा लेना पड़ता है। भूषण ने शिवराज-भूषण के १४वें दोहे में लिखा है:—

---

* शिव-चरित्र लखि यों भयो कवि भूषण के चित्त।
भाँति-भाँति भूषणनि सों भूषित करौं कवित्त॥

दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास ।
सिव सेवक सिव गढ़पती, कियो रायगढ़-बास ॥

और उसके बाद कई छन्दों में उसी रायगढ़ का वर्णन किया है । आगे
भी तद्गुण अलंकार में रायगढ़ की विभूति का वर्णन है । इतिहास को देखने
से पता चलता है, कि सं० १७१६ (सन् १६६२) में शिवाजी ने रायगढ़ को
अपनी राजधानी बनाया । शाहजी की मृत्यु होने पर शिवाजी ने अहमदनगर
द्वारा प्राप्त पैतृक राजा की उपाधि को धारण कर संवत् १७२१ (सन् १६६४)
में रायगढ़ में टकसाल खोली थी ।

भूषण का कथन इस ऐतिहासिक वर्णन का समर्थन करता है, अतः
यह तो निश्चित है कि भूषण शिवाजी के पास तभी पहुँचे होंगे, जब वे रायगढ़
में वास कर चुके थे और राजा की उपाधि धारण कर चुके थे ।

मिश्रबन्धुओं का मत है, कि भूषण संवत् १७२४ (सन् १६६७) में
शिवाजी के पास गये । इसके लिए वे निम्नलिखित युक्ति देते हैं—यदि भूषण
संवत् १७२३ (सन् १६६६) से पहले शिवाजी के पास पहुँचे होते तो जब
शिवाजी औरंगजेब के दरबार में गये थे, तब भूषण दक्षिण से अपने घर चले
आये होते और फिर एक ही साल में यात्रा के साधनों के अभाव में इतना
लम्बा सफर करके अपने घर से फिर महाराष्ट्र देश तक न पहुँच सकते । मिश्र-
बन्धुओं की यह युक्ति एकदम उपेक्षणीय नहीं, अतः हम समझते हैं कि भूषण
सं० १७२० या १७२४ में शिवाजी के दरबार में पहुँचे होंगे ।

अब रहा दूसरा प्रश्न कि भूषण शिवाजी के दरबार में कब तक रहे
और क्या भूषण शिवाजी के दरबार में एक ही बार गये अथवा दो बार ।
शिवराज-भूषण तथा उनके अन्य प्राप्त पद्यों में शिवाजी के राज्याभिषेक जैसी
महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख न देख कर जहाँ यह प्रतीत होता है कि भूषण
राज्याभिषेक से पूर्व ही शिवाजी से पर्याप्त पुरस्कार पा कर अपने घर लौट आये
होंगे, वहाँ फुटकर छन्द सं० १६ में "भूषण भनत कौल करत कुतुबशाह चाहै
चहुँ ओर रच्छा एदिलसा भोलिया" फुटकर छंद संख्या २५ में "दौरि कर-
नाटक मैं तोरि गढ़कोट लीन्हें मोदी सों पकरि लोदि सेरखाँ अचानकों"
तथा फुटकर छंद सं० ३३ में "साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तब

बाहुबल राखी पातसाही बीजापुर की" देख कर यह प्रकट होता है कि भूषण शिवाजी के स्वर्गवास के समय दक्षिण में ही थे। क्योंकि शिवाजी ने संवत् १७३४ (सन् १६७७) में कर्नाटक पर चढ़ाई करने और अपने भाई व्यंकोजी को परास्त करने के लिए प्रयाण किया था। उस समय गोलकुंडा के सुलतान ने शिवाजी को वार्षिक कर तथा सहायता देने का वचन दिया था, और इस प्रयाण में बीजापुर के सरदार शेरखाँ लोदी ने जो त्रिमली महाल (आधुनिक त्रिनोमल्ली) का गवर्नर था, शिवाजी को रोकने का प्रयत्न किया था, जिसमें वह बुरी तरह परास्त हुआ था (देखिये A History of the Maratha People by Kincaid and Parasnis)। इसी प्रकार बीजापुर की रक्षा का काम शिवाजी के जीवन का अंतिम काम था (देखिये 'मराठों का उत्थान और पतन' पृ० १५६)।

भूषण-ग्रन्थावली के एक दो संपादकों ने यह कल्पना की है कि 'शिवराज-भूषण' अभिषेक से ठीक १५ दिन पहले समाप्त हुआ, और भूषण ने उस ग्रन्थ का निर्माण शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर अपनी ओर से एक सुन्दर भेंट देने के विचार से ही किया था। इस तरह वे अप्रत्यक्ष तौर से भूषण का शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर उपस्थित होना मानते हैं। यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि शिवराज-भूषण समाप्त हुआ सं० १७३० में और शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ ज्येष्ठ शुक्ल १३ वि० सं० १७३१ (शक संवत् १६९६, ६ जून १६७४) को। इस तरह शिवराज-भूषण राज्याभिषेक से कम से कम एक वर्ष पूर्व समाप्त हो गया था। इस तरह उनकी यह कल्पना सर्वथा निराधार है। ऐसी हालत में दो ही बातें हो सकती हैं। या तो भूषण ने शिवाजी के जीवन पर और भी कोई ग्रन्थ लिखा हो, जिसमें उन्होंने शिवाजी के राज्याभिषेक आदि बातों का उल्लेख किया हो जो कि अब तक अलभ्य है† या यह मानना पड़ेगा वि० सं० १७३० (सन्

† 'शिवसिंह सरोज के लेखक तथा अन्य विद्वान् भी भूषण-कृत 'भूषण हज़ारा', 'भूषण उल्लास' तथा 'दूषण उल्लास' ये तीन ग्रंथ और मानते हैं, जो अब तक नहीं मिले।

१६७३) में 'शिवराज-भूषण' समाप्त कर उसे अपने आश्रयदाता की भेंट कर फलतः उनसे पर्याप्त पुरस्कार पा कर भूषण कुछ दिनों के लिए अपने घर लौटे, और कुछ वर्ष घर पर आराम कर वे फिर शिवाजी के दरबार में गये, जहाँ रह कर वे समय-समय पर कविता करते रहे; जिसमें से कुछ पद अब अप्राप्य हैं। शिवाजी का स्वर्गवास हो जाने पर भूषण भी कदाचित् दक्षिण को छोड़ कर चले गये होंगे क्योंकि उस समय मराठा राज्य एक ओर गृहकलह में व्यस्त था, दूसरी ओर औरंगज़ेब का प्रकोप बढ़ रहा था। साथ ही शंभाजी के दरबार में कलश कवि की प्रधानता थी। भूषण की कविता में शंभाजी-विषयक कोई पद नहीं मिलता! शिवाबावनी के पद्य संख्या ४६ में कुछ लोग 'सिवा' के स्थान पर 'संभा' पाठ कहते हैं, पर वह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि शंभाजी को कभी सतारा पर चढ़ाई करने का अवसर नहीं मिला।*

भूषण की प्रायः सारी कविता शिवाजी पर ही आश्रित है, पर उसमें कहीं-कहीं कुछ पद्य तत्कालीन राजाओं पर भी मिलते हैं, जो आटे में नमक के समान हैं। इन पद्यों में सब से अधिक छत्रसाल बुँदेला पर हैं। छत्रपति शिवाजी के अनंतर वीररस-प्रेमी कवि को मनोनुकूल चरित-नायक उस वीर छत्रसाल के अतिरिक्त और मिल ही कौन सकता था, जिसने कुल पाँच सवारों और २५ पियादों की सेना ले कर असीम सत्ताधारी मुगलसाम्राज्य, तथा पराधीनता-प्रेमी अपने सारे रिश्तेदारों से टक्कर ली, उन्हें नीचा दिखाया और स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। ऐसा प्रतीत होता है कि शिवाजी के स्वर्गवासी होने के अनन्तर दक्षिण से लौटते हुए भूषण महाराज छत्रसाल के यहाँ गये होंगे और वहाँ उनका अभूतपूर्व आदर हुआ होगा।

छत्रसाल शिवाजी का बड़ा आदर करते थे, और भूषण थे शिवाजी के राजकवि। किंवदन्ती है कि जब भूषण वहाँ से विदा होने लगे तो महाराज छत्रसाल ने उनकी पालकी का डंडा अपने कंधे पर रख लिया। भूषण यह देख कर पालकी से कूद पड़े और महाराज की प्रशंसा में उन्होंने दस कवित्त

---

* इस पद में 'सिवा' अथवा 'संभा' के स्थान पर 'साहू' पाठ अधिक उपयुक्त है।

पढ़े जो छत्रसाल दशक के नाम से प्रसिद्ध हैं। यद्यपि महाराज छत्रसाल द्वारा किये गये सम्मान में संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे स्वयं कवि थे, और कवियों का सम्मान करते थे; परन्तु छत्रसाल-दशक के सब पद एक समय में लिखे गये नहीं प्रतीत होते।

उसमें से कुछ पदों में छत्रसाल की प्रारंभिक अवस्था का वर्णन है और कुछ पदों में ऐसी घटनाएँ वर्णित हैं, जो उस समय तक घटी भी न थीं। फिर भूषण को दक्षिण में दो तीन बार जाना पड़ा था। आते-जाते वे उस वीर-केसरी के यहाँ अवश्य ठहरते होंगे और इस प्रकार भिन्न-भिन्न पद भिन्न-भिन्न समय में रचे गये प्रतीत होते हैं।

कुमाऊँ-नरेश के यहाँ भूषण के जाने की किंवदन्ती भी बड़ी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि भूषण ने वहाँ अपना "उलहत मद अनुमद ज्यों जलधिजल" इत्यादि छंद (फुटकर संख्या ४८) पढ़ा। जब वे विदा होने लगे तो कुमाऊँ-नरेश उन्हें एक लाख रुपये देने लगे। भूषण ने कहा—शिवाजी ने मुझे इतने रुपये दे दिये हैं कि मुझे अब और की चाह नहीं है। मैं तो केवल यह देखने आया था कि महाराज शिवराज का यश यहाँ तक पहुँचा है या नहीं। यह कह भूषण बिना रुपये लिये घर लौट आये। चिटनीस ने बखर में शिवाजी के यहाँ जाने के पहले ही भूषण का कुमाऊँ जाना लिखा है। भूषण के वहाँ से चले आने के बारे में लिखा है कि एक दिन राजा ने पूछा कि क्या मेरे ऐसा भी कोई दानी इस पृथ्वी पर होगा। भूषण ने कहा—बहुत से। जब राजा इन्हें एक लाख रुपया देने लगा तो इन्होंने यह कह कर रुपया लेना अस्वीकार कर दिया कि अभिमान से दिया हुआ रुपया हम नहीं लेंगे। यह कह कर वे वहाँ से दक्षिण चले गये। पता नहीं इन किंवदन्तियों में कितना सार है।

सं० १७३७ में शिवाजी का स्वर्गवास होने पर भूषण उत्तर भारत में चले आये थे, और संवत् १७६४ तक वे उत्तर भारत में ही रहे क्योंकि यह समय मराठों की आपत्ति का था। इस लंबे समय में शायद वे अपने भाई-बंधु आदि के आग्रह से उनके आश्रयदाताओं के दरबार में भी गये हों। क्योंकि उनकी फुटकर कविता में कई राव-राजाओं की प्रशंसा में लिखे गये

छन्द मिलते हैं। परन्तु इतना निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि शिवाजी
के यहाँ से पर्याप्त पुरस्कार पाने के बाद भूषण इन छोटे मोटे राजाओं के पास
आश्रय या धन की लालसा से न गये होंगे। और उन्होंने महाराज
छत्रसाल को छोड़ कर और किसी की प्रशंसा में एक दो से अधिक छन्द लिखे
भी नहीं।

संवत् १७६४ में शिवाजी का पोता छत्रपति शाहू गद्दी पर बैठा। उसके
बाद भूषण फिर दक्षिण को गये। पर वहाँ कब गये और कब तक रहे इसके
बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि भूषण-ग्रंथावली के किसी संस्करण में
शाहू के बारे में केवल दो और किसी में चार छंद मिलते हैं।

फुटकर छंद संख्या ३७ 'बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारे' से
शाहू के राज्य के समृद्धिकाल का पता लगता है, क्योंकि इतिहास-ग्रंथों को
देखने से ज्ञात होता है कि जब शाहू सतारे की गद्दी पर बैठा तो उसका राज्य
सतारा किले के आस-पास कुछ दूर तक ही था, पर कुछ ही दिनों में उसका
राज्य बढ़ने लगा, और जब उसकी मृत्यु हुई तब सारे मुगल-साम्राज्य पर उसकी
धाक थी। †

फुटकर छन्द संख्या ३८ की अंतिम पंक्ति—'दिल्लीदल दाहिबे को
दच्छिन के केहरी के चंबल के आरपार नेजे चमकत है'—से मल्हारराव होलकर
तथा मुगल सूबेदार राजा गिरधर राव के सं० १७८३ (सन् १७२६) के युद्ध
का आभास मिलता है।

इसी प्रकार फुटकर छंद संख्या ३६—'भेजे लिख लग्न शुभ गनिक
निजाम बेग'—में वर्णित घटना संवत् १७८८ (सन् १७३१) की है। यह
छंद दो एक संस्करणों में ही है, और हमें इस छंद के भूषण-कृत होने में स्वयं
सन्देह है। यदि भूषण का जन्मकाल १७०० के लगभग माना जाय तो यह
भूषण का हो सकता है।

---

† "When he ascended the throne his Kingdom was a mere strip of land round Satara fort. When he left it, it completely over-shadowed thd Mughal Empire."

शाहूजी के यहाँ जाते-आते भूषण छत्रसाल के यहाँ एक बार दुबारा अवश्य ठहरे होंगे। तभी उन्होंने लिखा है—'और राव-राजा एक मन में न ल्याऊँ अब साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को।'

भूषण की मृत्यु कब हुई, उनकी संतान कितनी थीं, इसका कुछ पता नहीं। मृत्यु-तिथि का तब तक निश्चय भी नहीं हो सकता, जब तक यह निश्चय न हो जाय, कि फुटकर छंदों में से कौन से भूषण के हैं तथा कौन से अन्य कवियों के। परन्तु इतना निश्चय है कि भूषण दीर्घजीवी थे और यदि उनका जन्मकाल संवत् १६६० और १७०० के बीच में हो तो मृत्युकाल संवत् १७८५ और १७९५ के बीच में मानना होगा।

शिवसिंह-सरोज में भूषण के बनाये हुए चार ग्रंथों का नाम लिखा है—शिवराज-भूषण, भूषण-हजारा, भूषण-उल्लास और दूषण-उल्लास। इनमें से अन्तिम तीन ग्रंथ आज तक नहीं छपे; और न किसी विद्वान ने उनको स्वयं देखने का उल्लेख ही किया है। अभी तक उनके बनाथे हुए शिवराज-भूषण, शिवाबावनी, छत्रसाल-दशक तथा कुछ स्फुट छंद ही मिलते हैं। शिवाबावनी स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, ५२ स्फुट पदों का संग्रह मात्र है। यही बात संभवतः छत्रसाल-दशक के विषय में भी कही जा सकती है। यह निस्संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है, कि भूषण की जितनी कविता आजकल उपलब्ध है, उससे कहीं अधिक उन्होंने लिखी होगी और कालचक्र के प्रभाव से हिन्दी-संसार उनकी बहुत सी अनुपम रचनाओं को खो बैठा है।

शिवाजी

शृंगाररस के कुछ पदों को छोड़ कर भूषण की शेष सारी कविता छत्रपति शिवाजी, शाहूजी तथा छत्रसाल जैसे वीरों पर आश्रित है। अतः उस पर आलोचना करने से पहले उनका जीवन-चरित्र देना आवश्यक है।

मेवाड़ के सीसोदिया-नरेश राणा लक्ष्मणसिंह का पोता सज्जनसिंह चित्तौड़ छोड़ कर सोंधवाड़ा में रहने लगा। उसके वंशजों में से देवराजजी नाम का एक पुरुष संवत् १४७२ (सन् १४१५) के लगभग दक्षिण में आया और उदयपुर की भोंसावत जागीर का मालिक होने के कारण भौंसिला कहा जाने लगा। इस वंश में सबसे प्रसिद्ध मालोजी—भूषण इन्हें स्थान-स्थान पर मालमकरंद[1] कहते हैं—हुए। मालोजी ने अपने बाहु-बल से खूब नाम कमाया। अहमदनगर के निज़ामशाह की सेना में उन्हें सिलेदारी मिल गई। इसके बाद मालोजी की उन्नति दिन-प्रतिदिन होने लगी। उनके कोई लड़का न था। एक मुसलमान पीर शाहशरीफ की मिन्नत करने से उनका पहला लड़का हुआ। उस पीर के नाम पर उसका नाम शाहजी[2] रक्खा गया।

शाहजी का विवाह जाधवराव की लड़की जीजाबाई से हुआ। इस बीच में मालोजी ने अच्छी उन्नति कर ली थी। वे पाँचहज़ारी मनसबदार हो गये थे और राजा का खिताब पा चुके थे। शिवनेरि और चाकन के किले तथा पूना और सूपा के दो परगने उन्होंने जागीर में प्राप्त कर लिये थे। मालोजी के बाद शाहजी ने भौंसिला वंश का नाम खूब बढ़ाया। पिता की जगह ये भी अहमदनगर के मनसबदार बने। अहमदनगर के साथ मुगलों का जो युद्ध हुआ, उसमें शाहजी ने भी भाग लिया। पर पीछे अहमदनगर के तत्कालीन शासक से अनबन हो जाने के कारण शाहजी बीजापुर दरबार में चले आये, जहाँ उस समय इब्राहीम आदिलशाह राज्य करता था। उसके

---

१. भूमिपाल तिन में भयो बड़ो मालमकरन्द। शि० भू० ६

२. भूषण भनि ताके भयो, भुव-भूषण नृप-साहि। शि० भू० ६

बाद शाहजी दिल्ली, बीजापुर और अहमदनगर के परस्पर के युद्धों में भाग लेते रहे।

मुगलों के साथ के इन युद्धों में शाहजी को इधर से उधर अपनी प्राण-रक्षा के लिए भागना पड़ता था। इसी बीच जब शाहजी इधर से उधर प्राण रक्षा के लिए भाग रहे थे, तब शिवनेरि के दुर्ग में संवत् १६८४ में शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी के जन्म के कुछ समय बाद शाहजी ने दूसरा विवाह कर लिया और उन्होंने जीजाबाई तथा शिवाजी से प्रायः सम्बन्ध तोड़-सा लिया। शाहजी बीजापुर में रहते थे और जीजाबाई तथा शिवाजी उनकी पूना और सूपा की जागीर में। उस समय शिवाजी की शिक्षा का भार दादाजी कोंडदेव पर था। उस वृद्ध अभिभावक तथा आचार्य और वीर-माता जीजाबाई ने शिवाजी को बचपन में ही जहाँ अस्त्र-शस्त्र में प्रवीण कर दिया था, वहाँ महाभारत तथा पुराणों की कथाएँ सुना कर उनमें जातीयता और राष्ट्रीयता के भाव भर दिये थे। उन्हें सिखा दिया था कि उन्हें कभी इस बात को न भूलना चाहिये कि वे देवगिरि के यादवों तथा उदयपुर के राणाओं के वंशज हैं। बचपन ही से शिवाजी को शिकार का शौक था। दादाजी के आदेशानुसार वे अपने बचपन के साथी मावलियों की टोली बना कर मावल और कोंकण के प्रदेशों तथा सह्याद्रि के पहाड़ों में कई-कई दिन तक घूमते रहते थे। इस प्रकार अठारह साल के शिवाजी अनथक, निर्भय और भक्त नवयुवक हो गये। उन्होंने अपने पिता की तरह बीजापुर या दिल्ली दरबार की नौकरी करने की बजाय स्वतन्त्र हिन्दवी-राज्य की कल्पना की।

सं० १७०३ में सबसे पहले अपने पिता की जागीर के दक्षिणी सीमान्त पर स्थित तोरण दुर्ग को हस्तगत कर शिवाजी ने अपने भावी कार्य-क्रम का सूत्रपात किया। वहाँ उन्हें गड़ा हुआ काफी खजाना मिला। इस धन से शिवाजी ने अस्त्र-शस्त्र तथा गोला-बारूद खरीदा और उस दुर्ग से छह मील की दूरी पर ही मोरबंद नामक पर्वत-शृंग पर एक और किला बनवाया जिसका नाम राजगढ़ रक्खा। यह देखते ही बीजापुर के सुलतान के कान खड़े हो गये। उसने शाहजी द्वारा दादाजी कोंडदेव को लिखवाया, पर शीघ्र ही दादाजी जराग्रस्त हो कर इस संसार को छोड़ गये। उसके बाद शिवाजी ने तीन सौ

सिपाही ले कर रात के समय, अचानक पहुँच कर अपनी विमाता के भाई संभाजी मोहिते से अपने पिता की सूपा की जागीर भी छीन ली। फिर पूना से १२ मील की दूरी पर स्थित कोंडाना नामक दुर्ग उसके मुसलमान अधिकारी से ले लिया तथा कुछ ही दिन बाद पुरंदर का किला ले कर शिवाजी ने अपने दक्षिणी सीमांत को सुरक्षित बना लिया।

इसके बाद एक दिन शिवाजी ने कोंकण से बीजापुर को जाता हुआ शाही खजाना लूट लिया, और फिर उत्तर महाल के नौ किलों पर अधिकार कर लिया, जिनमें लोहगढ़, राजमाची और रैरि प्रसिद्ध हैं।

बीजापुर दरबार ने समझा कि शाहजी के इशारे पर ही शिवाजी यह उत्पात मचा रहा है, अतः उसने अपने एक दूसरे मराठा सरदार बाजी घोरपड़े को शाहजी को कैद करने का आदेश दिया। घोरपड़े ने एक षड्यन्त्र रच कर शाहजी को कैद कर लिया। पिता के कैद होने का समाचार सुन शिवाजी दुविधा में पड़ गये। यदि वे बीजापुर के विरुद्ध युद्ध करते, तो यह निश्चित था कि बीजापुर का सुलतान उनके पिता का वध कर देता। यदि वे युद्ध बन्द कर स्वयं बीजापुर जाते, तो उनका अन्त निश्चित था। राजनीति-कुशल शिवाजी ने मुगल बादशाह शाहजहाँ से सन्धि-वार्ता आरम्भ की। शाहजहाँ ने बीजापुर दर-बार को शाहजी को छोड़ने के लिए लिखा। यह देख बीजापुर दरबार डर गया, क्योंकि यदि शिवाजी और मुगल मिल जाते तो बीजापुर दरबार कुचला जाता। फलतः बीजापुर दरबार ने उन्हें छोड़ दिया। पर शाहजी अभी बीजापुर दरबार में ही थे, इसलिए यदि शिवाजी बीजापुर के विरुद्ध कोई कार्य करते तो शाहजी पर संकट आ सकता था। इसी प्रकार बीजापुर दरबार भी शिवाजी और मुगलों की संधि से डरता था, अतः बीजापुर दरबार ने गुप्त षड्यन्त्र द्वारा शिवाजी को जीवित या मृत पकड़ना चाहा और बाजी शामराजे को इसके लिए नियुक्त किया। बाजी शामराजे ने इसमें जावली के राजा चन्द्रराव मोरे की सहायता माँगी।

जावली प्रान्त कोयना नदी की घाटी में ठीक महाबलेश्वर के नीचे था। यह एक तीर्थ-स्थान था। अतएव शिवाजी यहाँ बहुधा जाया करते थे। अपने गुप्तचरों द्वारा शिवाजी को इस षड्यन्त्र का पता लग गया, और उनकी हत्या

के लिए जो व्यक्ति उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे, उनपर अकस्मात् आक्रमण कर शिवाजी ने उन्हें भगा दिया। कुछ दिन के अनन्तर शिवाजी के सेनापति रघुबल्लाल अत्रे तथा शम्भूजी कावजी ने सं० १७१२ (सन् १६५६) में चन्द्रराव मोरे को मार डाला। शिवाजी ने अपनी सेना सहित जावली पर आक्रमण कर दिया, और उसपर अधिकार कर लिया[1]। वहाँ शिवाजी को बहुत-सा धन मिला, और उससे उन्होंने उसी स्थान पर प्रतापगढ़ नामक किला बनाया।

इसी समय मुगल बादशाह शाहजहाँ का लड़का और प्रतिनिधि औरंग-ज़ेब बीजापुर आदि राज्यों को हस्तगत करने के लिए दक्षिण गया। शिवाजी और औरंगज़ेब ने मिल कर बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। बेदर और कल्याण के किले औरंगज़ेब के हाथ में आ गये।[2] पर इतने में शिवाजी और बीजापुर का मेल हो गया और बेदर तथा कल्याण के किले शिवाजी ने ले लिये। शिवाजी और बीजापुर का मेल देख कर मुगल बादशाह गुस्से से लाल हो गया। इधर शिवाजी की सेना ने भी मुगल इलाकों में लूट प्रारम्भ की। यहाँ तक कि वे लूटते-लूटते अहमदनगर के इलाके तक पहुँच गये। तब राव करन तथा शाइस्ताखाँ मराठों को कुचलने को भेजे गये। इसपर भी जब लूट बढ़ने लगी

---

१. चन्द्रावल चूर करि जावली जपत कीन्ही। (शि० बा० २८)

He and his troops pushed on at once to Jaoli......... overran in a few days the entire fief. (A History of the Maratha People by Kincaid and Parasnis, P. 151)

२. बेदर कल्याण घमासान कै छिनाय लीन्हे
जाहिर जहान उपखान यही चल ही। (फु० २४)

उसी समय प्रसन्न हो कर औरंगज़ेब ने शिवाजी को जो पत्र लिखा, उसका श्री किनकेड तथा पारसनीस अपनी पुस्तक A History of the Maratha People में इस प्रकार अनुवाद देते हैं।

"Day by day we are becoming victorious. See the impregnable Bedar fort, never before taken, and Kalyani, never stormed even in men's dreams heve fallen in a day."

तो खानदौरा नासीरी खाँ भी घटनास्थल पर पहुँच गया। शिवाजी से उसका घोर युद्ध हुआ।[१] युद्ध में मराठों के पैर उखड़ गये, और वे वहाँ से लूट मार करते हुए निकल गये[२]। नासीरीखाँ उनका पीछा न कर सका। इसपर औरंगजेब ने नासीरीखाँ तथा दूसरे सेनापतियों को बहुत डाँट कर लिखा कि तुम लोग तुरन्त शिवाजी को चारों ओर से घेर लो।

इधर औरंगजेब स्वयं भी बीजापुर से निराश हो शिवाजी के पीछे पड़ गया। इतने में उसे खबर मिली कि उसका पिता मुगल-सम्राट् शाहजहाँ बीमार है, अतः उसे अब दक्षिण से अधिक उत्तर भारत की चिन्ता सताने लगी। फलतः वह शिवाजी और बीजापुर दोनों से नरम बातें करने लगा। दोनों को एक दूसरे को नष्ट करने के लिए उत्साहित करने लगा और स्वयं उत्तर की ओर अपने भाइयों से गद्दी के लिए झगड़ने को चल पड़ा।

औरंगजेब के उत्तर को जाते ही बीजापुर और शिवाजी में युद्ध प्रारम्भ हो गया। बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी का अन्त कर देने का निश्चय कर संवत् १७१६ (सन् १६५६) में अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित बारह हजार सवार तथा बारूद, तोप और रसद के सहित अफजलखाँ नामक भारी डीलडौल वाले तथा बलवान व्यक्ति को शिवाजी पर चढ़ाई करने को भेजा[३]। अफजलखाँ ने

---

१. अहमदनगर के थान किरवान लै कै
  नवसेरीखान ते खुमान भिरयो बल तें। (शि० भू० ३०८)

२. लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु (शि० भू० १०२)

३. बारह हजार असवार जोरि दलदार
  ऐसे अफजलखान आयो सुरसाल है।
 सरजा खुमान मरदान सिवराज धीर
  गंजन गनीम आयो गाढ़े गढ़पाल है। (फु० ३२)

The king gladly accepted his (Afzal Khan's) services and placed him at the head of a fine army composed of 12,000 horses and well-equipped with cannon, stores and ammunition. (A History of the Maratha People by Kincaid & Parasnis)

मदभरे शब्दों में इकरार किया था कि वह शिवाजी को जीवित या मृत पकड़ कर लायेगा, कम से कम उसका राज्य तो अवश्य तहस नहस कर देगा। वह मार्ग के मन्दिरों का नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ प्रतापगढ़ के नीचे जावली प्रांत के पार गाँव में पहुँच गया, जहाँ शिवाजी उन दिनों मौजूद थे। अफजलखाँ और शिवाजी दोनों ही एकान्त स्थान पर मिल कर एक दूसरे का नाश करने का विचार कर रहे थे। शिवाजी से एकान्त में मिलने का अनुरोध करने के लिए अफजलखाँ ने अपना दूत उनके पास भेजा। माता जीजाबाई से आशीर्वाद ले शिवाजी ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फलतः किले से कोई चौथाई मील नीचे एक खेमे में दोनों की भेंट हुई। भेंट के समय शिवाजी के पास प्रत्यक्ष रूप से कोई शस्त्र न था, पर अफजलखाँ के पास लंबी तलवार थी। शिवाजी उससे जा कर इस प्रकार मिले, जैसे कोई विद्रोही आत्मसमर्पण के लिए आता है। शिवाजी का अन्त करने के लिए पहले अफ़ज़लखाँ ने अपनी तलवार से वार किया। शिवाजी ने अपने कपड़ों के नीचे जिरहबख्तर पहना था, अतः वह चोट उनके बदन पर न लगी। इतने में उन्होंने अपने हाथों में पहने बघनखे तथा बिछुए की चोट से खान का अन्त कर दिया[1] और वे दौड़ कर किले के भीतर आ गये। अब शिवाजी की छिपी हुई सेना अफ़ज़लखाँ की सेना पर टूट पड़ी। खान की सेना में से प्रायः वे ही बच सके जिन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया।

अफ़ज़लखाँ के वध से बीजापुर राज्य में सब ओर निराशा छा गई। अपने भतीजे की मृत्यु पर बीजापुर की राज़माता के दुःख की तो सीमा ही न रही। इसी समय शिवाजी ने बीजापुर के पन्हाला, पवनगढ़ बसन्तगढ़, रंगना और विशालगढ़ आदि कई किले जीत लिये। शिवाजी की इस विजय-यात्रा को रोकने के लिए मीराज के अफसर रुस्तमे जमान को भेजा गया पर रुस्तमे जमान खाँ को शिवाजी ने बुरी तरह से हराया और उसे वापिस मीराज को भागने में

---

१. बैर कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैठो।
भूषन क्यों अफ़ज़ल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पॉव उमैठो।
बीछू के घाव धुक्योई धरक ह्वै तौ लगि धाय धरा धरि बैठो।(शि० भू०२५३)

बड़ी कठिनता हुई[१]। शिवाजी सेना सहित लूट मार करते हुए बीजापुर तक जा पहुँचे और वहाँ से वापिस लौटे। अब अली आदिलशाह ने हब्शी सरदार सीदी जौहर को भेजा। उसके साथ अफ़ज़लखाँ का पुत्र फ़ज़लखाँ भी था। उसने जाते ही पन्हाला दुर्ग घेर लिया। कई महीनों के घेरे के बाद जब दुर्ग टूटने को हुआ तब शिवाजी उस दुर्ग से चुपचाप निकल कर रंगना होते हुए प्रतापगढ़ चले गये। शत्रु ने उनका पीछा किया पर बाजीप्रभु देशपांडे ने पंढरपानि के दर्रे में दीवार की तरह खड़े हो कर शत्रु को आगे बढ़ने से रोक दिया। जब शिवाजी ने विशालगढ़ में पहुँच कर तोप दागी तब उस आहत सरदार ने सुख से शरीर त्याग। इसी समय सावंतवाड़ी के, जो कि कुडाल से १३ मील दक्षिण में थी, सावंतों ने शिवाजी के दक्षिणी सीमान्त पर धावा शुरू किया। साथ ही वे मुधोल के घोरपड़े तथा बीजापुर की सेना की मदद लेने का यत्न कर रहे थे। पर शिवाजी ने इन तीनों के मिलने से पहले ही मुधोल पहुँच कर अपने पिता के शत्रु बाजी घोरपड़े को मार कर मुधोल का सत्यानाश कर दिया। इतने में आदिलशाह ने खवासखाँ को बड़ी सेना के साथ भेजा। कुडाल के पास भयंकर युद्ध हुआ[२]। पर शिवाजी ने उसे भी निराश्रित तथा निराश कर के वापिस भेजा। इसके बाद सावंतवाड़ी वालों ने गोआ के पुर्त्तगीज़ों से सहायता माँगी, पर वे भी विफल हुए। शिवाजी ने दोनों को ही तहस-नहस कर दिया। तब सावंतवाड़ी के सावंतों ने अपनी आधी आमदनी दे कर तथा पुर्त्तगीज़ों ने शिवाजी को गोला बारूद तथा तोपें दे कर संधि की।

अब बीजापुर दरबार बहुत चिन्तित हुआ। अन्त में उसने शाहजी को मध्यस्थ बना कर शिवाजी से सन्धि-वार्ता प्रारम्भ की और संवत् १७१९ (सन्

---

१. देखत में खान रुस्तम जिन खाक किया, (शि० बा० ३१)

Rustam Jaman was compeletely defeated and he had considerable difficulty in escaping back to Miraj.
—A History of the Maratha People by Kincaid & Parasnis, p. 165.

२. उमड़ि कुडाल मैं खवासखान आए भनि,
भूषण त्यों धाए शिवराज पूरे मन के। (शि०भू०३३०)

१६६२) में शिवाजी की सब माँगें स्वीकार कर लीं। उत्तर में कल्याण, दक्षिण में फोंडा, पश्चिम में दभोय तथा पूर्व में इन्दापुर तक सम्पूर्ण प्रदेश में शिवाजी का स्वतन्त्र राज्य माना गया। दोनों दलों ने शत्रुओं से एक दूसरे की रक्षा का प्रण किया, तथा शिवाजी ने शाहजी के जीवनकाल में बीजापुर वालों से न लड़ने की शपथ खाई। इस संधि के निमित्त शाहजी कई वर्षों के बाद अपने पुत्र से मिलने आये। शिवाजी ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया, और उन्हें सब विजित प्रान्त दिखाया। उस समय शाहजी की पैनी और अनुभवी आँखों ने रैरी के उच्च शृङ्ग को देख कर शिवाजी को वहाँ राजधानी बनाने का परामर्श दिया। शिवाजी ने पिता की सलाह मान कर वहाँ किला तथा महल बनवाया और उसका नाम रायगढ़ रखा। अब शिवाजी वहीं वास करने लगे[1] और उसे ही उन्होंने अपनी राजधानी बनाया[2]। वह चारों ओर से सह्याद्रि की अनेक उच्च पर्वतमालाओं से घिरा हुआ था और उसके उच्च शृङ्ग कई मील दूर से दिखाई देते थे[3]।

इस प्रकार बीजापुर से निश्चिन्त हो कर शिवाजी ने मुगलों की ओर ध्यान दिया। मुगलों ने सं० १७१८ में कल्याण और भिवंडी प्रदेश ले लिये थे, जो कि बीजापुर की संधि के अनुसार शिवाजी के थे। शिवाजी ने अपने सेनापतियों को मुगल साम्राज्य में लूटमार आरम्भ करने का आदेश दिया। यह देख औरंगज़ेब ने अपने मामा शाइस्ताखाँ तथा जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह को शिवाजी के दमन के लिए भेजा।

शाइस्ताखाँ औरंगाबाद से बड़ी भारी सेना ले कर पूना की ओर चला। पूना पहुँचते ही उसने अपने सहायक सेनापति कारतलबखाँ को शिवाजी को पकड़ने के लिए सेना सहित भेजा। पर जब उसकी सेना अंबरखिंडी के पास पहुँची तो मराठों ने उसे घेर लिया और उससे बहुत सा धन लेकर उसे

---

१. दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास।
सिव सेवक सिव गढ़पती, कियो रायगढ़ वास॥ (शि० भू० १४)

२. तहँ नृप रजधानी करी, जीति सकल तुरकान। (शि० भू० २४)

३. ऐसे ऊँचो दुरग महाबली को जामैं
नखतावली सों बहस दीपावली करति है। (शि० भू० ५६)

जीवन-दान दिया[१]। इसके बाद मराठा सैनिक औरंगाबाद तक लूटमार करते रहे। इस समय शिवाजी कोंडाना में थे, उन्होंने पूना में चैन से बैठे हुए शाइस्ताखाँ को मज़ा चखाना चाहा।

पूना में शाइस्ताखाँ शिवाजी के महल में ठहरा था। उससे थोड़ी दूर पर राजा जसवंतसिंह दस हजार सेना सहित डेरा डाले पड़ा था। एक रात को शिवाजी ने पूना पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। उन्होंने दो हज़ार सेना जसवंतसिंह के डेरे के चारों ओर रख दी और स्वयं चार सौ चुने हुए सैनिकों को ले कर शादी के बहाने से शहर में आये; उनमें से भी दो सौ को शाइस्ताखाँ के महल के बाहर रख कर शेष दो सौ को साथ ले शिवाजी एक खिड़की को तोड़ कर महल के भीतर गये[२] और शाइस्ताखाँ के सोने के कमरे में पहुँच गये। शोर सुन कर शाइस्ताखाँ ज्योंही अपने हथियार सम्हाल रहा था, त्योंही शिवाजी ने एक वार से उसका अँगूठा काट दिया। इतने में एक औरत ने कमरे का लैंप बुझा दिया, और अँधेरे में शाइस्ताखाँ को दासियाँ वहाँ से उठा ले गईं। इस गड़बड़ में मराठों ने कई मुगल सरदारों को कत्ल कर दिया। शाइस्ताखाँ का लड़का अब्दुलफतह भी इसमें मारा गया[३]।

---

१. लूट्यो कारतलबखाँ मानहुँ अमाल है (शि० भू० १०२)

२. दच्छिन को दाबि करि बैठो है सइस्तखान
पूना माँहि दूना करि जोर करबार को।
मनसबदार चौकीदारन गँजाय
महलन में मचाय महाभारत के भार को।
तो सो को शिवाजी जेहि दो सौ आदमी सौं
जीत्यो जंग सरदार हज़ार असवार को। (शि० भू० १६०)

Shivaji with his trusty leiutenant Chimnaji Bapuji was the first to enter the harem and was followed by 200 of his men.

—Shivaji by J. N. Sarkar

३. सासताखाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि,
बेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है॥ (शि० भू० ३२५)

मुगलों की सेना के सँभलने के पहले ही शिवाजी अपने आदमियों सहित वहाँ से चंपत हो गये। इस घटना से शिवाजी का आतंक बहुत बढ़ गया। मुसलमान उन्हें शैतान का अवतार कहने लगे। निराश हो शाइस्ताखाँ वापिस चला गया। शाइस्ताखाँ की असफलता पर औरंगज़ेब बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने उसे दक्षिण से बंगाल भेज दिया। जसवंतसिंह अभी दक्षिण में ही था। उसने तथा भाऊसिंह हाड़ा ने मिल कर कोंडाना घेर लिया। परन्तु दोनों को ही शिवाजी ने परास्त कर दिया। जसवंतसिंह वहाँ से घेरा उठा कर चाकन को चल दिया[1]।

शाइस्ताखाँ के चले जाने के बाद शिवाजी ने संवत् १७२१ में सूरत पर हमला कर दिया। सूरत का मुगल सूबेदार जा कर किले में छिप गया। जब तक शिवाजी न लौटे तब तक वह किले से न निकला। यह देखते ही सूरत-निवासी भी शहर छोड़ कर भाग गये। वहाँ शिवाजी ने अच्छी तरह लूट मार की। डर के मारे जो अमीर उमराव भाग गये थे, शिवाजी ने उनके घरों तक को खुदवा दिया और उसके बाद सारे सूरत को जला कर वहाँ से अनन्त संपत्ति ले कर लौटे[2]।

---

१. जाहिर है जग में जसवंत, लियो गढ़सिंह मैं गीदर बानो। (शि० बा० २६)
बन्दि सइस्तखँहू को कियो जसवंत से भाऊ करन्न से दोषे। शि० भू० ७७)

२. सूरत कौ मारि बदसूरत सिवा करी। (फु० २६)

हीरा-मनि-मानिक की लाख पोटि लादि गयो,
मन्दिर ढहायो जो पै काढ़ी मूल काँकरी।
आलम पुकार करै आलम-पनाह जू पै,
होरी सी जलाय सिवा सूरत फनाँ करी। (फु० ३०)

......every day new fires being raised, so that thousands of houses were consumed to ashes and two-thirds of the town destroyed...The fire turned the night into day as before the smoke in the day time had turned day into night...The Marathas plundered it at leisure day and night till Friday evening, when having ransacked it

सूरत की लूट से वापिस लौटते ही शिवाजी ने अपने पिता शाहजी के स्वर्गवास का समाचार सुना। अब शिवाजी ने अहमदनगर के सुलतान द्वारा दी गई राजा की पैतृक पदवी धारण की और रायगढ़ में टकसाल बनाई।

शाइस्ताखाँ की पराजय और सूरत की लूट का वृत्तान्त सुन औरंगज़ेब जल-भुन उठा। उसने अपने योग्यतम सेनापति जयसिंह को दिलेरखाँ आदि कई सरदारों के साथ दक्षिण भेजा। जयसिंह ने दक्षिण में जाते ही शिवाजी के सधर्मी और विधर्मी सब शत्रुओं को एकत्र कर उनपर आक्रमण कर दिया। सम्मिलित शत्रुओं ने शिवाजी को तंग कर दिया। अंत में शिवाजी को मुगलों से सन्धि करनी पड़ी, जिसके अनुसार शिवाजी को अपने पैंतीस किलों में से तेईस मुगलों को देने पड़े। शेष बारह उनके पास रहे[1]। इसके अतिरिक्त शिवाजी ने आवश्यकता पड़ने पर मुगलों की नौकरी करना तथा बीजापुर को दबाने में मुगलों की मदद करना स्वीकार किया। इधर बादशाह ने शिवाजी के बड़े लड़के संभाजी को पाँच हजारी का मनसब दिया।

संधि के अनन्तर शिवाजी पहले जयसिंह के साथ बीजापुर के आक्रमण पर गये। पर शीघ्र ही औरंगज़ेब ने शिवाजी को भेंट के लिए आग्रहपूर्वक बुलाया। अपने राज्य की व्यवस्था कर शिवाजी ने संभाजी तथा कुछ सैनिकों सहित आगरे को प्रयाण किया। जयसिंह दक्षिण में थे, अतः उन्होंने अपने

---

and dug up its floor, they set fire to it. From this house they took away 28 seers of large pearls, with many other jewels, rubies, emeralds and an incredible amount of money. —Shivaji by J. N. Sarkar, p. 103.

१. भूषण ने पैंतीसों किले देना लिखा है—

भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल दिन
द्वैहू न लगाए गढ़ लेत पँचतीस को।
सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीबे
सौगुनी बड़ाई गढ़ दीन्हे हैं दिलीस को। (शि० भू० २१४)

पुत्र रामसिंह को शिवाजी का सब प्रबन्ध करने के लिए लिख दिया।

आगरा पहुँचने पर संवत् १७२३ (१२ मई १६६६) में शिवाजी की औरंगज़ेब से भेंट हुई। औरंगज़ेब ने जानबूझ कर उनका अपमान करने के लिए उन्हें पाँचहजारी मनसबदारों के बीच में खड़ा किया।[1] यह अपमान देख शिवाजी जलभुन उठे और उन्होंने उसी समय रामसिंह पर अपना क्रोध प्रकट कर दिया। रामसिंह ने उन्हें शान्त करना चाहा, पर वह सफल न हो सका[2]। इस पर औरंगज़ेब ने शिवाजी को डेरे पर जाने को कहा। थोड़ी ही देर में जहाँ वे ठहरे थे, वहाँ कड़ा पहरा लग गया ताकि वे आगरे से निकल न जायँ। शिवाजी अब कैद से निकलने के उपाय सोचने लगे। उन्होंने पहले अपने सब साथियों को दक्षिण भेज दिया। फिर कुछ दिन बाद बीमारी का बहाना कर दान-पुण्य के लिए ब्राह्मणों, गरीबों और फकीरों आदि में बाँटने के लिए मिठाई के बड़े-बड़े पिटारे भेजने आरम्भ किये। एक दिन शिवाजी और संभाजी अपने को चालाक समझने वाले औरंगजेब की आँखों में धूल झोंक कर अलग-

---

१. भूषण ने एक जगह पर पाँचहजारी मनसबदारों के बीच में खड़ा करने का उल्लेख किया, और एक स्थान पर छह हज़ारियों के पास—

पंचहज़ारिन बीच खड़ा किया,
मैं उसका कछु भेद न पाया। (शि० भू० २१०)

सबन के उपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग
ताहि खरो कियो छहज़ारिन के नियरे। (शि० बा० १५)

The emperor then ordered him to take his place among commanders of 5000 horses, This was a deliberate insult.
—A History of the Maratha People by Kincaid & Parasnis.

२. ठान्यो न सलाम, मान्यो साहि का इलाम
धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा। (शि० भू० १६६)

The Maratha prince saw that he was being Maliciously flouted and, unable to control himself, turned to Ram Singh and spoke frankly of his resentment. The young Rajput did his best to pacify him but in vain.
—A History of the Maratha People by Kincaid & Parasnis.

अलग पिटारों में बैठ कर पहरे से बाहर निकल आये। दूसरे दिन जब पहरेदारों ने शिवाजी का बिस्तर देखा तो उन्हें न पा कर उन्होंने औरंगज़ेब को लिखा कि हम उस पर पूरी तरह चौकसी करते रहे पर पता नहीं कि वह किस तरह अदृश्य हो गया। सब रास्तों और सब चौकियों पर पहरा होते हुए भी शिवाजी वहाँ से वैरागी का भेस धर कर मथुरा, प्रयाग, काशी की राह से लगभग नौ महीने बाद अपनी राजधानी रायगढ़ में आ पहुँचे[1]। संभाजी को वे मथुरा छोड़ आये थे। कुछ दिन में संभाजी भी विश्वासपात्र आदमियों के साथ रायगढ़ पहुँच गये। अब शिवाजी दक्षिण पहुँच गये थे, और वे मुगलों से बदला लेना चाहते थे। इधर औरंगज़ेब ने राजा जयसिंह पर शक करके उन्हें वापिस बुला लिया, और उसके बाद मुअज़्ज़म और जसवन्तसिंह को भेजा। जयसिंह की रास्ते में ही मृत्यु हो गई। जसवन्त और मुअज़्ज़म युद्ध नहीं करना चाहते थे; अतः शिवाजी की फिर मुगलों से संधि हो गई। औरंगज़ेब

---

१. घिरे राह घाट और बाट सब घिरे रहे;
बरस दिना की गैल छिन माँहि छ्वै गयो।
ठौर ठौर चौकी ठाढ़ी रही असवारन की,
मीर उमरावन के बीच ह्वै चलै गयो।
देखे में न आयो ऐसे कौन जाने कैसे गयो,
दिल्ली कर मीड़े, कर झारत किते गयो।
सारी पातसाही के सिपाही सेवा सेवा करैं,
परयो रहयो पलँग परेवा सेवा ह्वै गयो। (फु० ३४)

शिवाजी के डेरे के रक्षक फौलादखाँ ने शिवाजी के वहाँ से अन्तर्धान होने पर बादशाह को जो रिपोर्ट की थी उसका अनुवाद प्रोफेसर जदुनाथ सरकार ने निम्नलिखित दिया है—

The Rajah was in his own room. We visited it regularly. But he vanished all of a sudden from our sight. Whether he flew into the sky or disappeared into the earth, is not known, nor what magical trick he has played.

—Shivaji, p. 167-8

ने शिवाजी को राजा की उपाधि दी। कोंडाना और पुरन्दर को छोड़ कर शिवाजी के सब किले उन्हें वापिस दे दिये गये। इन किलों के बदले में शिवाजी को बराड़ की जागीर दी गई। शिवाजी ने औरंगज़ेब को बीजापुर के आक्रमणों में सहायता देने का वचन दिया। उसके अनुसार उन्होंने प्रतापराव गूजर को ५००० सवारों के साथ वहाँ भेज दिया। यह देख बीजापुर वालों ने शिवाजी को सरदेशमुखी तथा चौथ के स्थान पर साढ़े तीन लाख रुपये देने का वचन दे कर, और मुगलों को शोलापुर तथा उसके पास का इलाका दे कर संधि कर ली। गोलकुंडा के सुलतान ने भी पाँच लाख रुपये वार्षिक कर शिवाजी को देना स्वीकार किया। इन संधियों के होने पर शिवाजी को दो वर्ष तक किसी से झगड़ा न करना पड़ा। यह समय उन्होंने राज्य की सुव्यवस्था करने में लगाया।

मुगलों के साथ संधि देर तक न टिकी। औरंगज़ेब ने फिर विश्वासघात करके शिवाजी को पकड़ना चाहा। इससे चिढ़ कर शिवाजी ने मुगलों को दिये हुए किले लेने का निश्चय किया। कोंडाना की विजय के लिए उन्होंने अपने बाल-मित्र तानाजी मालुसुरे को नियुक्त किया। कोंडाना में उन दिनों उदयभानु नामक वीर राठौर सरदार किलेदार था। तानाजी मालुसुरे अँधेरी रात में ३०० मावलियों को ले कर किले पर चढ़ गया, और अपने भाई सूर्याजी को उसने कुछ सिपाहियों के साथ बाहर ही रख दिया। भयंकर युद्ध हुआ। राठौर सरदार उदयभानु और तानाजी मालुसुरे दोनों ही वीर गति को प्राप्त हुए, पर किला मराठों के हाथ में आ गया। उन्होंने उसी समय मशालें जला कर शिवाजी को सूचित किया[1]। शिवाजी उसी समय वहाँ पहुँचे, पर अपने मित्र तानाजी को मरा देख कर उन्होंने कहा—"गढ़ आया पर सिंह गया।" उसी दिन से उस किले का नाम सिंहगढ़ पड़ा।

सिंहगढ़ के बाद शिवाजी ने पुरन्दर, लोहगढ़ आदि अन्य कई किले भी

---

१. सहितनै शिव साहि निसा मैं निसाँक लियो गढ़सिंह सोहानो,
राठिवरो को संहार भयो लरि कै सरदार गिर्‍यो उदैभानो।
भूषन यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानौ,
ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ। (शि०भू०९६)

ले लिये। पीछे उन्होंने बीजापुर के जंजीरा पर हमला किया। यह जंजीरा द्वीप कोंकण के तट पर राजगढ़ से पश्चिम की ओर बीस मील पर था। वहाँ अधिकतर अबीसीनिया के हब्शी रहते थे, जो सीदी कहाते थे। यह द्वीप बीजापुर के अधीन था और यहाँ बीजापुर की ओर से फत्तेखाँ नाम का गवर्नर रहता था। शिवाजी ने इसपर संवत् १७१६ से ले कर कई बार हमले किये थे, परन्तु उन्हें सफलता न मिली थी। संवत् १७२७ में उन्होंने फिर चढ़ाई की। बार-बार के युद्धों से तंग आ कर फत्तेखाँ ने शिवाजी से संधि कर ली[१]। यह देख हब्शियों ने उसका अन्त कर दिया और उन्होंने मुगलों से सहायता माँगी। मुगलों के आ जाने पर शिवाजी ने इसे विजय करना कठिन समझ कर उधर से हट कर सूरत को दुबारा लूटा। पहली लूट की तरह शिवाजी ने इस बार भी सूरत को खूब लूटा। वहाँ से लगभग ६६ लाख रुपये का सामान ले कर तथा १२ लाख वार्षिक कर पाने का करार पा कर वे रायगढ़ की ओर लौटे[२]। रास्ते में मुगल सूबेदार दाऊखाँ ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, पर शिवाजी उसको नीचा दिखा कर सकुशल वापिस आ गये।

सूरत से प्राप्त धन से बहुत सी फौज भरती कर के शिवाजी ने अन्य मुगल इलाकों पर आक्रमण करने शुरू किये। उनके सेनापति प्रतापराव ने खानदेश तथा बराड़ पर चढ़ाई की और वहाँ के कितने ही शहरों को लूटा और उनपर 'चौथ' का कर लगाया[३]। शहरों के बड़े-बड़े व्यक्तियों तथा गाँवों

---

१. अफज़खान, रुस्तमै जमान, फतेखान,
कूटे लूटे जूटे ए उजीर बिजैपुर के। (शि० भू० २४१)

२. सूरत को कूटि सिवा लूटि धन लै गयो। (फु० १३)

An official inquiry ascertained that Shivaji had carried off 66 lacs of rupees worth of booty from Surat— viz. cash, pearls, and other articles worth 53 lakhs from the city itself and 13 lakhs worth from Nawal Sahu and Hari Sahu and a village near Surat. —Shivaji, p. 203

३. भूषन भनत मुगलान सबै चौथ दीन्हीं,
हिंद में हुकुम साहिनंदजू को ह्वै गयो। (फु० ३१)

के मुखियाओं ने 'चौथ' देने के लिए लिखित शर्त्तनामे किये। इस समय मराठा सेना शहर पर शहर जीत रही थी। औंध, पट्टा, सलहेरि आदि पर उनका अधिकार हो गया। सूबेदार दाऊदखाँ इन स्थानों को बचाने के लिए बहुत देर में पहुँचा। सिंहगढ़ की तरह सलहेरि के दुर्ग पर भी रात को कुछ आदमियों ने दीवार पर चढ़ कर विजय प्राप्त की थी।

सूरत की लूट, चौथ की स्थापना तथा मराठों की इन विजयों का समाचार सुन कर औरंगज़ेब को दक्षिण की चिन्ता सताने लगी। उसने उसी समय (संवत् १७२७) शाहजहाँ के समय के प्रसिद्ध सेनापति महावतखाँ को दक्षिण का सूबेदार बना कर भेजा तथा दिलेरखाँ उसके सहयोग के लिए भेजा गया। महावतखाँ को पहले कुछ सफलता मिली; परन्तु पीछे सलहेरि के घेरे में महावतखाँ को सफल न होते देख औरंगज़ेब ने गुजरात के सूबेदार बहादुरखाँ को महावतखाँ के स्थान पर चढ़ाई का भार सौंपा[१]। इस प्रकार शिवाजी के डर के कारण औरंगज़ेब जल्दी-जल्दी सूबेदारों की अदला बदली कर रहा था[२]। शिवाजी ने मोरोपंत तथा प्रतापराव को सलहेरि का उद्धार करने के लिए जाने को कहा। बहादुरखाँ ने दोनों तरफ से बढ़ती हुई मराठा सेना को रोकने के लिए इखलासखाँ को भेजा। प्रतापराव ने पीछे हट कर अव्यवस्थित मुसलमान सेना पर आक्रमण कर दिया। उस प्रबल आक्रमण के सामने इखलासखाँ अपनी फौज को सँभाल न सका[३]। इधर से शिवाजी स्वयं भी वहाँ पहुँच गये। सलहेरि के इस भयंकर युद्ध में मुगलों की पूर्ण पराजय हुई। दिलेरखाँ हार गया[४], अमरसिंह चंदावत मारा गया, उसका लड़का मोहकमसिंह तथा

---

१. दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयंद को झप्पर।
(शि० भू० ३२२)

२. सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान से फेरत औरंग सूबा। (फु० २१)

३. फौजें सेख सैयद मुगल औ पठानन की,
मिलि इखलासखाँ हू मीर न सँभारे हैं। (शि० बा० २३)

४. गत बल खान दलेल हुव खान बहादुर मुद्ध,
सिव सरजा सलहेरि ढिग क्रुद्धद्धरि किय जुद्ध। (शि० भू० ३५७)

इखलासखाँ मराठों के हाथ पड़े, जिन्हें पीछे शिवाजी ने छोड़ दिया[1]। इस युद्ध से शिवाजी का प्रभाव बहुत बढ़ गया। इसके बाद ही उन्होंने रामनगर तथा जवारि या जौहर नाम के कोंकण के पास के दो कोरी राज्य जीत लिये[2]। और एकदम तिलंगाना की ओर अपनी सेना भेज दी। बहादुरखाँ के वहाँ पहुँचने से पहले ही उनकी सेना ने तिलंगाना लूट लिया[3]।

इसके बाद शिवाजी ने गोलकुंडा की राजधानी भागनगर (आधुनिक हैदराबाद) पर आक्रमण किया, और वहाँ से कई लाख रुपये ले कर वापिस आये। इधर जंजीरा के सीदियों से भी शिवाजी की लड़ाई जारी रही जिनमें कभी सीदी जीतते थे तो कभी शिवाजी।

इसी समय बीजापुर के आदिलशाह की मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर उसका पाँच साल का लड़का गद्दी पर बैठा और खवासखाँ उसका संरक्षक नियत हुआ। अली आदिलशाह शिवाजी को चौथ देता था, पर खवासखाँ चौथ देने से इनकार करने लगा। इसपर शिवाजी ने मुगलों को छोड़ कर फिर बीजापुर की ओर ध्यान दिया और पन्हाला किले पर धावा बोल दिया। बीजापुर का सेनापति अब्दुल करीम बहलोलखाँ उसकी रक्षा के लिए आया। शिवाजी की सेना की पहले तो कुछ हार हुई पर पीछे शिवाजी के स्वयं आने पर खाँ की सेना हिम्मत हार गई। शिवाजी ने पन्हाला किले को ले कर हुगली आदि करनाटक के कई धनी शहरों को मथ डाला[4]। उसके बाद उन्होंने सतारा आदि कई किलों को जीत लिया[5]।

खवासखाँ ने बहलोलखाँ को फिर पन्हाला का किला लेने को भेजा।

---

१. अमर सुजान मोहकम बहलोलखान,
खाँडे, छाँडे, डाँडे उमराव दिलीसुर के। (शि० भू० २४१)

२. भूषन भनत रामनगर जवारि तेरे,
बैर परबाह बहे रुधिर नदीन के। (शि० भू० १७३)

३. मनि भूषण भूपति भजे भंगगरब तिलंग। (शि० भू० ३५९)

४. लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लों सब देश बिगूँचे। (शि० भू० २०८)

५. पाटे डर भूमि, काटे दुवन सितारे मैं। (कु० ७)

उसने आ कर पन्हाला को घेर लिया। शिवाजी के सेनापति प्रतापराव ने उसका घेरा उठाने के लिए सीधा बीजापुर शहर पर आक्रमण कर दिया[१]। बीजापुर में उस समय सेना न थी, अतः खवासखाँ ने बहलोलखाँ को पन्हाला के किले से वापिस बुला लिया। पर उमरानी के समीप प्रतापराव ने खाँ को इतना तंग किया कि उसे पानी तक पीने को न मिला[२]। शिवाजी से फिर न लड़ने की प्रतिज्ञा कर उसने इस विपत्ति से छुटकारा पाया। शत्रु को इस प्रकार छोड़ने के कारण शिवाजी प्रतापराव पर बहुत क्रुद्ध हुए। इधर बहलोल ने भी अपना वचन तोड़ कर फिर लड़ना शुरू कर दिया। प्रतापराव यह देख आगे-पीछे का खयाल छोड़ कर उसपर टूट पड़ा, पर थोड़ी देर में स्वयं ही वीरगति को प्राप्त हुआ। उसका स्थान हंसाजी मोहिते ने लिया। उसने बहलोलखाँ के दल को बुरी तरह कुचल दिया[३]। बहलोल स्वयं बीजापुर लौट गया। इसी वर्ष शिवाजी ने दिलेर खाँ को भी हराया।

इधर औरंगज़ेब सतनामियों के विद्रोह तथा खैबर के अफगानों को दबाने के लिए उत्तर में व्यस्त था। यह अवसर देख शिवाजी ने रायगढ़ में अपने राज्याभिषेक का प्रबन्ध किया। काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् गंगभट्ट के आचार्यत्व में ज्येष्ठ शुक्ल १३ सं० १७३१ वि० (६ जून १६७४) को यह शुभ कार्य संपन्न हुआ।

अभिषेक में शिवाजी ने दान-पुण्य आदि में बहुत अधिक खर्च कर दिया था ; अब उन्हें रुपये की आवश्यकता थी। उन्होंने मुगल सूबेदार बहादुरखाँ से लड़ने के लिए लगभग २००० आदमी भेजे। जब बहादुरखाँ उनसे

---

१. बैर कियो सिवजी सो खवासखाँ डौंडियै सैन बिजैपुर बाजी। (शि०भू० २०७)

With this plan in view he moved his force straight upon Bijapur and advanced, pillaging and destroying, to the gates of Bijapur itself. (Life of Shivaji Maharaj by Takakhav & Keluskar. p. 342)

२. अफजल की अगति सायस्ताखाँ की अपति,
बहलोल बिपति सों डरे उमराव हैं। (शि० भू० १७४)

३. शिवराज साहि-सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोल दल। (शि० भू० ३६०)

लड़ने गया, तव शिवाजी ने उसके पड़ाव पर धावा बोल दिया और लगभग एक करोड़ रुपया प्राप्त किया। इसके बाद बीजापुर से भी कई लड़ाइयाँ होती रहीं। इसी बीच बीजापुर में घरेलू झगड़ा प्रारम्भ हुआ और खवासखाँ मार डाला गया। उसके स्थान पर बहलोलखाँ प्रधान-मन्त्री तथा संरक्षक बना। उसने मुगलों से डर कर शिवाजी से सन्धि कर ली और उन्हें पर्याप्त कर देना स्वीकार किया।

इधर शिवाजी ने मुगल सूबेदार बहादुरखाँ से भी सन्धि कर ली। इस प्रकार निश्चिन्त हो कर उन्होंने संवत् १७३४ में कर्नाटक पर चढ़ाई की। इस चढ़ाई पर जाने से पहले शिवाजी ने गोलकुंडा के कुतुबशाह से भी मेल कर लिया। शिवाजी स्वयं अपनी सारी सेना के साथ गोलकुंडा गये। वहाँ से वार्षिक कर तथा कर्नाटक की चढ़ाई के लिए आर्थिक सहायता का वचन[1] और कुछ फौज ले कर शिवाजी कर्नाटक की ओर बढ़े। जिंजी तथा उसके आस-पास के इलाके को वश में करने में कुछ कठिनता न हुई। केवल त्रिमली महाल के बीजापुरी अफसर शेरखाँ लोदी ने शिवाजी को रोकने का कुछ प्रयत्न किया। उसने शिवाजी की फौज के अग्रभाग पर आक्रमण किया, पर वह बुरी तरह से परास्त हुआ और पकड़ा गया[2]।

इसके बाद अठारह महीने लगातार एक शहर के बाद दूसरे शहर को जीत कर तथा एक किले के बाद दूसरे किले को ले कर जब शिवाजी वापिस रायगढ़ पहुँचे तब उनका नया विजित प्रदेश पूर्वीघाट से पश्चिमी-घाट तक किलों की पंक्तियों से सुरक्षित था।

इसी समय मुगल सूबेदार बहादुरखाँ की जगह दिलेरखाँ फिर नियुक्त हुआ। उसने बीजापुर के साथ मिल कर गोलकुंडा पर आक्रमण किया, पर

---

१. भूषन भनत कौल करत कुतुबसाह··· (फु० १६)

२. दौरि करनाटक मैं तोरि गढ़-कोट लीन्हें,
मोदी सों पकरि लोदी सेरखाँ अचानको। (फु० २५)

With 5000 horse, Sher Khan made a gallant effort to stem the invasion. But he was routed, enveloped and captured with his entire force.

—A History of the Maratha People, p. 255

उसमें उसे सफलता न मिली। इसी बीच बीजापुर के प्रधान मंत्री बहलोलखाँ की मृत्यु हो गई। तब दिलेरखाँ ने बीजापुर को ही जा घेरा। बीजापुर का अंत निश्चित था। ऐसी हालत में बीजापुर के नये प्रधान मंत्री ने नम्रता-पूर्वक शिवाजी से सहायता माँगी[१]। शिवाजी ने शरणागत की रक्षा के लिए पूरा प्रयत्न किया। इसी बीच उनका लड़का संभाजी उनके विरुद्ध हो कर दिलेरखाँ से जा मिला। परन्तु कुछ दिन बाद फिर वापिस आ गया। शिवाजी ने उसे पन्हाला किले में नज़रबन्द कर दिया और बीजापुर की रक्षा का काम जारी रखा, जिसमें उन्हें अन्त में सफलता प्राप्त हुई[२]। मसऊदखाँ ने शिवाजी का उपकार माना। दोनों की बीजापुर के पास भेंट हुई। इस अवसर पर उसने कर्नाटक में शिवाजी द्वारा विजित स्थानों पर उनका अधिकार मान लिया।

बीजापुर की रक्षा शिवाजी के जीवन का अंतिम प्रमुख कार्य था। चैत्र पूर्णिमा, सं० १७३७ वि० (५ अप्रैल सन् १६८७ ई०) को थोड़ी सी बीमारी के अनन्तर दोपहर के समय इह-लीला समाप्त कर इस वीर ने परलोक को प्रयाण किया।

शिवाजी का सारा जीवन लड़ाइयों में ही बीता। १८ वर्ष की अवस्था में जिस 'हिन्दवी स्वराज्य' की स्थापना का उन्होंने सूत्रपात किया था, आजीवन वे उसी कार्य में लगे रहे। उनकी अभिलाषा समस्त भारत में हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना करने की थी, परन्तु अपने जीवन में वे इसे पूरा न कर सके। केवल ताप्ती और तुङ्गभद्रा के बीच के अधिकांश भाग तक ही उनके स्वराज्य की सीमा रही। परन्तु एक छोटी सी जागीरदारी से इतना विस्तृत स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना भी साधारण बात नहीं है। वह भी ऐसे समय जब कि विशाल मुगल-साम्राज्य, बीजापुर, गोलकुण्डा, दक्षिणी कर्नाटक नरेश, पश्चिमी समुद्र के किनारे के हब्शी और फिरंगी ही नहीं अपितु वीर क्षत्रिय राजपूत और अन्य सजातीय और सधर्मी भाई भी मुसलमानों के साथ एक हो कर उन्हें कुचलने का प्रयत्न

---

१. चाहै चहुँ ओर रच्छा एदिल सा भोलिया। (फु० १६)

२. साहि के सपूत सिवराज बीर तैंने तब,
बाहु-बल राखी पातसाही बीजापुर की। (फु० ३३)।

कर रहे थे और अकेले शिवजी को उन सब का मुकाबला करना पड़ रहा था[1]। मराठे उन्हें अवतार समझते थे, क्योंकि हिन्दूधर्म और हिन्दू-संस्कृति का उद्धार और गौ-ब्राह्मण तथा साधुसंत की सेवा ही उनके जीवन का लक्ष्य था। दूसरी ओर अफज़लखाँ-वध, शाइस्तखाँ की दुर्दशा, सूरत की लूट, औरंगज़ेब की कैद से अकेले बच कर निकल आना, कुछ थोड़े से सैनिकों को ले कर अजेय दुर्गों को रात ही रात में विजय कर लेना आदि उनके साहसिक कृत्यों के देख मुसलमान उन्हें जादूगर समझते थे और उनके आतंक से काँपते थे। वही बीजापुर, जहाँ उनके पिता नौकर थे, जो उनको बचपन में ही कुचल देना चाहता था, उन्हें वार्षिक कर देने लगा था, और उनसे रक्षा की भीख माँगता था। गोलकुंडा का सुलतान उन्हें चौथ देता था, पराक्रमी औरंगज़ेब उनसे चिंतित रहता था।

शिवाजी केवल रण-कुशल वीर ही नहीं थे, अपितु कुशल शासक भी थे। उन्होंने अपने विस्तृत राज्य के शासन के लिए अष्ट प्रधान नाम का एक मंत्रि-मंडल बनाया था। आठ मंत्रियों के अधीन राज्य का एक-एक विभाग था। जल और स्थल दोनों प्रकार की सेनाएँ उन्होंने रखी हुई थीं। प्रत्येक कर्मचारी को वेतन राजकीय कोष से ही मिलता था।

छत्रपति शाहूजी

वीर-केसरी छत्रपति शिवाजी के आँख मूँदते ही मराठों में गृहकलह प्रारम्भ हो गया। कुछ सरदार शिवाजी के छोटे बेटे राजाराम को गद्दी पर बैठाना चाहते थे, क्योंकि वह सदाचारी और वीर था; परन्तु बड़ा होने के कारण संभाजी राज्य का अधिकारी था। अन्त में संभाजी ही गद्दी पर बैठा। उसने शिवाजी के कई विश्वस्त सरदारों को मरवा दिया। उसमें वीरता अवश्य थी, कई स्थानों पर उसने आश्चर्य-जनक विजय भी पाई; पर व्यसनी होने के कारण उसका नाश हुआ, और वह संवत् १७४५ में मुगल सेना द्वारा जीता पकड़ गया। औरंगज़ेब ने उसे मुसलमान बनने को कहा, पर उसने इनकार

१. फिर एक ओर सिवराज नृप, एक ओर सारी खलक। (फु० ११)

कर दिया। इसपर वह बुरी तरह से मार डाला गया।

अब उसका ६ वर्ष का लड़का शिवाजी (२य) गद्दी पर बिठाया गया, और उसके चाचा राजाराम अभिभावक नियुक्त हुए। कुछ ही महीनों बाद मुगल सेना ने रायगढ़ पर आक्रमण कर बालक शिवाजी तथा उसकी माँ येसूबाई को पकड़ लिया। छत्रपति राजाराम तथा उसके सरदार उससे पहले ही रायगढ़ छोड़ चुके थे। इस समय एक-एक करके मराठों के सभी किले और प्रान्त मुगलों के अधिकार में जाने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि मराठा-शाही का अंत निकट है। पर राजाराम और उनके साथियों ने इधर-उधर भाग कर भी उसकी रक्षा की और अंत में सतारा में आ कर महाराष्ट्र की राज-गद्दी स्थापित की। दिन-रात युद्ध में व्यस्त रहने के कारण केवल २६ वर्ष की अवस्था में ही राजाराम की अकाल मृत्यु हो गई। उसके बाद उनकी स्त्री ताराबाई ने अपने ६ वर्ष के लड़के को गद्दी पर बिठाया। इस समय भी मराठों और औरंगज़ेब में छीना-झपटी चल रही थी। संवत् १७६४ में औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने मराठों में फूट डालने के लिए शिवाजी (२य) को जो अब शाहू के नाम से प्रसिद्ध था, छोड़ दिया। उसके छूटते ही मराठों में दो पक्ष हो गये। चार पाँच वर्षों के बाद बालाजी विश्वनाथ नामक व्यक्ति की सहायता से शाहूजी को सफलता मिली। शाहूजी ने उसे ही पेशवा अथवा प्रधान मन्त्री बनाया। उसने मराठों के विद्रोह को शान्त कर मराठा राज्य को पुनः संगठित किया।

इन दिनों दिल्ली में सैयद-बंधुओं की तूती बोल रही थी। बादशाह तक उनके इशारे पर नाचते थे। बादशाह फर्रुखसियर ने सैयद-बन्धुओं की अधीनता से स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। सैयद-बन्धुओं ने बालाजी विश्वनाथ से सहायता माँगी। बालाजी की सेना दिल्ली पहुँच गई। फर्रुखसियर मारा गया। इस सहायता के बदले नये बादशाह मुहम्मदशाह ने मराठों को दक्षिण के छह सूबों पर 'स्वराज्य' दिया तथा अन्य मुगल शासनाधीन प्रान्तों में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया।

इसके बाद शीघ्र ही बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई। उसका लड़का बाजीराव अपने पिता के स्थान पर पेशवा नियुक्त हुआ। इसके समय

में मराठे दक्षिण की सीमा को पार कर मध्यभारत, गुजरात, मालवा आदि पर आक्रमण करने लगे। सं० १७८६ में मालवा का सूबेदार गिरधर बहादुर चिमनाजी अप्पा और उदाजी पँवार के हाथों मारा गया। दो बरस बाद उसके भाई दया-बहादुर की मल्हार होलकर के हाथों वही गति हुई। इसके बाद मालवा में मल्हारराव ने, ग्वालियर में रानोजी शिन्दे ने और गुजरात में दमाजी गायकवाड़ ने अपने राज्य बनाये। ये सब सरदार पेशवा को अपना अधिपति मानते थे। जिन नये प्रदेशों पर ये सरदार विजय पाते थे, वे इन्हीं की अधीनता में रहते थे। इस कारण ये सदा अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उत्सुक रहते थे और उत्तर भारत के विविध देशों पर हमले करते थे[1]। संवत् १७८८ (सन् १७३१) में निजाम ने राजाराम के बेटे कोल्हापुर के सम्भाजी, गुजरात के त्र्यंबकराव दाभाडे और बंगश से षड्यन्त्र कर बाजीराव के विरुद्ध प्रयाण किया। बाजीराव ने संभाजी के विरुद्ध फौज भेज कर स्वयं दाभाड़े पर आक्रमण किया। दाभाड़े मारा गया और संभाजी परास्त हुआ। बाजीराव निज़ाम की तरफ बढ़ा। निज़ाम ने तुरत अपना प्रतिनिधि बाजीराव की सेवा में यह संदेश दे कर भेजा कि मुझ गरीब सूबेदार के विरुद्ध आप अपनी शक्ति क्यों नष्ट करते हैं। आप दिल्ली पर चढ़ाई कीजिए, मैं आपको मालवा से बेरोकटोक जाने दूँगा[2]। बाजीराव ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और सं० १७९४ में चंबल पार कर[1] रामनवमी के दिन वह दिल्ली जा पहुँचा।

सं० १७९७ (सन् १७४०) में बाजीराव पेशवा का अचानक देहावसान हो गया। उसके बाद उसका लड़का बालाजी पेशवा हुआ। उसके समय में भी मराठों के राज्य का विस्तार जारी रहा। संवत् १८०६ (सन् १७४९) में ४२ वर्ष राज्य करने के अनन्तर शाहू की मृत्यु हुई। इस समय भारत भर में सबसे अधिक प्रबल शक्ति मराठों की ही थी। मुगल साम्राज्य उसकी धाक से काँपता था।

---

१. दिल्ली दल दाहिबे को दच्छिन के केहरी के,
चंबल के आर-पार नेज़े चमकत हैं। (फु० ३८)

२. भेजे लिख लग्न शुभ गनिक निजाम बेग,
इतै गुजरात उतै गंग लौं पतारा की। (फु० ३९)

छत्रसाल

इलाहाबाद के दक्षिण और मालवा के पूर्व में विंध्याचल के आँचल में बसा प्रान्त बुन्देले क्षत्रियों का निवासस्थान होने के कारण बुन्देलखंड कहाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इन बुन्देलों के पंचमसिंह नामक एक पूर्वज ने अपने रक्त की बूँदों से विंध्यवासिनी देवी की उपासना की थी, अतः उसके वंशज बुंदेला कहलाने लगे। इसी बुंदेला वंश में वीराग्रगण्य चंपतराय का जन्म हुआ था। वे महोबा के शासक थे। उस समय बुंदेलखंड में और भी कई उन जैसे शासक विद्यमान थे जो चंपतराय के संबंधी ही थे। पर वे लोग जहाँ मुगलों की दासता में ही संतुष्ट थे वहाँ चंपतराय अपनी स्वाधीन सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। मुगल-सम्राट् शाहजहाँ से इस छोटे से जागीरदार का युद्ध जारी था। शाहजहाँ जब कभी बड़ी-बड़ी सेनाएँ भेजता तब चंपतराय पहाड़ों में छिप जाते और सेना के पीछे हटते ही उस पर हमला कर सब कुछ छीन लेते। इन्हीं युद्धों में चंपतराय का बड़ा पुत्र सारवाहन मारा गया। चंपतराय को इससे बड़ा दुःख था। उनके दिल में प्रतिहिंसा की आग जलने लगी। उन्हीं दिनों ज्येष्ठ शुक्ल ६ संवत् १७०३ को छत्रसाल का जन्म हुआ। ऐसा मालूम होता है कि वे पिता की प्रतिहिंसा की भावना को ले कर ही पैदा हुए थे।

इस समय निरंतर युद्धों से तंग आ कर चंपतराय ने बादशाह की सेवा स्वीकार कर ली और तीन लाख की मालगुजारी पर कोंच का परगना पाया। उसके बाद ये युवराज दाराशिकोह के साथ काबुल में लड़ने गये। वहाँ उन्होंने बड़ी वीरता दिखाई, पर दारा और चंपतराय की अनबन हो गई। इसके थोड़े ही दिन पीछे सं० १७१५ में दारा और औरंगजेब में राज्य के लिए धौलपुर के समीप युद्ध हुआ जिसमें चंपतराय ने औरंगज़ेब का साथ दिया। इस युद्ध में विजय पाने पर औरंगज़ेब ने चंपतराय को बारह-हजार का मनसब और एक बड़ी जागीर दी। पर कुछ ही दिन के अनन्तर स्वाधीनता-प्रेमी चंपतराय ने शाही नौकरी का परित्याग कर आस-पास लूट-मार जारी कर दी। इस समय से लगभग दो वर्ष तक चंपतराय की मुगल-सेनाओं से लड़ाई जारी रही। वह कई

बार जीते। मुगलों की बहुसंख्यक और साधन संपन्न सेना के सामने अधिकतर उन्हें हार ही खानी पड़ी और जंगल में इधर से उधर मारे-मारे फिरना पड़ा। उनके सम्बन्धी भी उनके दुश्मन हो गये। परन्तु उन्होंने कभी दिल न तोड़ा। उनकी वीर-पत्नी, छत्रसाल की माँ, सदा उनके साथ ही रहती थी। अंत में जब बीमारी से क्षीण चम्पतराय अपनी बहन के यहाँ आश्रय लेने गये, तब उसके नौकर अपने स्वामी के गुप्त आदेश के अनुसार उन्हें पकड़ कर मुगलों के यहाँ भेजना चाहते थे। विश्वासघाती रक्षक सुरक्षित स्थान की खोज में जाते हुए चम्पतराय पर टूट पड़े, और उन्होंने उन्हें वहीं मार डाला। उनकी वीर-पत्नी भी पति की रक्षा करती हुई वहीं काम आई। छत्रसाल बच निकले। वे इस समय केवल १५ वर्ष के थे।

चम्पतराय ने लूट-मार और मुगलों पर आक्रमण कर सारे बुन्देलखंड को शत्रु बना लिया था। उनकी सन्तान को आश्रय देने को कोई भी तैयार न था। छत्रसाल पहले अपने चाचा सुजानराय के पास गये, पर उनके मुस्लिम-द्वेषी विचार उनके चाचा को पसन्द न थे, अतः छत्रसाल उनको छोड़ कर अपने भाई अंगदराय के यहाँ देवगढ़ चले गये और भाई की सलाह से वे आमेराधिपति जयसिंह के नीचे मुगल सेना में सम्मिलित हो गये। देवगढ़ के घेरे में उन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया। पर जब वे देखते कि मुस्लिम-सेना में वीरता का प्रदर्शन करने पर भी नाम और मान नहीं मिलता तब उनका हृदय असन्तोष से उबल उठता और शिवाजी के आदर्श को देख कर उनमें भी स्वाधीनता के भाव प्रज्वलित हो उठते। अन्त में सं० १७२८ में एक दिन छत्रसाल शाही फौज से विदा हो कर गुसरून से शिवाजी के शिविर में जा पहुँचे। शिवाजी ने उस नवयुवक को बुन्देलखंड में लौट कर मुगलों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा करने की सलाह दी। तदनुसार अपने जन्म-स्थान में स्वतंत्र राज्य की स्थापना का संकल्प कर के वे दक्षिण से लौटे। अब निराश्रय तथा निर्धन युवक छत्रसाल विशाल मुगलसाम्राज्य से टक्कर लेने के लिए साथी जुटाने लगे।

पहले वे मुगलों के कृपापात्र शुभकरण बुन्देले से मिले। वह उनके कार्य में सहयोग देने को राजी न हुआ। पर धीरे-धीरे कई अन्य बुन्देले सरदार

उनसे मिल गये। यहाँ तक कि स्वयं ओड़छा-नरेश जो उनके प्रबल शत्रुओं में से एक था उनकी सहायता करने के लिए उद्यत हो गया।

अब छत्रसाल ने इधर-उधर लूट-मार प्रारम्भ की। धँधेरा सरदार कुँअरसेन उनका सबसे पहला शिकार था। कुँअरसेन ने हार कर अपनी भतीजी का व्याह छत्रसाल से कर दिया। इसके बाद छत्रसाल ने सिरोंज के थानेदार मुहम्मद अमींखाँ (मुहम्मदहाशिमखाँ) की रक्षा में दक्षिण से जाते हुए कोष को लूट लिया[1]। फिर उन्होंने धामुनी पर चढ़ाई कर विजय पाई और बाँसी के केशवराय को परास्त कर मार दिया।

संवत् १७३५ वि० में छत्रसाल ने पन्ना नामक शहर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। अब उनका आतंक सारे बुन्देलखंड पर छा गया। छत्रसाल की बढ़ती देख औरंगज़ेब ने रणदूलहखाँ को तीस हज़ार सैनिकों के साथ छत्रसाल के दमन के लिए भेजा, परन्तु छत्रसाल ने चतुरता से उसे परास्त कर दिया। उसके बाद संवत् १७३७ में औरंगज़ेब ने तहव्वरखाँ को एक बड़ी सेना के साथ छत्रसाल पर चढ़ाई करने को भेजा। कई लड़ाइयों के बाद वह भी हार कर वापिस लौट गया। यह समाचार पाते ही औरंगज़ेब ने बहुत बड़ी सेना के साथ शेख अनवर को छत्रसाल को पकड़ने के लिए भेजा। छत्रसाल ने अचानक छापा मार कर शेख अनवर को पकड़ लिया। सवा लाख रुपया दे कर वह कठिनता से छूट सका। अब औरंगज़ेब ने अनवरखाँ को पदच्युत कर धमौनी के सूबेदार मिर्ज़ा सुतरुद्दीन को भेजा; पर उसकी भी शेख अनवरखाँ की सी गति हुई, वह भी सवा लाख भेंट तथा चौथ का वचन दे कर छूटा[2]।

इस प्रकार कई बार विजय प्राप्त कर सं० १७४४ में छत्रसाल ने विधि-पूर्वक राज्याभिषेक कराया। सं० १७४७ में अब्दुस्समदखाँ की नायकता में

---

१. जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा
महमद अमीखाँ का कटक खज़ाना है। (छ० द० ३)

२. तहवरखान हराय ऐंड अनवर की जंग हरि।
सुतरुद्दीन बहलोल गए अबदुल्ल समद मुरि॥ (छ० द० ६)

एक भारी मुगल-वाहिनी ने आ कर बुन्देलखंड को घेर लिया। बेतवा नदी के किनारे भयंकर युद्ध हुआ[1] जिसमें अब्दुस्समद को बुरी तरह नीचा देखना पड़ा और वह अपनी सेना को ले कर यमुना की ओर वापिस चला गया।

जब छत्रसाल अब्दुस्समद से लड़ रहे थे तब भेलसा मुगलों ने ले लिया था। छत्रसाल भेलसा लेने को बढ़े, मार्ग में बहलोलखाँ ने जगतसिंह बुन्देले को साथ ले इन पर धावा किया। इस लड़ाई में जगतसिंह मारा गया और बहलोल को भागना पड़ा। बहलोल ने दो तीन लड़ाइयाँ लड़ीं, पर सब में उसे नीचा देखना पड़ा। अन्त में लज्जावश उसने आत्मघात कर लिया। तदनन्तर छत्रसाल ने मुरादखाँ और दलेलखाँ को भी पराजित किया। सं० १७५० में बीजापुर के एक पठान ने पन्ना पर चढ़ाई की थी, पर युद्ध प्रारम्भ होते ही वह इस लोक को छोड़ कर चलता बना और उसकी सेना आगे न बढ़ सकी[2]। इसी समय सैयद अफगन नामक एक दिल्ली का सरदार छत्रसाल से लड़ने को भेजा गया। छत्रसाल ने इसे भी पराजित कर दिया[3]। तब औरंगज़ेब ने शाहकुली नामक सरदार को भेजा। पहले उसे कुछ सफलता मिली, पर अन्त में उसे भी निराश ही लौटना पड़ा। अब यमुना और चंबल के दक्षिण के संपूर्ण प्रदेश पर छत्रसाल का अधिकार हो गया, आसपास के शासक उनके आज्ञानुवर्ती हो गये[4]।

सं० १७६४ में औरंगज़ेब की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने इन्हें इनके स्वतन्त्र राज्य का राजा स्वीकार कर लिया। अब इन्होंने निश्चिन्त हो शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। इसमें अधिकतर इन्होंने शिवाजी का ही अनुकरण किया। अपने जीते जी ही इन्होंने अपने पुत्रों को

---

१. छत्र गहि छत्रसाल खिभयो खेत बेतवै के। (छ० द० ५)

२. दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु
ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को। (छ० द० ४)

३. सैद अफगनहि जेर किय। (छ० द० ६)

४. जंग-जीतिलेवा तेऊ ह्वै कै दाम-देवा भूप,
सेवा लागे करन महोबा महिपाल की। (छ० द० २)

राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों का शासक नियत कर दिया ।

मुगल-साम्राज्य की केन्द्रीय सत्ता के ढीला पड़ते ही स्थान-स्थान पर मुगल-सरदारों ने अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिये थे । इसी प्रकार का एक फौजदार मुहम्मदखाँ बंगश फर्रुखाबाद में अपनी नवाबी चलाता था। पास के बुन्देलखंड पर भी अपना प्रभुत्व जमाने के लिए वह संवत् १७८६ से कई सहस्र सेना के साथ वहाँ चढ़ आया। महाराज छत्रसाल रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह का बहुत-सा राज्य छीन चुके थे, अतः रीवाँ-नरेश भी बंगश को सहायता दे रहे थे। इस कुदशा पर छत्रसाल ने, जो अब ८० वर्ष के वृद्ध थे, पेशवा बाजीराव को एक पत्र में सब वृत्तान्त लिख कर अन्त में लिखा—

"जो गति ग्रह गजेन्द्र की, सो गति जानहु आज ।
बाजी जात बुँदेल की, राखो बाजी लाज ।"

यह पत्र पाते ही पेशवा ने एक महती सेना भेजी और उसकी सहायता से छत्रसाल ने बंगश को परास्त किया। बंगश ने बुन्देलों का जीता हुआ इलाका लौटा दिया और भविष्य में जमना पार न करने की शपथ खाई ।

महाराज ने इस उपकार के बदले बाजीराव को अपना एक तिहाई राज्य दे दिया और शेष अपने दो बड़े लड़कों में बाँट दिया। सं० १७९० में वह वीर-केसरी इस असार संसार को छोड़ गया ।

छत्रसाल स्वयं कवि थे और कवियों का बड़ा आदर करते थे। इन के बनाये हुए कई काव्य-ग्रन्थ मिलते हैं। इनके दरबारी कवियों में से 'लाल' कवि सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। लाल ने 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रन्थ में इनका गुण-गान किया है ।

भूषण की रचनाएँ

शिवराज-भूषण—महाकवि भूषण की रचनाओं में से केवल 'शिवरज-भूषण' ऐसा स्वतंत्र ग्रंथ है जो आजकल उपलब्ध है। इसके नाम ही से प्रकट है कि इसमें शिवाजी की चर्चा है, और यह भूषण (अलंकार) का ग्रंथ है; अथवा इसे कवि भूषण ने बनाया है। इस तरह इसका नाम नायक, कवि तथा विषय सभी का द्योतक है। कवि ने अलंकार-ग्रन्थों का अध्ययन कर अपने मत के अनुसार इस ग्रंथ में अलंकारों के लक्षण दोहों में दे कर उनके उदाहरण सवैया-कवित्त आदि विविध छंदों में दिये हैं। ये उदाहरण सब शिवाजी के चरित्र पर आश्रित हैं।

पुस्तक के अंत में दी गई अलंकारों की सूची में एक सौ अर्थालंकार, चार शब्दालङ्कार तथा एक उभयालङ्कार—इस प्रकार कुल एक सौ पाँच अलङ्कार गिनाये गये हैं। इस गणना में कहीं कहीं अलंकारों के भेद भी सम्मिलित हैं, पर कई अलङ्कारों के भेदों को अंतिम सूची में सम्मिलित नहीं किया गया; जैसे—लुप्तोपमा, न्यून रूपक, गम्योत्प्रेक्षा आदि। इस अलङ्कार-सूची को देखने से पता लगता है कि भूषण ने मोटे तौर पर दो एक अलंकारों को छोड़ कर बाकी सभी मुख्य अलङ्कारों का वर्णन कर दिया है। जितने अलङ्कार लिखे हैं, उनमें से कुछ के पूरे भेद कहे हैं, कुछ के कुछ ही भेद कहे हैं, और कुछ के भेद नहीं भी लिखे। भूषण ने दो एक नये अलङ्कारों का उल्लेख भी किया है; जैसे सामान्य-विशेष तथा भाविक छवि। ऐसे ही भूषण ने विरोध और विरोधाभास को भिन्न-भिन्न अलङ्कार माना है। इसमें उन्हें कितनी सफलता मिली है, इसकी विवेचना आगे की जायगी।

इस ग्रन्थ में संवत् १७१३ से १७३० तक की शिवाजी के जीवन की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं तथा विजयों, उनके प्रभुत्व, आतंक, यश, तथा दान आदि का वर्णन है। जिन घटनाओं का इस ग्रन्थ में उल्लेख हुआ है, उनकी तालिका आगे दी जाती है।

घटना	पद संख्या	संवत्
जावली को ज़ब्त करना	२०७	१७१३
नौशेरीखाँ से युद्ध और उसे लूटना	१०२, ३०८	१७१४
औरंगज़ेब द्वारा दारा तथा मुराद का मारा जाना, और शाहशुजा का भगाया जाना	२१८	१७१५
अफजलखाँ-वध	४२,६३,६८,१६१,१७४ २४१,२५३,३१३, ३३६	१७१६
रुस्तमे जमानखाँ का पलायन	२४१	१७१६
खवासखाँ से युद्ध	२५५, ३३०	१७१८
सिंगारपुर लेना	२०७	१७१८
रायगढ़ में राजधानी स्थापित करना	१४, २४	१७१६
कारतबलखाँ को लूटना	१०२	१७१६
शाइस्ताखाँ की दुर्दशा	३५,७७,१०२,१७४ १६०, ३२२, ३२५, ३३६, ३४०	१७२०
सूरत की लूट	२०१, ३३६ ३५६	१७२१, १७२७
जयसिंह से संधि और गढ़ देना	२१३, २१४	१७२२
शिवाजी की औरंगज़ेब से भेंट	३४, ३८, १८७, १६६ २०५, २१०, २६६, ३१०, ३११	१७२३
कैद से निकल आना	७६, १४८, १६६	१७२३
सिंहगढ़ और लोहगढ़ की पुनः प्राप्ति	६६, २६०, २८६	१७२७
सीदी सरदार फत्तेखाँ से संधि	२४१	१७२७
सलहेरि का युद्ध	६६, १०२, १०६, १६१, २२७, २४१, २६३, ३३३, ३५७	१७२६
बहादुरखाँ का सेनानायक होना	७१, ३२२	१७२६

घटना	पद संख्या	संवत्
जवारि रामनगर की विजय	१७३, २०७	१७२६
तिलंगाना की लूट	३५६	१७२६
परनाला किले की विजय	१०६, १७३, २०८, २५५	१७३०
बीजापुर पर धावा	२०७, २५५, ३१३	१७३०
बहलोल के दल का कुचला जाना	१६१, १७४, २४१, ३५८, ३६०, ३६१	१७३०

इसको देखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि भूषण ने शिवाजी के जातीय जीवन की घटनाओं पर ही कुछ लिखा है, उनके यशःशरीर का ही चित्र खींचा है। एक भी छंद शिवाजी के वैयक्तिक जीवन के विषय में नहीं कहा।

शिवराज-भूषण में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख होने पर भी वह स्फुट काव्य है, प्रबन्धकाव्य नहीं—अर्थात् उसका प्रत्येक छन्द अपने आप में पूरा है, एक पद का दूसरे पद से कोई आनुपूर्वी संबंध नहीं है। उसमें किसी समय का तारीखवार इतिहास या किसी घटना-विशेष का क्रमबद्ध वर्णन नहीं है। केवल घटनाओं का उल्लेख मात्र है। और वह उल्लेख केवल काव्य के चरित-नायक वीर-केसरी शिवाजी के गौरवगान के लिए है। इसी प्रकार यद्यपि शिवराज-भूषण एक अलंकार ग्रंथ है, पर अलंकारों की गूढ़ छानबीन करने के लिए वह नहीं लिखा गया। भूषण का उद्देश्य तो केवल शिवाजी के यश को अजर-अमर करना था और उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं तथा अलंकारों को उस उज्ज्वल चरित्र को अलंकृत करने का साधन-मात्र बनाया है। उस पवित्र चरित्र को देख कर ही कवि के हृदय में जो अलंकार-मय काव्य-रचना की लालसा उत्पन्न हुई थी उसी लालसा को पूर्ण करने के लिए उन्होंने यह अलंकार-मय ग्रंथ बनाया। कवि स्वयं कहता है—

सिव-चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषण के चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों, भूषित करौं कवित्त॥

शिवाबावनी—इस नाम का भूषण ने कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं बनाया था। यह भूषण के शिवाजी-संबंधी ५२ स्फुट पद्यों का संग्रह मात्र है। बावनी के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि जब भूषण और शिवाजी की प्रथम भेंट हुई तब भूषण ने छद्मवेशी शिवाजी को जो ५२ भिन्न-भिन्न कवित्त सुनाये थे, वे ही शिवाबावनी में संगृहीत हैं। परन्तु यह किंवदन्ती सर्वथा सारहीन है, क्योंकि शिवाबावनी के नाम से आजकल जो संग्रह मिलते हैं उनमें सं० १७३० तक की घटनाओं का उल्लेख है। कई संग्रहों में तो ऐसे पद्य भी हैं जिनमें संवत् १७३६ तक की घटनाओं का ज़िक्र है। यह संग्रह भूषण का अपना किया हुआ प्रतीत नहीं होता। ऐसा जान पड़ता है कि किसी ने भूषण के शिवाजी-विषयक फुटकर पद्यों में से अच्छे अच्छे पद छाँट कर शिवाबावनी नाम से संग्रह छपवाया होगा। तभी से यह नाम प्रसिद्ध हो गया।

शिवाबावनी नाम से जो संग्रह मिलते हैं, उनमें पदों का क्रम प्रायः भिन्न-भिन्न है और कुछ पद भी भिन्न हैं। हमने इसमें प्रायः मिश्रबन्धुओं का क्रम रखा है, क्योंकि अधिकांश संग्रहों में मिश्रबन्धुओं का ही अनुकरण किया गया है। शिवाबावनी में दो पद (सं० १२ और १३) औरंगज़ेब की निन्दा के हैं। इन्हें 'शिवाबावनी' में रखना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इनका शिवाजी से कोई सम्बन्ध नहीं। पर अब तक के अधिकांश संस्करणों में ये चले आते हैं, अतः विद्यार्थियों की सुविधा के लिए हमने इन्हें रहने दिया है। शिवाबावनी में अधिकतर पद शिवाजी की सेना के प्रयाण के शत्रुओं पर प्रभाव, शिवाजी के आतंक से शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा, शिवाजी के पराक्रम तथा शिवाजी को विजय करने में औरंगजेब की असफलता, और यदि शिवाजी न होते तो हिन्दुओं की क्या दशा होती, आदि विषयों पर हैं। अलंकार के बन्धनों के कारण शिवराज-भूषण में कवि जिस ओज का परिचय न दे सका था, उसका परिचय इन छंदों में मिलता है। स्वतंत्रता-पूर्वक निर्मित होने के कारण इन छंदों में प्राबल्य और गौरव विशेष रूप से है। वीर, रौद्र तथा भयानक रस के कई अनूठे उदाहरण इनमें पाये जाते हैं।

छत्रसाल-दशक—यह छोटा सा ग्रंथ भी शिवाबावनी की तरह एक संग्रह-मात्र है। इसमें वीर-केसरी छत्रसाल बुन्देला विषयक पद्यों का संग्रह है।

भूषण दक्षिण में आते-जाते जब कभी इस वीर के यहाँ ठहरते रहे, तभी समय-समय पर इन पदों का निर्माण हुआ।

प्रारम्भ में दो दोहों में छत्रसाल हाड़ा और छत्रसाल बुन्देला की तुलना है। उसके बाद नौ कवित्त और एक छप्पय वीर बुन्देले की प्रशंसा के हैं, और मुख्यतया उनमें उनकी विजयों का उल्लेख है। कई प्रतियों में छत्रसाल हाड़ा-विषयक कुछ पद भी सम्मिलित कर दिये गये हैं, पर उनमें कवि का नाम न होने से स्वर्गीय गोविन्द गिल्लाभाई उन्हें भूषण-कृत नहीं मानते।

शिवाबावनी के समान छत्रसाल-दशक के पद्य भी उच्चकोटि के हैं और इनमें रस का परिपाक भी अच्छा हुआ है।

फुटकर—शिवराज-भूषण तथा उपरिलिखित दो संग्रहों के अतिरिक्त भूषण के कुछ और स्फुट पद्य भी मिलते हैं। अब तक प्राप्त पद्यों की संख्या ६५ के लगभग है, जिनमें से ३६ तो शिवाजी-विषयक हैं और १० शृंगार-रस के हैं, शेष शाहूजी या अन्य राजाओं के वर्णन में है।

शिवाजी-विषयक छन्दों में शिवाबावनी की तरह या तो शिवाजी की धाक का वर्णन है अथवा शिवाजी के अंतिम-जीवन की घटनाओं—करनाटक पर चढ़ाई, गोलकुंडा के सुलतान का शिवाजी को कर देने की प्रतिज्ञा करना, तथा शिवाजी द्वारा बीजापुर की रक्षा—का उल्लेख है।

शिवाजी के बाद ४ पद्य उनके पोते शाहूजी पर हैं। एक-एक पद्य सुलंकी-नरेश तथा रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह पर, फिर एक-एक पद्य आमेराधिपति महाराज जयसिंह तथा उनके पुत्र महाराज रामसिंह पर, उसके बाद एक पद्य पौरच-नरेश पर तथा दो पद्य राव बुद्धसिंह हाड़ा पर मिलते हैं। एक पद्य कुमाऊँ-नरेश के हाथियों की प्रशंसा में भी मिलता है। इसके बाद एक पद्य दारा तथा औरंगजेब के युद्ध पर भी मिलता है। उसमें कवि का नाम है, अतः भूषण का कहना पड़ता है। परन्तु पता नहीं भूषण ने वह छन्द किस अवसर पर बनाया। इसके बाद के श्रृंगार रस को छोड़ कर शेष जितने पद्य दिये गये हैं वे सब संदिग्ध हैं और उनके नीचे ही संदेह का कारण दे दिया गया है। कुछ अन्य पद्य भी भूषण के नाम से प्राप्त हुए हैं, पर वे भी भूषण-कृत हैं या नहीं इसमें संदेह है।

आलोचना

भूषण—रीति-ग्रंथ-कार

भूषण रीतिकाल के कवि थे। उस काल के अन्य कवियों की भाँति उन्होंने भी रीतिबद्ध ग्रंथ लिखने की प्रणाली को अपनाया। परन्तु इस कार्य में वे कहाँ तक सफल हुए यह विचारणीय प्रश्न है।

भूषण अपने ग्रन्थ शिवराजभूषण में अलङ्कारों के लक्षण दोहों में दे कर चलते कर दिये हैं, और उनके उदाहरण सवैया कवित्त आदि छंदों में दिये हैं। उनके उपलब्ध ग्रन्थों में इससे अधिक अन्य किसी काव्यांग पर कुछ लिखा नहीं मिलता। अलङ्कार क्या वस्तु है, अलंकारों का काव्य में क्या स्थान है, इन बातों का भी भूषण ने कोई विवेचन नहीं किया। भूषण के कई अलङ्कारों के लक्षण अपर्याप्त और अधूरे हैं, तथा कई स्थानों पर उदाहरण ठीक नहीं बन पड़े। इन सब त्रुटियों का निदर्शन मूल पुस्तक में स्थान-स्थान पर कर दिया गया है। यहाँ केवल उनका उल्लेख मात्र पर्याप्त होगा।

भूषण ने सबसे पहले उपमा अलंकार को स्थान दिया है, पर इसका लक्षण इतना स्पष्ट नहीं है और इसका उदाहरण तो पर्याप्त दोष-पूर्ण है। इसमें शिवाजी की इन्द्र से और औरंगजेब की कृष्ण से उपमा दी गई है, जो कि सर्वथा अनुचित है, और पौराणिक कथा के अनुकूल भी नहीं है[1]।

पंचम प्रतीप का जो लक्षण भूषण ने दिया है, वह अन्य ग्रंथों से नहीं मिलता पर जो उदाहरण दिये हैं उनमें से दो भूषण के अपने लक्षण से मेल नहीं खाते वरन् वास्तविक लक्षण के अनुकूल है[2]।

परिणाम अलङ्कार के पहले उदाहरण की पहली, दूसरी तथा चौथी पंक्ति में तो परिणाम अलङ्कार ठीक है, पर तीसरी पंक्ति में परिणाम के स्थान पर रूपक अलङ्कार हो गया है[3]।

भ्रम अलङ्कार का उदाहरण ठीक नहीं है। लक्षण भी पूर्णतया स्पष्ट

---

१. पृ० १८ विवरण। २. पृ० २५ विवरण। ३. पृ० ३८ विवरण।

नहीं हुआ[१]। निदर्शना अलङ्कार के तीनों ही उदाहरण चमत्कारहीन अथवा अस्पष्ट हैं।

भूषण का समासोक्ति का लक्षण भी अधूरा है। समासोक्ति में समान अर्थवाले विशेषण शब्दों के द्वारा प्रस्तुत में अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है। यह वर्णन कभी श्लेष के द्वारा होता है और कभी बिना श्लेष के। पर भूषण के लक्षण से यह बात प्रकट नहीं होती; वे केवल इतना कहते है—"वर्णन कीजे आन को ज्ञान आन को होय" अर्थात् वर्णन किसी और का किया जाय और ज्ञान किसी और वस्तु का हो। अप्रस्तुत प्रशंसा में भी वर्णन किसी और (प्रस्तुत) का होता है और उससे किसी और (अप्रस्तुत) का ज्ञान हो जाता है। अतः यह कहना पड़ेगा कि भूषण का लक्षण अधूरा और अतिव्याप्ति दोषयुक्त है और उसमें उदाहरण केवल श्लेष से अप्रस्तुत का ज्ञान होने के हैं।

अन्य कवियों ने अप्रस्तुत-प्रशंसा के पाँच भेद माने हैं। पर भूषण ने भेदों का उल्लेख नहीं किया और उदाहरण भी केवल कार्य-निबंधना के ही दिये हैं[२]। पहले दो उदाहरणों में एक ही बात को दोहराया गया है।

सम अलङ्कार का उदाहरण अस्पष्ट है[३]। विकल्प अलंकार के उदाहरणों की भी वही गति हुई है। पहली तीन पंक्तियों में विकल्प प्रकट किया गया था पर चौथी पंक्ति के निश्चय प्रकट कर उसका गला घोंट दिया गया है[४]।

अर्थान्तरन्यास के कई भेदों में भूषण ने केवल दो भेद दिये हैं, पर उनमें भी दूसरा उदाहरण ठीक नहीं बैठता[५]।

छेकानुप्रास के लक्षण में भूषण 'स्वर समेत' अक्षरों की आवृत्ति आवश्यक समझते हैं, परन्तु उनके उदाहरण "दिल्लिय दलन दबाय" में व्यञ्जनों की आवृत्ति तो है, पर स्वर-साम्य नहीं। इसके अतिरिक्त भूषण ने वृत्यनुप्रास को छेकानुप्रास में ही सम्मिलित कर दिया है[६]।

संकर का जो लक्षण भूषण ने दिया है, वह भ्रामक है। वह वस्तुतः उभयालंकार का लक्षण है। उसमें संकर तथा संसृष्टि दोनों प्रकार के उभया-

---

१. पृ० ४५ विवरण। २. पृ० १०१ सूचना। ३. पृ० १२५ विवरण। ४. पृ० १४८-१४६ विवरण। ५. पृ० १५८ विवरण। ६. पृ० २०७ विवरण।

लंकार आ जाते हैं[1]।

भूषण ने सामान्यविशेष, विरोध तथा भाविकछवि तीन नये अलंकार माने हैं। सामान्यविशेष में विशेष का कथन करके सामान्य का ज्ञान कराया जाता है। यह अलंकार प्राचीन साहित्यशास्त्रियों के अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार की विशेष-निबन्धना से भिन्न नहीं है। इसके उदाहरण भी वैसे स्पष्ट नहीं; जैसे होने चाहिए।

इसी प्रकार भूषण ने विरोध, विरोधाभास और विषम तीन भिन्न भिन्न अलंकार माने हैं। पर वास्तव में विरोध और विरोधभास में कोई अंतर नहीं है। विरोध अलंकार में यदि वास्तविक विरोध हो तो उसमें आलंकारिकता न रहेगी। उसमें या तो विरोध का आभास होता है अथवा विषमता होती है। भूषण ने जो विरोध का लक्षण दिया है, उसे अन्य कवियों ने विषम का दूसरा भेद माना है। यही उचित प्रतीत होता है।

भूषण का तीसरा नया अलंकार है—भाविकछवि। अन्य लोगों ने इसे भाविक में परिगणित किया है—भाविक में समय की दूरी होती है और भाविक-छवि में स्थान की दूरी। भाविक-छवि को चाहे स्वतन्त्र अलंकार माना जाय अथवा भाविक का भेद, पर इसमें आलङ्कारिकता अवश्य है, और भूषण द्वारा दिया गया उस अलङ्कार का उदाहरण है भी बहुत उत्कृष्ट।

भूषण ने अन्त में जो अर्थालंकारों की सूची दी है, उसमें उन्होंने एक सौ पाँच अलङ्कार तो गिना दिये हैं पर उसमें कई अलंकारों के भेदों की संख्या भी शामिल है। कई अर्थालंकारों का भूषण ने वर्णन ही नहीं किया, जैसे अल्प, विकस्वर, ललित, मुद्रा, गूढ़ोत्तर, सूक्ष्म, आदि।

जो अलंकार भूषण ने दिये भी हैं उनमें से कुछ के पूरे भेद लिखे हैं, कुछ के कुछ ही भेद कहे हैं और कुछ अलंकारों के भेद लिखे ही नहीं।

अपर्याप्त और अधूरे लक्षणों को देख कर तथा अलंकारों की छानबीन न पा कर यह मानना पड़ता है कि रीति ग्रंथकार के रूप में भूषण किसी प्रकार भी सफल नहीं हो सके और रीति ग्रन्थ की दृष्टि से 'शिवराज-भूषण' का कुछ

---

१. पृ० २२० विवरण।

भी महत्त्व नहीं है, प्रत्युत रीतिबद्ध ग्रंथ-लेखन-प्रणाली ने भूषण की कविता का स्वतंत्र विकास ही नहीं होने दिया। इसी कारण शिवराज-भूषण में वैसा सौंदर्य और रसपरिपाक नहीं दिखाई देता जैसा उनकी दूसरी कविताओं में है। इसका कारण यह नहीं कहा जा सकता कि भूषण को अलंकार का अभ्यास बहुत कम था। इसका कारण तो यह है कि भूषण निर्बन्ध कवि थे, रीतिग्रंथ के बन्धन में पड़ना उनका उद्देश्य नहीं था। उनका उद्देश्य तो केवल शिवाजी का यशोगान करना था। रीति-ग्रंथ तो उनके उस उद्देश्य का साधन मात्र था। तत्कालीन साहित्यिक प्रवाह से विवश हो कर उन्हें इस पचड़े में पड़ना पड़ा। तत्कालीन अन्य कवियों की भाँति उनकी दृष्टि कविता की ओर ही टिकी हुई थी। यही कारण है कि जहाँ उनको कोई बन्धन न था, वहाँ उन्होंने स्वाभाविक रूप से बहुत ही उत्तम अलंकार-योजना की है। विशेषतः शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों को अलंकारों द्वारा पाठक के मन में अंकित कर देने का श्रेय तो केवल उन्हें ही प्राप्त है, जो कि आगे दिये गये कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा।

औरंगजेब ने और सब हिन्दू राजाओं को वश में कर लिया था, पर केवल शिवाजी ही ऐसे थे, जिनसे वह कर न वसूल कर सका। इस ऐतिहासिक तथ्य को कवि ने कैसे अच्छे उपमा-मिश्रित रूपक द्वारा प्रकट किया है और प्रतिनायक के अपार पराक्रम को दिखा कर नायक के यश को कितना बढ़ा दिया है!

कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी विराज है।
पाँडर पँवार जूही सोहत है चंदावत,
सरस बुँदेला सो चमेली साज बाज है।
'भूषन' भनत मुचकुंद बड़गूजर है,
बघेले बसंत सब कुसुम-समाज है।
लेई रस एतेन को बैठ न सकत अहै,
अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है॥

भ्रमर सभी पुष्पों का रस लेता है, पर चंपा पर उसकी तीव्र गंध के

कारण नहीं बैठ सकता। इस प्राकृतिक तथ्य के अनुसार इस कवित्त में औरंगज़ेब को भ्रमर और शिवाजी को—जिनका औरंगज़ेब कभी रस न ले सका—चंपा बनाना कैसा उपयुक्त है। जयपुर-महाराज को कमल और राणा को केतकी बनाना भी कम संगत नहीं। भारत के राजपूत राजाओं में से सब से अधिक रस या सहायता मुगल-सम्राट् को जयपुरनरेश-रूपी कमल से ही मिली थी। ऐसे ही राणा-रूपी कंटकयुक्त केतकी का रस लेने में औरंगज़ेब-रूपी भ्रमर को प्रर्याप्त कष्ट उठाना पड़ा था।

× × × ×

शिवाजी का दमन करने के लिए औरंगज़ेब बारी-बारी से जसवंतसिंह, शाइस्ताखाँ, दाऊदखाँ, दिलेरखाँ, महाबतखाँ, और बहादुरखाँ आदि सरदारों को भेज रहा था, पर शिवाजी के तेज के सामने वे टिक न सकते थे, और औरंगज़ेब घबरा कर बड़ी तेज़ी से उनकी अदला-बदली कर रहा था। इस पर कवि की उक्ति दर्शनीय है—

यों पहिले उमराव लरे रन जेर किये जसवंत अजूबा।
साइतखाँ अरु दाउदखाँ पुनि हारि दिलेर महम्मद डूबा॥
भूषन देखें बहादुरखाँ पुनि होय महावतखाँ अति ऊबा।
सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान से फेरत औरंग सूबा॥

पान यदि उलटा पलटा न जाय तो वह गरमी से सूख या सड़ जाता है। इस प्राकृतिक तथ्य तथा ऐतहासिक घटना के मेल से कवि ने अपने नायक के तेज का कैसा मनोहारी चित्रण किया है!

शिवाजी को जीतने के लिए औरंगज़ेब हाथी, घोड़े, बारूद तथा अस्त्र-शस्त्र के साथ बड़ी-बड़ी सेनाएँ भेजता है, पर शिवाजी हर बार विजय प्राप्त कर सेना का सब सामान लूट लेते हैं, जिससे शिवाजी का यश और कोष दोनों बढ़ रहे हैं। कवि कितनी अच्छी उत्प्रेक्षा करता है—

मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि शिवाजी पै भेजत रिसाल है।

× × × ×

औरंगज़ेब के सरदार दक्षिण से उत्तर और उत्तर से दक्षिण मारे-

मारे फिरते हैं; दक्षिण में जाते हैं तो शिवाजी उन्हें मार कर भगा देते हैं, उत्तर की तरफ आते हैं तो औरंगज़ेब उन्हें भिड़क कर फिर दक्षिण भेज देता है, इसपर भूषण क्या अच्छा कहते हैं—

आलमगीर के मीर वज़ीर फिरैं चउगान बटान से मारे।

× × × ×

शिवाजी को रात दिन बीजापुर के सुलतान एदिलशाह, गोलकुंडा के सुलतान कुतुबशाह तथा मुगल-सम्राट् औरंगज़ेब से लोहा लेना पड़ता था। इनमें से पहले दो तो विवश हो कर शिवाजी को कर देने लग गये थे, तीसरे को भी शिवाजी ने खूब नीचा दिखाया था। इस ऐतिहासिक तथ्य की पौराणिक कथा से समता प्रकट कर कवि ने व्यतिरेक का क्या ही अच्छा उदाहरण दिया है—

एदिल कुतुबशाह औरंग के मारिबे को
भूषन भनत को है सरजा खुमान सों।
तीनपुर त्रिपुर को मारे सिव तीन बान,
तीन पातसाही हनी एक किरवान सों॥

+ + + +

शिवाजी ने दुश्मनों से लोहा लेने के लिए आस-पास के सब पर्वतों पर गढ़ बना कर उन्हें अपने पक्ष में (अपने अधिकार में) कर लिया था, इस ऐतिहासिक तथ्य को पौराणिक कथा से मिला कर कवि ने कैसा अच्छा अधिक रूपक दिखाया है—

मघवा मही मैं तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किए सैल है।

+ + + +

सूरत जैसे प्रसिद्ध व्यापारिक शहर को लूट कर और जला कर शिवाजी ने मुगल सल्तनत को खूब नीचा दिखाया था। सूरत को लूटने और जलाये जाने का हाल सुन कर औरंगज़ेब क्रोध से जल भुन गया था। इसका कवि कैसा आलङ्कारिक वर्णन करता है—

सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाह मुख झलकी।

सारांश यह कि यद्यपि भूषण सफल रीति-ग्रन्थकार न थे, तथापि उनके काव्य में अलङ्कारों की योजना उच्चकोटि की है। उसमें अन्य कवियों की तरह पिष्टपेषण नहीं है, क्लिष्ट कल्पना नहीं है, पर है मौलिकता और नवीनता।

रस-परिपाक

रस काव्य की आत्मा है, रसयुक्त वाक्य को ही काव्य कहा जाता है। काव्य में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस माने गये हैं। जिस वाक्य, पद्य या लेख में इनमें से कोई रस न हो, वह काव्य नहीं कहा जा सकता। अतः काव्य की कसौटी पर कसते समय यह देखना आवश्यक है कि उसमें रस-परिपाक कैसा हुआ है।

भूषण की कविता वीर-रस की है। शत्रु के उत्कर्ष, उसकी ललकार, दीनों की दशा, धर्म की दुर्दशा आदि से किसी पात्र के हृदय में उनको मिटाने के लिए जो उत्साह उत्पन्न होता और जिससे वह क्रिया-शील हो जाता है, उसी के वर्णन से वीर रस का स्रोत पाठक या श्रोता के मन में उमड़ता है।

वीर चार प्रकार के माने जाते हैं, युद्धवीर, दयावीर, दानवीर और धर्मवीर। रस के इन चारों प्रकारों में स्थायीभाव उत्साह है। उत्साह वह मनोवेग है जो किसी महत्कार्य के संपन्न करने में प्रवृत्त करता है। युद्ध-वीर में शत्रु-नाश का, दयावीर में दयापात्र के कष्ट-नाश या सहायता का, दानवीर में त्याग का, और धर्मवीर में अधर्म-नाश एवं धर्म-संस्थापना का उत्साह होता है।

रस-परिपाक के लिए स्थायीभाव के साथ विभाव, अनुभाव आदि भी आवश्यक हैं। जो व्यक्ति या वस्तु स्थायीभाव को विशेष रूप में प्रवर्त्तन करती है, वह विभाव कहलाती है। जिनका आश्रय ले कर रस की उत्पत्ति होती है, वे आलम्बन विभाव कहाते हैं। उद्बुद्ध स्थायीभाव को बाहर प्रकट करने वाले कार्य अनुभाव कहाते हैं और स्थायीभाव में क्षण भर के लिए उत्पन्न और नष्ट होने वाले गौण और अस्थिर भाव संचारी-भाव कहाते हैं। इन सब से पुष्ट होने पर ही रसपरिपाक होता है।

भूषण की कविता के नायक शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीर हैं, जिन में चारों प्रकार का वीरत्व पाया जाता है। अतः भूषण ने चारों प्रकारों के वीरों का वर्णन किया है। उनकी कविता में से कुछ उदाहरण आगे दिये जाते हैं।

दानवीर का उदाहरण देखिये—

साहितनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी बितान छिति छोर छाइयतु है।
भूषन भनत ऐसो भूप भौंसिला हैं,
जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है॥
महादानि शिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यों गनाइतु है।
रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौंस किये हाथी पाइयतु है॥

इस कवित्त में शिवाजी के दान का वर्णन है। यहाँ भिक्षुक लोग आलम्बन हैं। दान-पात्र की सत्पात्रता, यश और नाम की इच्छा उद्दीपन हैं। याचक की इच्छा से भी अधिक दान देना अनुभाव है और याचक की संतुष्टि देख कर हर्ष आदि उत्पन्न होना संचारी भाव हैं। इस तरह यहाँ रस का बहुत अच्छा परिपाक है। धर्मवीर का भी उदाहरण आगे देखिए—

वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो, माला राखी गर मैं॥
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल सधर्म राख्यो घर मैं॥

पीड़ित शरणागत राजा दयावीर शिवाजी का आश्रय पा कर कैसे निश्चिंत हो जाते हैं, इसका भी वर्णन कवि ने कैसा अनूठा किया है—

जाहि पास जात सो तौ राखि न सकत याते,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।
भूषन भनत सिवराज तब किति सम,
और की न कित्ति कहिबे को काँधियतु है।
इन्द्र कौ अनुज तैं उपेन्द्र अवतार यातें,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पायतर आय नित निडर बसायबे को,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥

साहित्य में उपरिलिखित तीनों प्रकार के वीरों से युद्ध-वीर को प्रधानता दी जाती है।

नीचे युद्ध-वीर का उदाहरण दिया जाता है—

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरबर जोट मैं।
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परैं कोट मैं॥

इस कवित्त में युद्ध के समय शिवाजी द्वारा युद्ध की आज्ञा दिये जाने पर उनके सैनिकों के उत्साह-सहित शत्रुओं को ज़ख्मी करते हुए किलों में कूद जाने का वर्णन है। यहाँ शत्रुओं की उपस्थिति आलंबन है। शत्रुओं का गोली आदि चलाना तथा नायक की आज्ञा उद्दीपन है। मूछों पर ताव देना, शत्रुओं को घायल करना आदि अनुभाव हैं, धृति और उग्रता आदि संचारी भाव हैं। वीर रस का यह अनूठा उदाहरण है। इसी तरह के वीर रस के और भी कितने ही अच्छे-अच्छे उदाहरण भूषण की कविता में मिल सकते हैं।

रौद्र और भयानक रस वीर रस के सहकारी माने गये हैं। इनमें से भयानक रस का तो भूषण ने बहुत अधिक वर्णन किया है। शिवाजी के प्रताप

से भयभीत शत्रुओं और उनकी स्त्रियों का सजीव चित्र भूषण ने कितने ही पद्यों में खींचा है। और इस रस के वर्णन में भूषण को सफलता भी बहुत मिली है।

एक उदाहरण देखिये—

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुरपति,
फिरति फिरंगिनी की नाड़ी फरकति है।।
थर-थर काँपत कुतुबशाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है।।

रौद्र-रस के भी भूषण ने कई अच्छे-अच्छे पद कहे हैं, आगे उनमें से एक दिया जाता है।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हज़ारिन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।।
'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे।।

भयङ्कर युद्ध के अनन्तर युद्ध-क्षेत्र की दशा श्मशान-सी हो जाती है, अतः उसके वर्णन में बीभत्स रस का आना भी आवश्यक है। भूषण की कविता में भी वह स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। फुटकर छन्द संख्या ४, ५, ६ तथा ७ इस रस के अच्छे उदाहरण हैं। उनमें से एक पद नीचे दिया जाता है।

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषण तमासे आय देख दमकत हैं।

किलकति कालिका कलेजे को कलल करि,
करिकै अलल भूत भैरों तमकत हैं।
कहुँ रुंड मुंड कहुँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहुँ बखतर करी-झुण्ड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बन्ध पर,
धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं ॥

भूषण का वर्णन कहीं भी भोंडा नहीं होने पाया। उन्होंने इस रस का सदा संयत वर्णन किया है, जो वीरता के आवेश में प्रायः सब जगह दबा सा रहा है। इस प्रकार वीर और भयानक के योग में भूषण ने शृंगार को छोड़ कर अन्य सब रसों को दिखा दिया है। किसी सरदार को औरंगज़ेब ने दक्षिण का सूबेदार बना दिया। बेचारा नौकर था, इनकार न कर सकता था। परन्तु उसकी विचित्र अवस्था को देख उसकी बेगम के वचनों में स्मित हास्य की रेखा मिलती है—

चित अनचैन आँसू उगमत नैन देखि,
बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहि नै।
भूषन भनत बूझे आए दरबार तें,
कंपत बार-बार क्यों सम्हार तन नाहि नै ॥
सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै।
सिवाजी की सङ्क मानि गये हौ सुखाय तुम्हें,
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै ॥

सब धन-दौलत के लुट जाने पर, फकीर हो जाने पर निर्वेद का होना स्वाभाविक होता है, अतः भूषण ने वीर रस की लपेट में शान्त रस के स्थायी भाव निर्वेद का भी नीचे लिखे पद्य में कैसा अच्छा निदर्शन किया है—

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं।
भूषन ते बिन दौलत ह्वै कै फकीर ह्वै देस बिदेस गए हैं ॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं ॥
देत रिसाय कै उत्तर यों हमहीं दुनियाँ ते उदास भए हैं ॥

शत्रुओं के मर जाने पर उनकी स्त्रियों में शोक घर कर लेता है। उस शोक के वर्णन में कहीं-कहीं करुण का आभास भी भूषण की कविता में आ गया है; जैसे—

विज्जपुर विदनूर सूर-धनुष न सन्धहिं।
मंगल बिनु मल्लारि-नारि धम्मिल नहिं बन्धहिं॥

अद्भुत रस को भी भूषण ने अछूता नहीं छोड़ा—

सुमन मैं मकरन्द रहत है साहिनन्द,
मकरन्द सुमन रहत ज्ञान बोध है।
मानस मैं हंस-बंस रहत हैं तेरे जस,
हंस मैं रहत करि मानस विरोध है॥
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भूमि,
तेरी करतूति रही अद्भुत रस ओध है।
पानी मैं जहाज रहे लाज के जहाज,
महाराज सिवराज तेरे पानिप पयोध है॥

राजाश्रित कवियों ने अपने विलासी आश्रयदाताओं की मनस्तृप्ति के लिए शृङ्गार और वीर का एक दम मिश्रण कर दिया था। भूषण इससे चिढ़ते थे, वे इसे वाणी का तिरस्कार मानते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है—

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु व्यास के अंग सुहानी।
भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य-चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥

अतएव भूषण ने अपनी वीर-रस की कविता में शृंगार को कहीं स्थान नहीं दिया। उन्होंने दस-बारह पद्य शृंगार-रस के कहे अवश्य हैं, पर वे उन्होंने अपने नायक के विलास-वर्णन के लिए नहीं कहे। उन शृंगार रस के पद्यों में भी भूषण की वीर-रसात्मक प्रवृत्ति का आभास मिलता है। सम्भोग शृंगार में भी कवि ने 'रति संगर' का कैसा अनूठा वर्णन किया है, इसका उदाहरण आगे दिया जाता है—

नैन जुग नैनन सों प्रथमे लड़े हैं धाय,
अधर कपोल तेऊ टरे नाहिं टेरे हैं।
अड़ि अड़ि पिलि पिलि लड़े हैं उरोज बीर,
देखो लगे सीसन पै घाव ये घनेरे हैं॥
पिय को चखायो स्वाद कैसो रति-संगर को,
भए अंग-अंगनि ते केते मुठभेरे हैं।
पाछे परे बारन कौं बाँधि कहै आलिन सों,
भूषन सुभट येई पाछे परे मेरे हैं॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूषण ने वीर रस की लपेट में सब रसों का सुन्दर और अनूठा वर्णन किया है। रसों का परिपाक भी अच्छा और स्वाभाविक हुआ है। रसात्मकता की दृष्टि से भूषण का काव्य अनूठा है।

भूषण की भाषा

वीरगाथा-काल के राजस्थानी कवियों ने अपनी कविता में डिंगल का प्रयोग किया था, पर उसमें उनकी प्रान्तीय भाषा का पुट पर्याप्त रूप में पाया जाता था। उनके बाद प्रेममार्गी सूफी कवियों ने तथा राम के उपासकों ने अवधी भाषा को अपनाया, पर कृष्ण-भक्तों ने ब्रजविहारी के लीला-वर्णन के लिए ब्रज की भाषा को ही उपयुक्त समझा। महाकवि तुलसीदास के बाद उन जैसा अवधी का कोई पोषक नहीं हुआ। रीतिकाल के शृंगारी कवियों ने कृष्ण-भक्त कवियों के प्रेमावतार कृष्ण को ही अपना नायक बनाया था, अतः भाषा भी उन्होंने वही ब्रज की पसन्द की। फलतः ब्रजभाषा साधारण काव्य की भाषा हो गई। सुकवि भिखारीदास ने अपने ग्रंथ में उसी ब्रजभाषा को ज्ञान का साधन बताते हुए लिखा है—

सूर केशव मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म,
चिन्तामणि मतिराम भूषण सुजानिए।
लीलाधर सेनापति निपट नेवाज निधि,
नीलकण्ठ मिश्र सुखदेव देव मानिए॥
आलम रहीम रसखान सुन्दरादिक,
अनेकन सुकवि भये कहाँ लौं बखानिए।

ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौं,
ऐसे ऐसे कविन की बानी हू सों जानिए ।।

इसमें भिखारीदास ने जिन सब कवियों की भाषा को ब्रजभाषा कहा है उनमें से शायद किन्हीं भी दो की भाषा एक जैसी न थी। उसका कारण यह था कि यद्यपि रीतिकाल में ब्रजभाषा ही काव्य की भाषा थी पर अन्य-प्रान्त-वासी अथवा ब्रजप्रदेश से कुछ हट कर रहने वाले कवियों की भाषा में उनके देश की बोली की कुछ न कुछ छाप पड़ ही जाती थी। इसके अतिरिक्त मुसलमानों का राज्य होने के कारण अरबी फारसी के कई शब्द भी यहाँ की भाषा में घर कर चुके थे या कर रहे थे। किसी कवि ने उनको थोड़ा अपनाया किसी ने अधिक, और किसी ने उनको तोड़-मरोड़ कर इस देश का चोला पहना कर उनका रूप ही बदल दिया। सारांश यह कि तत्कालीन कवियों की वाणी वैयक्तिकता की छाप के कारण पर्याप्त भिन्नता लिये हुए थी।

भूषण की भाषा में विदेशी शब्दों की बहुलता है। उसमें विदेशी भाषाओं के साधारण शब्द ही नहीं अपितु ऐसे कठिन शब्द भी पाये जाते हैं, जिनके लिए कोष देखने की आवश्यकता पड़ती है; जैसे—तसबीह, नकीब, कौल, जसन, तुजुक, खबीस, जरबाफ, खलक, दगाज, गनीम आदि। विदेशी शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने में भी भूषण ने ज़रा भी दया नहीं दिखाई। कई स्थानों पर उन्होंने शब्दों का ऐसा मनमाना रूप कर दिया है कि वास्तविक शब्द का पता लगाना भी कठिन हो जाता है; जैसे—कलक से कलकान, औसान से अवसान, पेशानी से पिसानी, ऐलान से इलाम।

विदेशी शब्दों से हिन्दी व्याकरण के अनुसार क्रिया पद बनाने में भी भूषण ने कसर नहीं की। जैसे—तिनको तुजुक देखि नेकहु न लरजा।

मुसलमानों के प्रसंग में अथवा दरबार के सिलसिले में भूषण ने फारसी-मिश्रित खड़ी बोली अथवा उर्दू का भी प्रयोग किया है। जैसे—

१. देखत मैं खान रुस्तम जिन खाक किया।
२. पंच हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कछु भेद न पाया।
३. बगैचा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने
भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरजा।

उपरिलिखित विदेशी शब्दों के अतिरिक्त प्रान्तीयता के नाते भूषण ने बैंसवाड़ी और अन्तर्वेदी शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है, क्योंकि वे दोनों प्रदेशों की सीमा पर रहते थे। जैसे--

१. लागैं सब ओर छितिपाल छिति में **छिया**।

२. **काल्हि** के जोगी **कलींदे** को खप्पर।

३. गजन के ठेल पेल सैल **उसलत** है।

क्रियाओं में कहीं-कहीं बुन्देली के भविष्यत्-काल के रूप भी मिलते हैं। जैसे--धीर **धरबी** न धर कुतुब के धुरकी। **कीबी** कहैं कहा। इत्यादि।

कहीं-कहीं क्रियाएँ संस्कृत के मूल रूप से भी ली गई हैं। जैसे—तीन पातसाही **हनी** एक किरवान ते। ऐसे ही **'जहत हैं'**, **'सिदत हैं'** आदि रूप भी दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं माधुर्य उत्पन्न करने के लिए अवधी की उकार वाली पद्धति भी ग्रहण की गई हैं। जैसे—दीह दारिद को मारि तेरे द्वार **आयइतु** है; तेरे बाहुबल लै सलाह **बाँधियतु** है, हरजू को **हारु** हरगन को **अहारु** दै।

कहीं-कहीं तद्भव एवं ठेठ शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। जैसे—धोप (तलवार), ओत (आश्रय), पैली (उस पार) आदि। अपभ्रंश काल के शब्दों का भी सर्वथा अभाव नहीं है, वे भी उनकी कविता में कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। जैसे—"**पब्बय** से पील" "**पुहुमि** के पुरुहूत", "और **गढ़ोई** नदी नद सिव गढ़पाल दरियाव", "**बैयर** बगारन की।"

लंकाकांड में वीर या रौद्ररस के छप्पयों में जिस प्रकार महाकवि तुलसीदास ने पुरानी वीरगाथा-काल की पद्धति का अनुसरण किया है उसी प्रकार भूषण ने भी कहीं-कहीं किया है—विशेषतः शिवराज-भूषण के शब्दालंकारों के उदाहरण में आये हुए अमृतध्वनि छन्दों में। अपभ्रंश और प्राकृतिक शब्दों के प्रयोग के कारण ये छन्द कुछ क्लिष्ट से हो गये हैं। अमृतध्वनि छन्द प्रायः युद्ध-वर्णन के लिए ही प्रयुक्त होता है। इन छन्दों में संभवतः प्राचीन प्रथा के पालन के लिए ही भाषा का यह रूप रखा गया है, यह उनकी साधारण शैली प्रतीत नहीं होती।

इस प्रकार भूषण की भाषा साहित्यिक दृष्टिकोण से शुद्ध नहीं कहीं जा

सकती। मौलिकता से कोसों दूर भागनेवाले तथा पुरानी पिष्टपेषित बातों में ही इस्लाह करनेवाले रीतिकाल के शृंगारी कवियों की भाषा के समान वह मँजी हुई भी नहीं है, अपितु वह एक खासी खिचड़ी है। पर उसका भी कारण है। भूषण को अपने नायक शिवाजी और उनके वीर मराठा सैनिकों को रण-क्षेत्र में उत्साहित और उत्तेजित करना था। उनकी भाषा ऐसी होनी चाहिए थी जो कि वीरों के लिए साधारण तौर पर बोधगम्य हो और साथ ही ओजगुण-युक्त हो। अतः वे भाषा को सजा कर अथवा काव्योत्कर्ष के कृत्रिम साधनों को अपना कर भाषा को ऐसी दुरूह न बना सकते थे जो मराठों की समझ में न आये। उस समय मराठी साहित्य में अरबी-फ़ारसी का बहुत प्रयोग हो रहा था। केवल मराठों की बोलचाल में ही नहीं अपितु उनकी कविता में भी विदेशी शब्द बहुत अधिक घर कर रहे थे। परन्तु संस्कृत की पुत्री मराठी में जा कर उन विदेशी शब्दों का उच्चारण भी बदल जाता था। अरबी के 'तफ़सील' शब्द का मराठी में 'तपशील' रूप हो गया था, जो कि शुद्ध संस्कृत का मालूम पड़ता है। अतएव भूषण को भी ब्रजभाषा में ऐसे शब्दों को डालना पड़ा और मराठी का ही अनुकरण कर के उन्होंने अदिलशाह को एदिल, बहादुरखाँ को बादरखाँ, शरजः को सरजा और संस्कृत के आयुष्मान को खुमान लिखा तथा अन्य विदेशी शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा। छत्रसालदशक तथा शृंगाररस की कविता में उन्होंने जैसी मँजी हुई भाषा का प्रयोग किया है, वह उपर्युक्त कथन को पुष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। सुदूर महाराष्ट्र में अपनी कविता का प्रचार करने के लिए ही उन्हें शिवाजी-सम्बन्धी कविता की भाषा को खिचड़ी बनाना पड़ा। पर उस खिचड़ी में भी ओज की कमी नहीं है। उनकी भाषा का सौंदर्य तो केवल इसी में है कि उसे पढ़ या सुन कर पाठकों और श्रोताओं के हृदयों में वीरों के आतंक, युद्ध-कौशल, रणचंडी नृत्य इत्यादि का पूरा चित्र खिंच जाता है। रस के अनुकूल शब्दों में भेरी-रव की विकट ध्वनि लक्षित होती है। प्रभावोत्पादन के लिए अथवा अनुप्रास के लिए जिस प्रकार की भाषा समीचीन है वैसी भाषा का भूषण ने प्रयोग किया है और ऐसा करने में उन्होंने शुद्ध संस्कृत शब्दों के साथ शुद्ध विदेशी शब्दों को मिलाने में भी संकोच नहीं किया; जैसे—"ता दिन अखिल खलभलैं खल खलक

मैं" में 'अखिल' और 'खल' शुद्ध संस्कृत शब्द हैं, 'खलभलैं' देशज है तथा 'खलक' अरबी भाषा का है; पर इनका ऐसा अनुप्रास और ओजपूर्ण सम्मिलन करना भूषण का ही काम है। ऐसे ही 'निखिल नकीब स्याह बोलत बिराह को' 'पान पीकदान स्याह सेनापति मुख स्याह' तथा 'जिनकी गरज सुन दिग्गज बेआब होत, मद ही के आब गरकाब होत गिरि हैं' में संस्कृत, देशज तथा विदेशी शब्दों का जोड़ देखने लायक है। इस अनुप्रास-योजना के लिए तथा ओज लाने के लिए भूषण ने स्थान-स्थान पर 'शिवाजी गाजी' का भी प्रयोग किया है। गाजी का अर्थ धर्मवीर अवश्य है, परन्तु साधारणतया वह काफिरों पर विजय प्राप्त करने वाले मुसलमान योद्धाओं के लिए ही प्रयुक्त होता है।

भाषा को सजाने की ओर भूषण का ध्यान था ही नहीं। अतः उन्होंने मुहावरों और लोकोक्तियों की ओर भी ध्यान नहीं दिया, फिर भी कई स्थानों पर मुहावरों का बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है। उनके काव्य में प्रयुक्त कुछ लोकोक्तियाँ या मुहावरे आगे दिये जाते हैं—

मुहावरे—
१. तारे सम तारे मुँदि गये तुरकन के।
२. तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के।
३. दन्त तोरि तखत तरें ते आयो सरजा।
४. नाह दिवाल की राह न धाओ।
५. कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है।
६. तिन होठ गहे अरि जात न जारे।

लोकोक्तियाँ—
१. सिंह की सिंह चपेट सहे गजराज सहे गजराज को धंका।
२. सौ सौ चूहे खाय कै बिलारी बैठी तप के।
३. छागो सहे क्यों गयंद को झप्पर।
१. काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर।

इन सबको देख कर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि यद्यपि भूषण की भाषा खिचड़ी है तथापि उसमें ओज़ आदि गुण होने के कारण वह अपने ही ढंग की है।

वर्णन-शैली

भूषण वीर-रस के कवि थे, युद्ध के मारू राग गाने वाले थे। उन्हें नागरिक या प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण का अवसर ही कहाँ मिल सकता था। पुस्तक के प्रारम्भ में शिवाजी की राजधानी के नाते रायगढ़ के वर्णन में तीन-चार छन्द हैं तथा ऐसे ही बीच में कहीं-कही एक-आध छन्द है, जो खासे अच्छे हैं। 'ऊँचो दुरग महाबली को जामैं नखतवली सों बहस दीपावली करत है' कितना अच्छा वर्णन है! दुर्ग की ऊँचाई कैसे व्यक्त की गई है! प्राकृतिक सौन्दर्य पर भूषण ने एक पद भी नहीं लिखा। उनके तो वर्ण्य-विषय थे—युद्ध, शिवाजी का यश, शिवाजी का दान, शिवाजी का आतंक, शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा।

युद्ध-वर्णन में भूषण ने कुछ स्थानों पर वीरगाथा-काल के कवियों की तरह अमृतध्वनि छन्द तथा अपभ्रंश शब्दों की बहुलता रखी है, पर कई स्थानों पर भूषण ने मनहरण कवित्त का ही प्रयोग किया है। लोमहर्षण युद्ध की भयंकरता दिखाने के लिए अमृत-ध्वनि छन्द ही उपयुक्त है, पर जहाँ साधारण आक्रमण आदि का वर्णन करना हो वहाँ अन्य छन्दों का प्रयोग भी हो सकता है। भूषण ने इसका बहुत ध्यान रखा है। प्राचीन परम्परा के अनुसार ही युद्ध-वर्णन में कई स्थानों पर चण्डी और भूत-प्रेतों का समावेश कराया है। आगे दो-एक उदाहरण दिये जाते हैं—

युद्ध-वर्णन

मुंड कटत कहुँ रुण्ड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत घिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषण तेज कियो अटल।
सिवराज साहि सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोल दल॥

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषन तमासे आय देव दमकत हैं।

किलकति कालिका कलेजे को कलल करि,
करिकै अलल भूत भैरों तमकत हैं ॥
कहुँ रुंड मुंड कहुँ कुण्ड भरे स्रोनित के,
कहुँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बन्ध पर,
धाय धाय धरनि कबन्ध धमकत हैं ॥

भयंकर जननाश से उमड़ते खून के समुद्र पर क्या ही अच्छी कल्पना है —

पारावार ताहि को न पावत है पार कोऊ,
सोनित समुद्र यहि भाँति रह्यो बढ़ि कै।
नाँदिया के पूँछ गहि पैरि कै कपाली बचे,
काली बची मांस के पहारु पर चढ़ि कै।

अपने नायक के यश-वर्णन के उद्देश्य से ही भूषण ने ग्रन्थ रचना प्रारम्भ की थी और महाकवि भूषण से पहले किसी कवि ने अपने नायक के यश-वर्णन मात्र के लिए कोई सम्पूर्ण ग्रन्थ हिन्दी में रचा भी नायक-यश-वर्णन न था। अतः उनका नायक का यश-वर्णन होना भी अनूठा चाहिये। किसी महत्कार्य को संपन्न करने वाला नायक ही यश प्राप्त करता है। यदि उसका प्रतिपक्षी महान हो, अमित पराक्रमी हो, तो उसको विजय कर नायक भी अमित यश का भागी होता है। अतः कुशल कवि नायक के यश का वर्णन करने के लिए पहले प्रतिनायक के पराक्रम और ऐश्वर्य का खूब बढ़ा कर वर्णन करते हैं। महाकवि भूषण को तो जिस प्रकार सौभाग्य से शिवाजी जैसे नायक मिले थे उसी प्रकार प्रतापी मुगल-सम्राट् औरंगजेब जैसा प्रतिनायक भी मिल गया था जो हिन्दू जाति को कुचल देने के लिए कटिबद्ध हो रहा था। अतः भूषण को उसके अत्याचारों के वर्णन करने का, उसके अनन्त बल और ऐश्वर्य को दिखाने का, तत्कालीन अन्य हिन्दू राजाओं की दुर्दशा का चित्र खींचने का तथा फिर अकेले धर्मवीर शिवाजी द्वारा उसका विरोध किये जाने और उसमें उनकी सफलता दिखाने का अनूठा अवसर मिल गया था। 'हम्मीर हठ' के लेखक चन्द्रशेखर वाजपेयी ने—चुहिया

के कूदने से हम्मीर के प्रतिनायक दिल्ली-सम्राट् अलाउद्दीन के डरने का वर्णन किया है। पर भूषण औरंगज़ेब का पराक्रम दिखाने में कभी नहीं चूके। भूषण जहाँ शिवाजी को सरजा (सिंह) की उपाधि से भूषित करते हैं, वहाँ औरंगजेब को 'मदगल गजराज' के नाम से पुकारते हैं। जहाँ शिवाजी के विषय में 'आय धर्‌यो हरि तें नर रूप' अथवा "म्लेच्छन को मारिबे को तेरो अवतार है" आदि पद प्रयुक्त करते हैं, वहाँ वे औरंगज़ेब को 'कुम्भकर्ण असुर औतारी' कहते हैं। इस प्रकार अनेक पद्यों की प्रारंभ की पंक्तियों में वे औरंगज़ेब के पराक्रम तथा अत्याचारों का वर्णन करते हैं और अंतिम पंक्तियों में उसपर विजय प्राप्त करने वाले शिवाजी का उत्कर्ष दिखाते हैं। देखिए, औरंगज़ेब के प्रभुत्व का वर्णन—

श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल,
भेजत रिसाल चौंर, गढ़ कुही बाज की।
मेवार, ढुँढार, मारवाड़ औ बुँदेलखंड,
झारखंड बाँधौ धनी चाकरी इलाज की॥
भूषन जे पूरब पछाँह नरनाह ते वैं,
ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की।
जगत को जेतवार जीत्यो अवरंगज़ेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की॥

औरंगज़ेब के अत्याचारों का भी वर्णन कैसे ज़ोर से किया है—

औरंग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जोराना भयो जालिम जमाना को।
देवल डिगाने राव-राने मुरझाने अरु,
धरम ढहाना पन मेर्‌यो है पुराना को॥
कीनो घमसाना मुगलाना को मसाना भरे,
जपत जहाना जस बिरद बखाना को।
साहि के सपूत सिवराना किरवाना गहि,
राख्यो है खुमाना बर बाना हिन्दुवाना को॥

इसी प्रकार शिवाबावनी के "सिवाजी न होतो तो सुनति होती सब की" वाले अनेक छन्दों में अगर शिवाजी न होते तो हिन्दुओं और हिन्दुस्तान की

क्या दशा होती इसका अत्युत्कृष्ट वर्णन कर भूषण ने नायक को बहुत ऊँचा उठाया है। साथ ही "अलि नवरंगज़ेब चंपा सिवराज है" वाले पद्यों से कवि ने शिवाजी को अधीन करने में सारे भारत को विजय करने वाले औरंगज़ेब की असमर्थता का बड़ा अच्छा चित्र खींचा है।

शिवाजी को अकेले औरंगज़ेब से ही नहीं लड़ना पड़ता था, बीजापुर गोलकुण्डा आदि के सुलतान भी औरंगज़ेब के साथ मिल कर या अलग अलग शिवाजी से लड़ते रहते थे। भूषण ने (शिवराज-भूषण की पद संख्या ६२ में) उन सब को मिला कर 'अत्याचारी कलियुग' का बड़ा अच्छा 'मुसलिम शरीर' बनाया है, जिसका शिवाजी ने खण्डन किया। इसी तरह उस समय एक ओर किस प्रकार अकेले शिवाजी थे, और दूसरी ओर सारा भारत था, इसका वर्णन फुटकर छन्द संख्या ११ में किया है, तथा अन्तिम पंक्ति में 'फिर एक ओर सिवराज नृप एक ओर सारी खलक' कह कर शिवाजी के अनन्त साहस का सुन्दर चित्र खींचा है। भूषण में एक और खूबी है—वह बीजापुर और गोलकुण्डा के सुलतानों को शिवाजी का प्रतिनायक (बराबर का विरोधी) नहीं बनाते, उनको तो वह इतना ही कह देते हैं—"जाहि देत दण्ड सब डरिकै अखण्ड सोई दिल्ली दल मती तो तिहारी कहा चली है" अथवा "बापुरो एदिलसाहि कहाँ, कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी।"

शिवाजी के सदा सफल होने का उल्लेख भूषण ने 'भूतल माँहि बली सिवराज भो भूषण भाखत शत्रु सुधा को' कह कर किया है। "भूषण भनत महाराज सिवराज तेरे राजकाज देखि कोई पावत न भेद है" कह कर कवि ने शिवाजी की गूढ़ राजनीति का भी परिचय दिया है। शरणागत शत्रुओं पर शिवाजी हाथ न उठाते थे, अतः कवि कहता है—"एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे"। हिन्दुओं की उन्नति में शिवाजी किस प्रकार उत्साहित होते हैं, और घर के भेदी विभीषण रूपी हिन्दुओं तक को मारने में भी उन्हें कितना कष्ट होता है, इसका मर्म निम्नलिखित पद्य में उद्घाटन कर कवि शिवाजी के देश- और जाति-प्रेम को प्रकट करता है—

काज मही सिवराज बली हिन्दुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै।
भूषन भू निरम्लेच्छ करी चहै म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै॥

हिन्दु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै ।
चन्द्र अलोक तें लोक सुखी यहि कोक अभागे को सोक न छूटै ।।

प्रतापी मुगल-सम्राट् का विरोध करने वाले शिवाजी ने क्या क्या किया इसका उल्लेख 'राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो' तथा "वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत" आदि छन्दों में करके "पूरब पछाँह देश दच्छिन तें उत्तर लौं जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को" और 'स्रो रँग है सिवराज बली जिन नौरँग में रँग एक न राख्यो' कह कर कवि अपने नायक के अधिकार और बल का खूब पोषण करता है। "कुन्द कहा पय वृन्द कहा अरु चंद कहा सरजा जस आगे" कह कर अपने नायक के धवल यश के सामने अन्य सब श्वेत वस्तुओं को तुच्छ समझता है और उस शुभ्र यश से धवलित त्रिभुवन में से अन्य धवल वस्तुओं के ढूँढने की कठिनाई का 'इन्द्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु' (पृ० १७७) बढ़िया वर्णन करता है। माना कि यह अतिरंजन है, पर ऐसा अतिरंजन साहित्य में पुराना चला आता है। संस्कृत के किसी कवि ने जब यहाँ तक कह डाला 'महाराज श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते, पयःपारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते' तो भला भूषण अपने यशस्वी नायक के वर्णन में ऐसा लिखने में कैसे चूक सकते थे ! सारांश यह है कि अपने नायक के यश-वर्णन में भूषण ने कोई बात छोड़ी नहीं और कहीं भी उन्हें असफलता नहीं मिली। साथ ही यह भी लिख देना आवश्यक है कि शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीरों का यश-वर्णन करनेवाला कवि केवल भाट या खुशामदी नहीं कहा जा सकता, अपितु वह तो हिन्दुओं के उस समय के भावों को ही व्यक्त करता है। क्योंकि शिवाजी के अवतार के बाद ही तो पराधीन हिन्दू जाति कह सकती थी कि "अब लग जानत हे बड़े होत पातसाह, सिवराज प्रकटे ते राजा बड़े होत हैं"। यदि आज के कवि महात्मा गांधी को भगवान कृष्ण का अवतार तथा उनके चरखे को सुदर्शन चक्र बना सकते हैं तो उस समय के हिन्दुओं के उद्धार में संलग्न तथा अत्याचार का विरोध करनेवाले वीर को "तू हरि को अवतार सिवा" कहने में अतिरंजन नहीं कहा जा सकता।

शिवाजी के यश की तरह भूषण ने शिवाजी के दान का भी बड़ा

उदात्त वर्णन किया है। भूषण कहते हैं—"ऐसो भूप भौंसिला है, जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है" और उसके दान का

दान-वर्णन

अंदाज़ा यों लगाया जाता है—"रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों, हयन की हौंस किये हाथी पाइयतु है"। उस महादानी ने जो गजराज कविराजों को दिये हैं, उनका वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है—

ते सरजा सिवराज दिए कविराजन को गजराज गरूरे,
सुण्डन सों पहिले जिन सोखिकै फेरि महा मद सों नद पूरे।

+ + +

तुण्डनाय सुनि गरजत गुंजरत भौंर
भूषन भनत तेऊ महामद छकसै।

+ + +

जिनकी गरज सुन दिग्गज बेआब होत
मद ही के आब गरकाब होत गिरि हैं।

कृपापात्र कविराजों के निवासस्थान के ऐश्वर्य का वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है—

लाल करैं प्रात तहाँ नीलमणि करैं रात,
याही भाँति सरजा की चरचा करत हैं।

इतने बड़े दानी के दान का सङ्कल्प-जल भी तो बहुत अधिक होगा, अतः भूषण उसका वर्णन करने में भी नहीं चूके।

भूषण भनत तेरो दान सङ्कल्प जल
अचरज सकल मही मैं लपटत है।
और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो
कर कोकनद नदी नद प्रगटत है।

कार्य से कारण की कैसी विचित्र उत्पत्ति बताई गई है! इतने बड़े दानी के सामने कल्पवृक्ष और कामधेनु की गिनती हो ही क्या सकती है! क्योंकि कामधेनु और कल्पवृक्ष का वर्णन तो केवल पुस्तकों में है और ये शिवाजी तो प्रत्यक्ष इतना दान देने वाले हैं। तभी तो भूषण कहते हैं—"कामना दानि

खुमान लखे न कछू सुररूख न देवगऊ है।" उस कामना-दानी के दान का बखान सुन कर और "भूषण जवाहिर जलूस जरबाफ जाति, देखि देखि सरजा के सुकवि समाज की" लोग तप करके कमलापति से यही माँगते हैं—

बैरारी जहाज के न राजा भारी राज के
भिखारी हमें कीजै महाराज सिवराज के।

इस प्रकार भूषण ने अपने उस नायक के दान का विशद वर्णन किया है, जिससे उन्हें पहली भेंट के अवसर पर ही अनेक लाख रुपए, अनेक हाथी और अनेक गाँव मिले थे। उसी दान से संतुष्ट हो कर तो भूषण ने सारे भारत के राजाओं के यहाँ घूमने के अनन्तर कहा था—

मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन ऋतैं बरसैं सरसैं, उमड़ैं नदियाँ ऋतु पावस पाए॥

इस दानवर्णन को जो लोग अतिरंजित कहते हैं उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि यह उस दानी के दान का वर्णन है जिसके दान की अद्भुत कहानियाँ महाराष्ट्र बखरों में भरी पड़ी हैं और यदुनाथ सरकार जैसे इतिहासज्ञों ने भी अपनी पुस्तकों में दी हैं, मुसलमान इतिहास-लेखक कैफीखाँ तक ने जिसके बारे में यह लिखा है कि आगरा से भाग कर जब शिवाजी तीर्थ-यात्री के वेश में बनारस पहुँचे थे, तब उन्होंने घाट पर स्नान कराने वाले पंडे को ६ हीरे, ६ अशरफी और ६ हून दे डाले थे, और जिसने शंभाजी को रायगढ़ पहुँचाने वाले ब्राह्मणों को एक लाख सोने की मोहरें नकद तथा दस हजार हून सालाना देने किये थे, जिसने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर एक लाख ब्राह्मणों, स्त्री-पुरुषों और बच्चों का पेट चार महीने तक मिठाइयों से भरा था, और लाखों रुपए दान में दे दिये थे†। कवि उस दानी के दान का वर्णन इससे कम कर ही क्या सकता था। यदि वह उसके दान की वस्तुओं की केवल गिनती मात्र करने बैठता तो वह कविता न रह जाती, वह तो केवल सूखा ऐतिहासिक वर्णन हो जाता है। काव्य में तो अतिशयोक्ति और अत्युक्ति अलंकारों का होना आवश्यक

---

† देखिए Sarkar : *Shivaji and His Times.* पृ० १७१, १७२, १७४, २४२।

ही है। भूषण ने तो छत्रपति शिवाजी जैसे महाराज से कविराजों को गजराज दिला कर उन्हें केवल बेफिक्र ही किया है, पर रीतिकाल के अन्य कवियों के अतिरञ्जित वर्णन की तो कोई सीमा ही नहीं। पद्माकर ने तो नागपुर के राजा रघुनाथ राव के दान का वर्णन करते हुए जगन्माता पार्वती को भी डरा दिया है—

दीन्हे गज बकस महीप रघुनाथ राय याहि गज धोखे कहुँ काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरि तें गरेतें निज गोद तें उतारै ना॥

सारांश यह कि भूषण द्वारा किया गया शिवाजी के दान का वर्णन उदात्त अवश्य है, पर इतना अतिरञ्जित नहीं जितना रीतिकाल के अन्य कवियों का।

भूषण ने शिवाजी के यश और शौर्य का उतना वर्णन नहीं किया, जितना शत्रुओं पर उनकी धाक का; तथा वह वर्णन है भी बहुत ओजस्वी, प्रभावोत्पादक और सजीव। क्योंकि शिवाजी के आतंक का वर्णन केवल वाणी-विलास के लिए अथवा अर्थ-प्राप्ति के लिए नहीं किया गया, परन्तु उसका उद्देश्य शिवाजी की धाक को चारों ओर फैलाना था, और उससे विपक्षियों को विचलित करना था। भूषण इसमें इतने सफल हुए हैं कि कई समालोचकों का मत हो गया है कि भूषण वीररस से भी अधिक भयानक रस में विशेषता रखते हैं। पर कई लोग भूषण के इस वर्णन में भी अतिरञ्जन का दोष लगाते हैं। उनके लिए हम इतना ही कह सकते हैं कि यदि वे भूषण के आतंक-वर्णन के अंतर्निहित उद्देश्य को समझ सकते और यदि वे इतिहास की पुस्तकों को देखते तो शायद ऐसा न कहते।

आतंक-वर्णन

शिवाजी की नीति सहसा आक्रमण की थी। खुल कर युद्ध करना उन की नीति के प्रतिकूल था। उसी नीति के बल से उन्होंने बीजापुर को नीचा दिखाया, अफ़ज़लखाँ का वध किया, और दिल्ली के बड़े-बड़े सरदारों को नाकों चने चबवाये। शाइस्ताखाँ की दुर्दशा भी इसी प्रकार हुई थी। इन घटनाओं से शत्रु शिवाजी को शैतान का अवतार समझने लगे थे†। कोई भी स्थान

---

† He was taken to be an incarnation of Satan; no

उनके आक्रमण से सुरक्षित न समझा जाता था, और कोई काम उनके लिए असम्भव न माना जाता था।

शत्रु उनका और उनकी सेना का नाम सुन कर काँपने लगते थे, और आक्रमण-स्थान पर उनके पहुँचने से पहले ही शहर खाली कर देते थे। सूरत की लूट के समय किसी को शिवाजी का मुकाबला करने का साहस नहीं हुआ था। शिवाजी का यह आतङ्क मुसलमानों में इतना छा चुका था कि जब शिवाजी औरंगजेब के यहाँ कैद थे, तब उन्होंने औरंगज़ेब से एकान्त में भेंट करने की आज्ञा माँगी पर औरंगज़ेब ने डर के मारे इनकार कर दिया। इस पर शिवाजी उसके प्रधान मंत्री जफरखाँ के पास गये, तब जफरखाँ की बीबी ने पति को देर तक शिवाजी से बातचीत करने से रोका और जफरखाँ जल्दी ही वहाँ से विदा हो गया*।

---

place was believed to be proof against his entrance and no feat impossible for him. The whole country talked with astonishment and terror of the almost superhuman deed done by him. *Shivaji and His Times.* by J. N. Sarkar, page 96.

* He then begged for a private interview with the Emperor...... .....The prime-minister Jafar Khan, warned by a letter from Shaista Khan, dissuaded the Emperor from risking his person in a private interview with a magician like Shiva. But Aurangzeb hardly needed other people's advice in such a matter. He was too wise to meet in a small room with a few guards the man who had slain Afzal Khan almost within sight of his 10000 soldiers, and wounded Shaista Khan in the very bosom of his harem amidst a ring of 20,000 Mughal troops, and escaped unscathed. Popular report credited Shiva with being a wizard with "an airy body", able to jump across 40 or 50 yards of space upon the person of his victim. The private audience was refused.

Shivaji next tried to win over the Prime-Minister,

शिवाजी के औरंगज़ेब के दरबार से निकल भागने पर तो मुसलमान उन्हें जादूगर ही कहने लगे थे। वे कहते थे 'गंधरव देव है कि सिद्ध है कि सेत्रा है ?'' सलहेरि के युद्ध के बाद तो उनका आतङ्क बहुत बढ़ गया था और दक्षिण विजय कर लेने पर दूर-दूर तक उनका आतंक छा गया था। दिल्ली-सम्राट् उनकी विजयों के कारण चिंतित था, बीजापुर और गोलकुण्डा उनसे अभयदान माँगते थे। हबशी, पुर्तगीज़ तथा अँगरेज भी उनसे काँपते थे। भूषण इसका क्या ही अच्छा वर्णन करते हैं--

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुरपति,
फिरति फिरंगिनी की नारी फरकति है॥
थर थर काँपत कुतुबसाह गोलकुण्डा,
हहरि हवस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है॥

इसके सिवाय भूषण ने शिवाजी के डर से डरे हुए सूबेदारों और मनसबदारों का भी बड़ा आकर्षक वर्णन किया है; कभी वे कहते हैं कि लोमश ऋषि के समान दीर्घ आयु हो तो शिवाजी से जा कर लड़ें, और कभी कहते हैं—

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते।

---

and paid him a visit, begging him to use his influence over the Emperor to send him back to the Decan with adequate resources for extending the Mughal Empire there. Jafar Khan warned by his wife (a sistet of Shaista Khan) not to trust himself too long in the company of Shiva, hurriedly ended the interview, saying "All right, I shall do so." *Shivaji and His Times*. by J. N. Sarkar, pp. 161-162.

भूषन कहैं यों अवरंग सों वजीर जीति,
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे की नाहिं डरते।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय, नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥

\+ + + +

दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव-आस एक संग ही।

शिवाजी की सेना के प्रयाण का भी बड़ा प्रकृष्ट वर्णन है —

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के
नाहीं ठहराने राव राने देस-देस के।
नग भहराने ग्राम-नगर पराने, सुनि,
बाजत निसाने सिवराजजू नरेस के ॥
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के।

कच्छप की पीठ के टूटने पर और शेषनाग के फणों के फटने का वर्णन पढ़ कर आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि भूषण उस रीति-काल के कवि हैं जिस काल की विरहिणी कृशांगी नायिका की आह से आसमान फट जाता था। और आज के कवि भी गांधी के निधन पर 'हाय, हिमालय ही पल में हो गया तिरोहित' और 'मलयानिल भी अब साँय साँय करता है' लिखते हैं। फिर भला विशाल मुगल-साम्राज्य से टक्कर लेने वाले शिवाजी के दल के दबाव से कच्छप की पीठ टूट जाय तो इस में आश्चर्य ही क्या है !

जब शत्रुओं का यह हाल था, तब उनकी सहजभीरु स्त्रियों का बेहाल होना तो स्वाभाविक ही था। भूषण ने शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा का बहुत अधिक और आलङ्कारिक वर्णन किया है। स्वर्णलता के समान उन कामिनियों के

मुख-रूपी चन्द्रमा में स्थित कमल-रूपी नेत्रों से पुष्परस-रूपी जो आँसू टपकते है उनका भूषण क्या ही सुन्दर वर्णन करते हैं--

कनकलतानि इन्दु, इन्दु माँहि अरविन्द
झरैं अरविन्दन से बुन्द मकरन्द के।

बादलों से अंगार एवं रक्त की वर्षा आदि अनहोनी बातों का होना अशुभ-सूचक है। भूषण भागती हुई शत्रु-स्त्रियों के केशों से गिरते हुए लालों को देख कर कैसी सुन्दर कल्पना करते हैं--

छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देखि,
भूषण सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होंहि बैरिन के झुण्डन मैं,
कारे घन घुमड़ि अँगारे बरखत हैं॥

शिवाजी के डर से भागती हुई शत्रु-स्त्रियों का भूषण ने कई स्थानों पर ऐसा वर्णन किया है जो आजकल आपत्तिजनक कहा जा सकता है, समाज शायद उसे अब पसन्द न करेगा। जैसे--

अन्दर ते निकसीं न मन्दिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं।
हवाहू न लागती ते हवा ते बिहाल भईं,
लाखन कै भीर मैं सम्हारती न छाती हैं॥
भूषन भनत शिवराज तेरी धाक सुनि,
हयादारी चीर फारि मन झुँझलाती हैं।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं॥

यद्यपि हम भी इस वर्णन को पसन्द नहीं करते, फिर भी कवि के साथ न्याय करने के लिए इतना कहना ठीक होगा कि हिन्दी-साहित्य में ही नहीं अपितु संस्कृत-साहित्य में भी शत्रुओं की दुर्दशा का वर्णन करने के लिए उनकी नारियों की दुर्दशा का वर्णन करने की परिपाटी रही है। 'हम शत्रु को मार गिराएँगे' के स्थान पर 'हम शत्रु-स्त्रियों को विधवा कर देंगे,' या 'उनकी स्त्रियों के बाल खुलवा देंगे' कहने को अधिक पसन्द किया जाता रहा है।

महाकवि विशाखदत्त-रचित मुद्राराक्षस नाटक में मलयकेतु अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा करते हुए कहता है—

"कर-वलय उर ताड़त गिरे आँचरहु की सुधि नहीं परी।
मिलि करहिं आरतनाद हा हा अलक खुलि रज-सों भरी॥
जो शोक सों भइ मातुगन की दशा सो उलटाइहैं।
करि रिपु-जुवतिगन की सोइ गति पितहिं तृप्ति कराइहैं॥"

वेणीसंहार नाटक में भी द्रौपदी की चेरी दुर्योधन की स्त्री भानुमती से कहती है—"अयि भानुमति युष्माकममुक्तेषु केशहस्तेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त इति"।

सारांश यह कि शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा के वर्णन में भूषण ने परंपरा का ही पालन किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूषण के वर्ण्य-विषय यद्यपि बहुत थोड़े थे तो भी जिसपर उन्होंने कलम उठाई है, उसे अच्छी तरह निभाया है, और उसमें कहीं त्रुटि नहीं रहने दी।

काव्य-दोष

भूषण की कविता में दोष भी कम नहीं हैं। शिवराज-भूषण में अलंकारों के लक्षणों और उनके उदाहरणों में जो त्रुटियाँ हैं, उनका निदर्शन पीछे किया जा चुका है। छन्दों में यतिभंग कई स्थानों पर है। जैसे—

जाहिर जहान जाके धनद समान पेखि—
यतु पासवान यों खुमान चित चाय है।

यह मनहरण कवित्त है, जिसमें ३१ वर्ण होते हैं, तथा ८, ८, ८ और ७ वर्णों पर अथवा १६ और १५ वर्णों पर यति होती है। पर इसकी पहली पंक्ति में 'पेखियतु' और दूसरी पंक्ति में 'खुमान' शब्द टूटता है। इसी प्रकार 'गज घटा उमड़ी महा घन घटा से घोर' में गति ठीक न होने के कारण रचना बड़ी उखड़ी सी है, यहाँ हतवृत्तत्व दोष है। भूषण की कविता में यह दोष बहुत अधिक है। इसमें से बहुत से छन्द-दोष तो प्रतिलिपिकारों की असावधानी अथवा परम्परा से याद रखने वाले भाटों के अज्ञान के कारण, अथवा बड़े

लेखक की कविता में निज रचना को जोड़ देने वालों की कृपा का फल हैं। तो भी कुछ दोष भूषण के भी रहे होंगे क्योंकि उन्होंने काव्योत्कर्ष की ओर इतना ध्यान नहीं दिया। इनमें से कुछ दोषों का उल्लेख आगे किया जाता है—

कंस के कन्हैया, कामदेव हू के कंठनील,
कैटभ के कालिका विहंगम के बाज हो।

यहाँ बड़ी ऊँची ऊँची उपमानावलि के बाद तुच्छ बाज पर उतर आना पतत्प्रकर्ष दोष है।

लवली लवंग यलानि केरे, लाखि हों लगि लेखिए।
कहुँ केतकी कदली करौंदा, कुंद अरु करबीर हैं।

यहाँ 'केरे' का अर्थ यदि 'केले' किया जाय तो आगे 'कदली' कहने से पुनरुक्ति दोष है। यदि 'केरे' का अर्थ 'के' मानें तो 'केरे' के आगे 'वृक्ष' होना चाहिये, अन्यथा न्यून-पदत्व दोष होता है।

सातौ बार आठौ याम जाचक नेवाजै नव
अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा।

यहाँ कृपान का कृपन कर देना खटकता है। इससे कवि की शब्दावलि की संकुचितता प्रतीत होने लगती है।

बिन अवलंब कलिकानि आसमान मैं है,
होत बिसराम जहाँ इंदु औ उदथ के।

यहाँ 'उदथ' का अर्थ 'उदय + अथ (अस्त) होने वाला' अर्थात् 'सूर्य' है। शब्द गढ़ा हुआ है, पर बहुत बिगड़ गया है, जिसका अर्थ सहसा स्फुरित नहीं होता; यहाँ क्लिष्टत्व दोष है।

नर लोक मैं तीरथ लसैं महि तीरथों की समाज में।
महि मैं बड़ी महिमा भली महिमै महारज लाज में॥

इन पंक्तियों में 'महि' शब्द का अर्थ अस्पष्ट है। यहाँ 'महि' का अर्थ 'महाराष्ट्र भूमि' लगाया गया है, जिसके लिए बड़ी खींचातानी करनी पड़ती है। 'रजलाज' का अर्थ 'लज्जायुक्त राज्यश्री' भी जबरदस्ती करना पड़ता है। इस तरह इस सारे पद्य का अर्थ अस्पष्ट है; यहाँ कष्टार्थत्व दोष है।

वीर रस की कविता को शृंगार रस के उपयुक्त ब्रजभाषा में लिखने

वाले पहले कवि भूषण थे। भूषण को अपना रास्ता स्वयं ही निकालना पड़ा था, अतएव भूषण को शब्दों को खूब तोड़ना-मरोड़ना पड़ा। इसी कारण कुछ दोष भी आ गये हैं, पर वे उल्लेखयोग्य नहीं है।

भूषण की विशेषताएँ

भूषण की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जातीय भावों की प्रधानता है। भूषण के पहले जितने भी वीररस के कवि हुए उनकी कविता में इन भावों का अभाव था। उनकी कल्पनानुसार एक कामिनी ही लड़ाई का कारण हो सकती थी। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध हुआ, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर किसी रूपवती कामिनी को ही कारण कल्पित करके उन वीर-कवियों ने अपनी रचनाएँ कीं। भूषण ही ऐसे महाकवि थे जिनकी कविता में सबसे पहले हिन्दू जाति का नाम सुना गया, जो अपने नायक की प्रशंसा केवल इसलिए करते हैं कि उसने हिन्दुओं की रक्षा की और हिन्दुओं के नाम को उज्ज्वल किया।

जातीयता की भावना

अपने नायक की विजयों को भूषण उनकी वैयक्तिक विजय नहीं मानते, अपितु हिन्दुओं की विजय मानते हैं और कहते हैं - "संगर में सरजा सिवाजी अरि सैनन को, सारु हरि लेत हिन्दुवान सिर सारु दै!" भूषण ही ऐसे कवि थे, जिन्होंने सब से पहले यह घोषणा की "आपस की फूट ही तें सारे हिन्दुवान टूटे"; जिन्हें उस समय के हिन्दू राजाओं की असहायावस्था चुभती थी, विशेषतः महाराणा प्रताप के वंशज उदयपुर के राणा की; जिन्होंने शिवाजी के बाद छत्रसाल बुन्देला की केवल इसलिए प्रशंसा की थी कि उन्होंने 'रोप्यो रन ख्याल ह्वै के ढाल हिन्दुवाने की।'

सारांश यह कि भूषण की कविता में जातीयता की भावना सर्वत्र व्याप्त है और वह तत्कालीन वातावरण तथा हिन्दुओं की मानसिक अवस्था की सच्ची परिचायक है। भूषण की वाणी हिन्दू जाति की वाणी है। इसी विशेषता के कारण भूषण हिन्दुओं के प्रतिनिधि कवि कहाते हैं। उन्हें हिन्दू जाति का जितना ध्यान और अभिमान था, उतना प्राचीन काल के अन्य किसी कवि

को नहीं हुआ। "परन्तु भूषण की जातीयता में भारतीय का भाव उतना नहीं है, जितना हिन्दूपन या हिन्दूधर्म का। यद्यपि उस समय हिन्दूपन का संदेश ही एक प्रकार से भारतीयता का संदेश था, क्योंकि मुसलमान प्रायः विदेशी थे" तथापि उसमें "मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस" आदि मुसलमानों के प्रति कुछ ऐसी कटूक्तियाँ भी हैं, जो वर्तमान समय की दृष्टि से कुछ अनुचित सी प्रतीत होती हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या भूषण की ये कटूक्तियाँ मुस्लिम-धर्म से स्वाभाविक द्वेष के कारण हैं अथवा औरंगज़ेब के अत्याचारों से तंग आये हुए जातीयता-प्रेमी व्यक्ति के उद्‌गार हैं। हम समझते हैं कि भूषण स्वभावतः मुस्लिम-द्वेषी न थे, परन्तु औरंगज़ेब के अत्यचारों ने ही भूषण को मुस्लिम-विरोधी बना दिया था। वे अत्याचारी के रूप में ही उसकी और उसके साथियों की निन्दा करते थे, तथा उसपर रोष और घृणा प्रकट करते थे। वे औरंगज़ेब की अत्याचार-प्रवृत्ति से हिन्दुओं में जाग्रति होना पाते हैं--"भूषण कहत सब हिंदुन को भाग फिरे चढ़े तो कुमति चकताहू की पिसानी मैं" इसीलिए वे औरंगज़ेब को उसके पुरखाओं—बाबर और अकबर—की याद दिला कर शिवाजी से मेल करने की सलाह देते हैं।

ऐतिहासिकता

भूषण की कविता की दूसरी विशेषता उसकी ऐतिहासिकता है। यद्यपि उसमें तिथि और संवत् के अनुसार घटनाओं का क्रम नहीं है, तथापि शिवाजी-सम्बन्धी सब मुख्य राजनीतिक घटनाओं का—उनकी मुख्य-मुख्य विजयों का—उल्लेख है। "ऐतिहासिक घटनाओं के साथ इनकी सत्यप्रियता बहुत प्रशंसनीय है।" किसी भी घटना में भूषण ने तोड़-मरोड़ नहीं की तथा अपनी ओर से कुछ जोड़ा नहीं। भूषण की कविता में जिन घटनाओं का उल्लेख है उनमें से बहुतों का हमने शिवाजी की जीवनी में निर्देश कर दिया है। कई स्थानों पर हमने प्रसिद्ध इतिहास-लेखकों के उद्धरण भी दिये हैं, जिनको देखने से पता लग सकता है कि भूषण ने ऐतिहासिक सत्यों का किस तरह पालन किया है। कई स्थानों पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐतिहासिकों ने भूषण के पद्य का अनुवाद कर के ही रख दिया है। हम तो इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मराठा इतिहास को ठीक-ठीक पढ़े बिना जिन्होंने भूषण की कविता का अर्थ लगाने का

प्रयत्न किया है उन्होंने स्थान-स्थान पर भूलें की हैं और यदि भूषण की कविता से ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेखयुक्त पद्यों को छाँट कर तिथि-क्रम से रख दिया जाय तो शिवाजी की अच्छी खासी जीवनी तैयार हो सकती है। भूषण से पहले किसी भी कवि ने ऐतिहासिकता का इस तरह पालन नहीं किया।

भूषण की कविता की तीसरी विशेषता है उसका मौलिक और सरल भाव-व्यंजना से युक्त होना। यद्यपि काल-दोष से भूषण को रीतिबद्ध ग्रंथ-रचना

मौलिकता और सरल-भाव-व्यंजना

करनी पड़ी, परन्तु उस रीतिबद्ध ग्रंथ-रचना में भी भूषण ने अपनी मौलिकता और सरल भाव-व्यञ्जना का परित्याग नहीं किया। मौलिकताा के कारण ही उन्होंने तत्कालीन शृंगार-प्रणाली को छोड़ कर नये रस और नई प्रणाली को अपनाया। इसके अतिरिक्त उनकी आलोचना करते हुए हम यह दिखा चुके हैं कि किस तरह शुष्क ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हुए उन्होंने नवीन और मौलिक ढंग की अलंकार-योजना की है। उनकी कविता में पुरानी ही उक्तियों का पिष्टपेषण नहीं है, तथा न केवल शब्दों का इन्द्रजाल ही है, अपितु सीधे सरल शब्दों में प्राकृतिक तथ्यों का इतिहास से अनुपम मेल दिखाया गया है। भाषा की स्वच्छता तथा काव्योत्कर्ष के कृत्रिम साधनों पर उन्होंने उतना ध्यान नहीं दिया, जितना सीधे किन्तु प्रभावशाली ढंग के वर्णन पर दिया है।

इन्हीं तीन विशेषताओं के कारण भूषण ने अपने लिए विशेष स्थान बना लिया है।

हिन्दी साहित्य में भूषण का स्थान

भूषण का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है यह एक विचारणीय प्रश्न है। हम देख चुके हैं कि वीरगाथा-काल के कवियों में किसी भी कवि ने शुद्ध वीर रस की कविता नहीं लिखी। उनकी कविता में शृंगार रस का पर्याप्त पुट था, साथ ही उनकी कविता में जातीय चेतना न थी। राजाश्रित होने के कारण उनमें उच्च भावों की भी कमी थी। अतः उनकी तुलना भूषण और लाल जैसे विशुद्ध वीर रस के कवियों से नहीं हो सकती जिनकी कविता में जातीय भावना की पद-पद पर झलक है। वीरगाथा-काल के द्वितीय उत्थान

में ही हम शुद्ध वीर रस की कविता पाते हैं। इस काल के तीन कवि प्रमुख हैं, भूषण, लाल और सूदन। सूदन की कविता में यद्यपि वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है, पर उसमें भी जातीयता की वह चेतना नहीं मिलती जो भूषण और लाल में है। इसके अतिरिक्त सूदन ने स्थान-स्थान पर अस्त्र-शस्त्रों की सूची दे कर तथा अरबी फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग कर अपनी कविता को नीरस कर दिया है। इस प्रकार भूषण और लाल दो ही वीर रस के प्रमुख कवि रह जाते हैं। इनमें भी भूषण का पलड़ा भारी है। यद्यपि कविवर लाल की कविता में प्रायः सब गुण हैं और दोष बहुत कम हैं, पर लाल छन्द के निर्वाचन में चूक गये हैं। साथ ही उनकी रचना भूषण की रचना की तरह मुक्तक नहीं है अपितु प्रबन्धकाव्य है। इस कारण कई स्थानों पर वह केवल ऐतिहासिक कथा मात्र रह गई है, जिससे लालित्य कम हो गया है। इसलिए वीररस के कवियों में भूषण ही सर्वश्रेष्ठ ठहरते हैं।

अब प्रश्न यह है कि भूषण का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है। विद्वान् समालोचक मिश्रबंधु 'हिन्दी नवरत्न' ने लिखते हैं—"भूषण की कविता के ओज और उद्दण्डता दर्शनीय हैं। उसमें उत्कृष्ट पद्यों की संख्या बहुत है। हमने इनके प्रकृष्ट कवित्तों की गणना की, और उन्हें केशवदास एवं मतिराम के पद्यों से मिलाया, तो इनकी कविता में वैसे पद्यों की संख्या या उनका औसत अधिक रहा। इसी से हमने भूषण का नंबर बिहारी के बाद और इन दोनों के ऊपर रक्खा है।" इस प्रकार वे हिन्दी-कवियों में भूषण को तुलसी, सूर, देव और बिहारी के बाद पाँचवाँ नम्बर देते हैं। हम उनके इस क्रम के साथ पूर्ण-तया सहमत नहीं हैं, परन्तु इतना हम मानते हैं कि जातीयता आदि गुणों के कारण भूषण का स्थान हिन्दी के इने-गिने कवियों में है। "हिन्दी नवरत्न में वीर रस के पूर्ण प्रतिपादक एक मात्र यही महाकवि हैं।" "भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को आपने वीरकाव्य का विषय बनाया वे अन्याय-दमन में तत्पर, हिन्दू-धर्म के संरक्षक, दो इतिहास-प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिन्दू-जनता के हृदय में उस समय भी थी और आगे भी बराबर बनी रही या बढ़ती गई। इसी से भूषण के वीर रस के उद्‌गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति हुए। भूषण की कविता कवि-कीर्ति-सम्बन्धी एक अवि-

चल सत्य का दृष्टान्त है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्त्ति तब तक बराबर बनी रहेगी जब तक स्वीकृति बनी रहेगी। क्या संस्कृत साहित्य में, और क्या हिन्दी साहित्य में, सहस्रों कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में ग्रन्थ रचे जिनका आज पता तक नहीं है। जिस भोज ने दान दे दे कर अपनी इतनी तारीफ कराई उसके चरितकाव्य भी कवियों ने लिखे होंगे। पर उन्हें आज कौन जानता है?"

शिवराज-भूषण

मंगलाचरण

गणेश-स्तुति

कवित्त मनहरण*

बिकट अपार भव-पंथ के चले को स्रम-
हरन, करन-बिजना से ब्रह्म ध्याइए।
यहि लोक परलोक सुफल करन कोक-
नद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए॥
अलिकुल-कलित-कपोल, ध्यान ललित,
अनंदरूप-सरित मैं भूषण अन्हाइए।
पाप-तरु - भंजन, बिघन - गढ़-गंजन
जगत-मन-रंजन, द्विरदमुख गाइए॥

शब्दार्थ—करन = कर्ण, कान। बिजना = व्यञ्जन, पंखा। ब्रह्म = श्रीगणेश जी, भवानी, सूर्य, विष्णु और महादेव ये पाँच ब्रह्म रूप माने जाते हैं, यहाँ गणेशजी से तात्पर्य है। भूषण ने इनमें से आदि तीन की स्पष्ट रूप से स्तुति की है, विष्णु और शिव की क्रमशः चौथे और पाँचवें दोहों में केवल चर्चा-मात्र की है। कोकनद = लाल कमल। जुड़ाइए = शीतल कीजिये। कलित = युक्त। ललित = सुन्दर। भंजन = तोड़ना। गंजन = नाश करना। द्विरद = हाथी। द्विरदमुख = हाथी के समान मुख वाले, श्री गणेश जी।

अर्थ—ब्रह्मस्वरूप श्री गणेशजी का ध्यान कीजिए जो अपने कानरूपी पंखे (के झलने) से इस विकट अपार संसार-रूपी मार्ग में चलने की थकान को दूर करते हैं। इस लोक और परलोक में मनोरथ सफल करने के लिए

---

* यह वर्णवृत्त है। इसमें ३१ वर्ण होते हैं, गुरु लघु का कोई नियम नहीं होता, किन्तु १६ और १५ वर्णों पर यदि होती है। यदि ८, ८, ८ तथा ७ वर्णों पर यति हो तो लय अच्छी रहती है। अन्त में लघु गुरु होना चाहिए।

चल सत्य का दृष्टान्त है । जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्त्ति तब तक बराबर बनी रहेगी जब तक स्वीकृति बनी रहेगी । क्या संस्कृत साहित्य में, और क्या हिन्दी साहित्य में, सहस्रों कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में ग्रन्थ रचे जिनका आज पता तक नहीं है । जिस भोज ने दान दे दे कर अपनी इतनी तारीफ कराई उसके चरितकाव्य भी कवियों ने लिखे होंगे । पर उन्हें आज कौन जानता है ?"

शिवराज-भूषण

मंगलाचरण

गणेश-स्तुति

कवित्त मनहरण*

बिकट अपार भव-पंथ के चले को स्रम-
हरन, करन-बिजना से ब्रह्म ध्याइए।
यहि लोक परलोक सुफल करन कोक-
नद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए॥
अलिकुल-कलित-कपोल, ध्यान ललित,
अनंदरूप-सरित मैं भूषण अन्हाइए।
पाप-तरु - भंजन, बिघन - गढ़-गंजन
जगत-मन-रंजन, द्विरदमुख गाइए॥

शब्दार्थ—करन = कर्ण, कान। विजना = व्यञ्जन, पंखा। ब्रह्म = श्रीगणेश जी, भवानी, सूर्य, विष्णु और महादेव ये पाँच ब्रह्म रूप माने जाते हैं, यहाँ गणेशजी से तात्पर्य है। भूषण ने इनमें से आदि तीन की स्पष्ट रूप से स्तुति की है, विष्णु और शिव की क्रमशः चौथे और पाँचवें दोहों में केवल चर्चा-मात्र की है। कोकनद = लाल कमल। जुड़ाइए = शीतल कीजिये। कलित = युक्त। ललित = सुन्दर। भंजन = तोड़ना। गंजन = नाश करना। द्विरद = हाथी। द्विरदमुख = हाथी के समान मुख वाले, श्री गणेश जी।

अर्थ—ब्रह्मस्वरूप श्री गणेशजी का ध्यान कीजिए जो अपने कानरूपी पंखे (के झलने) से इस विकट अपार संसार-रूपी मार्ग में चलने की थकान को दूर करते हैं। इस लोक और परलोक में मनोरथ सफल करने के लिए

---

* यह वर्णवृत्त है। इसमें ३१ वर्ण होते हैं, गुरु लघु का कोई नियम नहीं होता, किन्तु १६ और १५ वर्णों पर यदि होती है। यदि ८, ८, ८ तथा ७ वर्णों पर यति हो तो लय अच्छी रहती है। अन्त में लघु गुरु होना चाहिए।

श्रीगणेशजी के लाल-कमल के समान चरणों को हृदय में धारण कर उसे शीतल कीजिए। भूषण कवि कहते हैं कि जिनके कपोल भौंरों के समूह से युक्त हैं (मद के कारण भौंरे हाथी के गंडस्थल पर मँडराते हैं) और जिनका ध्यान धरना बड़ा सुन्दर है, ऐसे श्रीगणेशजी की आनन्द देने वाली रूप-नदी (अथवा आनंद-रूपी नदी) में स्नान कीजिए। पाप-रूपी वृक्ष के तोड़ने वाले विघ्नों के किले का नाश करने वाले और संसार के मन को प्रसन्न करने वाले श्रीगणेश जी के गुणों का गान करना चाहिए।

अलंकार—भव-पंथ, आनन्द-रूप सरित, पाप-तरु, विघन-गढ़ में रूपक है। कोकनद से चरन और द्विरद-मुख में उपमा है। पद में वृत्यनुप्रास भी है।

भवानी-स्तुति

छप्पय अथवा षट्पद†

जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-विमर्दिनि॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडनि।
जै सुरक्त जै रक्तबीज बिड्डाल-बिहंडिनि॥
जै जै निसुंभ सुंभदलनि, भनि भूषन जै जै भननि।
सरजा समत्थ शिवराज कहँ, देहि बिजै जै जग-जननि॥२॥

शब्दार्थ—जयंति = विजयिनी, देवी। कपर्दिनि = कपर्दी (शिव) की स्त्री पार्वती, भवानी। मधुकैटभ = मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य थे, जिन्हें विष्णु भगवान ने मारा था। योगमाया (देवी) ने इनकी बुद्धि को छला था, तभी ये मारे गये थे। महिष = एक राक्षस जिसे दुर्गा ने मारा था। विमर्दिनि = मर्दन करने वाली, नाश करने वाली। चमुंड = चामुंडा, दुर्गा। चंड मुंड = दो राक्षस, इन्हें दुर्गा ने मारा था, ये शुंभ निशुंभ के सेनापति थे। भंडासुर =

---

† यह छह पद का मात्रिक छन्द है, इसमें प्रथम चार पद रोला छन्द के और अन्तिम दो उल्लाला छन्द के होते हैं। रोला छन्द का प्रत्येक पद २४ मात्रा का होता है और उसमें ११ और १३ मात्राओं पर यति होती है। उल्लाला छन्द २८ मात्रा का होता है, जिसमें पहली यति १५वीं मात्रा पर होती है।

इस नाम का कोई प्रसिद्ध राक्षस नहीं पाया जाता जिसे दुर्गा ने मारा हो; यह विशेषण शब्द जान पड़ता है—भंड + असुर = भंड (पाखंडी) असुर, पाखंडी राक्षस। चंड मुंड भंडासुर = पाखंडी चंड और मुंड राक्षस। सुरक्त रक्तबीज = रक्तबीज और सुरक्त ये दो राक्षस थे, इन्हें दुर्गा ने मारा था। बिड्डाल—विडालाक्ष दैत्य, इसे दुर्गा ने मारा था। बिहंडिनि = मारने वाली। निसुंभ सुंभ = ये दोनों दैत्य कश्यप ऋषि के पुत्र थे। तपस्या द्वारा वरदान पा कर ये बड़े प्रबल हो गये थे और बड़ा अत्याचार करने लगे थे। इन्होंने देवताओं को जीत लिया था। जब इन्होंने रक्तबीज से सुना कि देवी ने महिषासुर को मार डाला, तब इन्होंने देवी को नष्ट करने की ठानी। तब देवी ने इन सब को सेना सहित मार डाला। भनि = कहता है। भननि = कहने वाली, सरस्वती। सरजा = (फारसी) सरजाह उपाधि, जो ऊँचे दर्जे के लोगों को मिलती थी। शिवाजी के किसी पूर्व पुरुष को यह उपाधि मिली थी; सरजा = (अरबी) शरजः = सिंह। समत्थ = समर्थ, शक्तिशाली।

अर्थ—हे विजयिनी! आदि शक्ति! कालिका भवानी! आपकी जय हो। आप मधु और कैटभ दैत्यों को छलनेवाली तथा महिषासुर का नाश करने वाली हो। हे चामुंडे! आप चंड मुंड जैसे पाखंडी राक्षसों को नष्ट करनेवाली हो। आप ही ने सुरक्त, रक्तबीज और विडाल को मारा है, आप की जय हो। भूषण कवि कहते हैं कि आप निशुंभ और शुंभ दैत्यों का नाश करने वाली हो और आप ही सरस्वती-रूप हो अथवा 'जय-जय' शब्द कहने वाली हो, आपकी जय हो। हे जगन्माता! आप शक्तिशाली सरजा राजा शिवाजी को विजय प्रदान कीजिये, आपकी जय हो।

अलंकार—उल्लेख और वृत्यनुप्रास, 'ड' की कई बार आवृत्ति हुई है।

सूर्यस्तुति

दोहा§—तरनि, जगत-जलनिधि-तरनि, जै जै आनँद-ओक।
कोक-कोकनद-सोकहर, लोक लोक आलोक ॥३॥

---

§ यह मात्रिक छन्द है, इसके पहले और तीसरे चरण में १३ और दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं।

शब्दार्थ—तरनि = सूर्य, नौका । जगत-जलनिधि = संसार-रूपी समुद्र । ओक = स्थान । कोक = चक्रवाक पक्षी, यह सूर्य को देख कर बड़ा प्रसन्न होता है । कोकनद = कमल । आलोक = प्रकाश ।

अर्थ—हे आनन्द के स्थान श्री सूर्यभगवान ! आप संसार-रूपी समुद्र के लिए नौका स्वरूप हैं । आप ही चक्रवाक और कमलों का दुख दूर करने वाले हैं । समस्त संसार में आपही का प्रकाश है, आपकी जय हो ।

अलंकार—'तरनि जलनिधि तरनि' 'लोक लोक-आलोक में' यमक है । 'क' अक्षर की आवृत्ति कई बार होने से वृत्यनुप्रास । जगत-जलनिधि-तरनि में रूपक है ।

अथ राजवंश-वर्णन

दोहा—राजत है दिनराज को, बंस अवनि अवतंस ।
जामैं पुनि पुनि अवतरे, कंसमथन[1] प्रभुअंस ॥४॥

शब्दार्थ—दिनराज = सूर्य । अवतंस = मुकुट, श्रेष्ठ । कंसमथन = कंस का नाश करने वाले, श्रीकृष्ण (विष्णु) । प्रभु = ईश्वर । प्रभु अंश = ईश्वरांश, अंशावतार । अवनि = पृथ्वी ।

अर्थ—सूर्य वंश पृथिवी पर श्रेष्ठ है । जिस वंश में समय समय पर विष्णु भगवान के अंशावतार हुए हैं ।

अलङ्कार—उदात्त, यहाँ सूर्यवंश की प्रभुता का वर्णन है ।

दोहा—महावीर ता बंस मैं, भयो एक अवनीस ।
लियो बिरद "सीसौदिया" दियो ईस[2] को सीस ॥५॥

शब्दार्थ—बिरद = पदवी । सीसौदिया = सीसौदिया-वंशज क्षत्रिय जो उदयपुर और नेपाल के राज्याधिकारी हैं । इनके पूर्व-पुरुषों में राहप जी एक बड़े प्रतापी राजा हुए । उनके सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि उन्होंने भूल से एक बार शराब पी ली थी । इसके प्रायश्चित्त में उन्होंने गरम सीसा पी कर अथवा अपना शीश महादेव को चढ़ा कर प्राण त्याग दिये ।

---

१. यहाँ विष्णु नाम-निर्देश से विष्णु-वंदना लक्षित होती है ।
२. यहाँ भी ईश नाम निर्देश से महादेव की वंदना लक्षित है ।

तभी से इस वंश को 'सीसौदिया' पदवी मिली। किसी किसी का मत है कि ये 'सीसोदा' ग्राम के वासी थे। शिवाजी इसी वंश के थे।

अर्थ—इसी वंश में एक बड़े बली राजा हुए जिन्होंने भगवान् शिव को अपना शीश दे कर **"सीसौदिया"** की पदवी पाई।

अलंकार—निरुक्ति, यहाँ सीसौदिया नाम का अर्थ निरूपण किया गया है।

दोहा—ता कुल मैं नृपवृन्द सब, उपजे बखत बलन्द।
भूमिपाल तिन मैं भयो, बड़ो "माल मकरन्द" ॥६॥

शब्दार्थ—बखत बलन्द = (फारसी = बख्त = भाग्य, बलन्द = ऊँचा) भाग्यवान। भूमिपाल = राजा। मालमकरन्द = नाम, इन्हें 'मालोजी' भी कहते हैं।

अर्थ—इस वंश में सब राजागण बड़े भाग्यवान उत्पन्न हुए। इन्हीं में मालमकरन्द जी बड़े प्रतापी राजा हुए।

दोहा—सदा दान-किरवान मैं, जाके आनन अंभु।
साहि निजाम सखा भयो, दुग्ग देवगिरि खंभु ॥७॥

शब्दार्थ—किरवान = कृपाण। दान किरवान में = कृपाण दान में, युद्ध के समय। आनन = मुख। अंभु = (अंभस्) जल, आब, कान्ति। दुग्ग = (सं० दुर्ग) किला। साहि निजाम = निज़ामशाह, अहमदनगर का बादशाह।

अर्थ—जिसके मुख पर युद्ध के समय सदा आब रहती थी अथवा युद्ध और दान के लिए सदा जिसके मुख में पानी भरा रहता था और देवगिरि किले के स्तम्भस्वरूप निज़ामशाह भी जिसके मित्र थे।

दोहा—ताते सरजा विरद भो, सोभित सिंह प्रमान।
रन-भू-सिला सुभौंसिला[1] आयुषमान खुमान ॥८॥

शब्दार्थ—प्रमान = समान। रन-भू-सिला = रणभूमि में पत्थर के समान अचल। खुमान = आयुष्मान, दीर्घजीवी, राजाओं को संबोधन करने की

---

१. शिवाजी के वंश का नाम भौंसिला क्यों पड़ा था, इसके लिए भूमिका में शिवाजी का चरित्र देखिए।

एक पदवी ।

अर्थ—वे सिंह के समान शोभित हुए, इसी हेतु उनको 'सरजा' की उपाधि मिली । रणभूमि में पत्थर की शिला के समान अचल रहने के कारण उनका नाम 'भौंसिला' पड़ा । और इस आयुष्मान (चिरंजीव) राजा का नाम खुमान भी प्रसिद्ध हुआ ।

अलंकार—निरुक्ति; यहाँ भौंसिला नाम के अर्थ का निरूपण किया गया है ।

विवरण—सरजा, भौंसिला और खुमान ये उपाधियाँ हैं । ये मालोजी को मिली थीं । भूषण इन्हीं उपाधियों से शिवाजी को पुकारते थे ।

दोहा—भूषन भनि ताके भयो, भुव-भूषन नृप साहि ।
रातौ दिन संकति रहैं, साहि सबै जग माँहि ।।९।।

शब्दार्थ—भुव = भूमि, पृथिवी । भूषन = भूषण, गहना । भुवभूषन = पृथिवी का भूषण, सर्वश्रेष्ठ । नृपसाहि = राजा शाहजी । साहि = शाह, बादशाह ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सर्वश्रेष्ठ महाराजा शाहजी ने इन्हीं (मालोजी) के घर जन्म लिया, जिनके भय से सारी दुनियाँ के बादशाह रात-दिन भयभीत रहते थे ।

अलंकार—यमक, 'भूषण भुव-भूषन' में और 'नृपसाहि साहि में ।'

शाहजी का वैभव-वर्णन

कवित्त-मनहरण

एते हाथी दीन्हे माल मकरंदजू के नंद,
जेते गनि सकति बिरंचि हू की न तिया ।
भूषन भनत जाकी साहिबी सभा के देखे,
लागैं सब और छितिपाल छिति मैं छिया ।।
साहस अपार, हिंदुवान को अधार धीर,
सकल सिसौदिया सपूत कुल को दिया ।
जाहिर जहान भयो, साहिजू खुमान वीर,
साहिन को सरन, सिपाहिन को तकिया ।।१०।।

शब्दार्थ—बिरंचिहू की न तिया = विरंचि (ब्रह्मा) की तिया (स्त्री)

सरस्वती भी नहीं। साहिबी = वैभव। छितिपाल = छिति + पाल, पृथिवीपाल, राजा। छिया = छुए हुए, मलिन। सरन = शरण, स्थान। तकिया = आश्रय, सोते समय सिर के नीचे रखने की वस्तु।

अर्थ—माल मकरन्दजी के पुत्र शाहजी ने इतने हाथी दान में दिये जिनको सरस्वती भी नहीं गिन सकती। भूषण कवि कहते हैं कि इनकी सभा के वैभव को देख पृथ्वी के अन्य राजागण अत्यन्त मलिन मालूम होते थे। अपार साहसी, हिन्दुओं के आधार, धैर्यवान, समस्त सिसौदिया-कुल के दीपक, वीर शाहजी खुमान, बादशाहों को शरण और सिपाहियों को आश्रय देने में संसार भर में प्रसिद्ध हो गये।

अलङ्कार—प्रथम पंक्ति में असम्बन्धातिशयोक्ति। द्वितीय पंक्ति में व्यतिरेक और तीसरी और चौथी में उल्लेख है।

शिवाजी का जन्म

दोहा—दसरथ जू के राम भे बसुदेव के गोपाल।
सोई प्रकटे साहि के श्री शिवराज भुवाल ॥११॥

अर्थ—जिस प्रकार दशरथजी के श्रीरामचन्द्र और वसुदेव के गोपाल (श्री कृष्ण) उत्पन्न हुए उसी भाँति शाहजी के (ईश्वरावतार) शिवाजी प्रकट हुए।

अलङ्कार—यहाँ शिवाजी का अवतार होना राम कृष्ण आदि का नाम उल्लेख कर वचनों की चतुराई से वर्णन किया है, अतः पर्यायोक्ति है।

दोहा—उदित होत सिवराज के, मुदित भये द्विज-द्वेव।
कलियुग हट्यो मिट्यो सकल म्लेच्छन को अहमेव ॥१२॥

शब्दार्थ—उदित = प्रकट। द्विज-देव = ब्राह्मण और देवता। अहमेव = अहंकार, अभिमान।

अर्थ—शिवाजी के उत्पन्न होते ही सारे ब्राह्मण और देवता बड़े प्रसन्न हुए। कलियुग मिट गया अर्थात् कलियुग का सारा दुःख दूर हो गया और सब म्लेच्छों का अभिमान नष्ट हो गया।

अलंकार—काव्यलिंग—शिवाजी के अवतार होने का समर्थन उनके

जन्म होते ही ब्राह्मण और देवताओं का प्रसन्न होना धर्मापत्ति मिटना और म्लेच्छों का अभिमान नष्ट होना आदि द्वारा होता है।

कवित्त मनहरण

जा दिन जनम लीन्हों भू पर भुसिल भूप,
ताही दिन जीत्यो अरि उर के उछाह को।
छठी छत्रपतिन को जीत्यो भाग अनायास,
जीत्यो नामकरण मैं करन-प्रवाह को॥
भूषन भनत, बाल लीला गढ़कोट जीत्यो,
साहि के शिवाजी, कर चहूँ चक्क चाह को।
बीजापुर गोलकुंडा जीत्यो लरिकाई ही में,
ज्वानी आए जीत्यो दिल्लीपति पातसाह को॥१३॥

शब्दार्थ—उछाह = उत्साह। छठी = जन्म से छठे दिन। छत्रपति = राजा (छत्र धारण करने वाला)। करण प्रवाह = राजा कर्ण के दान का प्रवाह। चक्क = (सं० चक्र) दिशा। चाह = चाहना, इच्छा।

अर्थ—जिस दिन पृथ्वी पर भौंसिला राजा शिवाजी ने जन्म लिया उसी दिन वैरियों के दिलों का उत्साह नष्ट हो गया। छठी के दिन सहज ही में उन्होंने राजाओं का भाग्य जीत लिया। नामकरण के दिन इतना दान दिया गया कि राजा कर्ण के दान के प्रवाह को भी उसने जीत लिया। भूषण कवि कहते हैं कि साहजी के पुत्र शिवाजी ने बाल-क्रीड़ा में चारों दिशाओं के किलों को सहज इच्छा से ही जीत लिया। जब किशोरावस्था (लड़काई) आई तो बीजापुर और गोलकुंडा को विजय किया और जब जवान हुए तो दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब को परास्त किया।

दोहा—दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास।
सिव सेवक सिव गढ़पती, कियो रायगढ़ बास॥१४॥

शब्दार्थ—जिति = जीत कर। सहार विलास = हार युक्त, शोभा धारण किये हुए। 'हार' जंगल को भी कहते हैं।

'सहार' के स्थान पर 'सँहार' पाठ भी मिलता है। यह पाठ मानने पर 'दुग्ग सँहार बिलास' इस पद का यों अर्थ होगा—किलों का संहार करना

जिसके लिए विलास (खिलवाड़) है। यहाँ यह पद शिवाजी का विशेषण है। इस प्रकार इस दोहे के तीन अर्थ हो सकते हैं।

अर्थ—(१) दक्षिण के समस्त किलों को जीत कर उन सबकी हार (माला) के समान शोभा धारण किये हुए (जीते हुए किले सब चारों ओर माला की भाँति थे) रायगढ़ को शिव-भक्त शिवाजी ने अपना निवास-स्थान बनाया। रायगढ़ जीते हुए किलों के मध्य में था)।

(२) दक्षिण के सब किलों को जीत कर उन किलों के साथ जंगल में अवस्थित रायगढ़ को शिवभक्त शिवाजी ने अपना निवास-स्थान बनाया।

(३) किलों का संहार करना जिसके लिए खिलवाड़ है ऐसे शिवभक्त शिवाजी ने दक्षिण के सब किले जीत कर रायगढ़ को अपना निवासस्थान बनाया।

अथ रायगढ़ वर्णन

मालती सवैया†

जा पर साहि तनै सिवराज सुरेस कि ऐसी सभा सुभ साजै।
यों कवि भूषण जंपत हैं लखि संपति को अलकापति लाजै॥
जा मधि तीनिहु लोक कि दीपति ऐसो बड़ो गढ़राज बिराजै।
वारि पताल सी माची मही अमरावति की छवि ऊपर छाजै॥१५॥

शब्दार्थ—तनै = (सं०-तनय) पुत्र। जंपत = कहते हैं। अलकापति = कुबेर। दीपति = दीप्ति, छबि। गढ़राज = रायगढ़। बारि = जल, यहाँ खाई, जिसमें जल भरा रहता है उससे तात्पर्य है। माची = कुर्सी, पुस्ती मकानों के पीछे बँधती है।

अर्थ—श्री साहजी के पुत्र शिवाजी जिस पर अपनी सुन्दर सभा सुरेश (इन्द्र) की सभा के समान करते हैं, भूषण कवि कहते हैं कि उसके वैभव को देख कर कुबेर भी शर्माता है अर्थात् उसकी अलकापुरी भी ऐसी उत्तम नहीं। तीनों लोकों की छवि को धारण करने वाला ऐसा बड़ा सुन्दर रायगढ़ शोभित

---

† सात भगण (ऽ।।) और दो गुरु वर्ण का मालती सवैया होता है। इसे मत्तगयंद भी कहते हैं।

है। उसकी खाई पाताल के समान, कुर्सी पृथ्वी के समान और ऊपरी भाग अमरावती (इन्द्रपुरी) के समान शोभायमान है।

हरिगीतिका छन्द*

मनिमय महल सिवराज के इमि रायगढ़ मैं राजहीं।
लखि जच्छ किन्नर असुर सुर गंधर्व हौंसनि साजहीं॥
उत्तंग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदंग जु बाजहीं।
घन-समै मानहु घुमरि करि घन घनपटल गल गाजहीं॥१६॥

शब्दार्थ—जच्छ = यक्ष। किन्नर = देवताओं की एक जाति। हौंस = हविस, इच्छा। उत्तंग = ऊँचे। मरकत = मणि, नीलम। घन समै = वर्षा ऋतु में। घन = घनी, बहुत। घन पटल = बादल की परत, तह, मेघमालाएँ। गल गाजहीं = जोर से गरजते हैं।

अर्थ—शिवाजी के रायगढ़ में मणि-जटित महल ऐसे शोभायमान हैं जिन्हें देख कर यक्ष, किन्नर, गंधर्व, सुर (देवता) और असुर (राक्षस) भी रहने की इच्छा करते हैं। ऊँचे-ऊँचे नीलम जड़े हुए महलों में मृदंग ऐसे बजते हैं मानो वर्षा ऋतु में उमड़-घुमड़ कर घनी मेघ-मालाएँ ज़ोर ज़ोर से गर्जन करती हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, 'घन समै मानहु घुमरि करि' में।

हरिगीतिका

मुकतान की झालरिन मिलि मनि-माल छज्जा छाजहीं।
संध्या समय मानहुँ नखत गन लाल अम्बर राजहीं॥
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा किरन घन समुदाय हैं।
मानो गगन-तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं॥१७॥

शब्दार्थ—मुकतान = मुक्ता, मोती, मोतियों। नखत = नक्षत्र। अम्बर = आकाश। ऊरध = (सं० ऊर्ध्व) ऊँचे पर, ऊपर। तनाय = (फा० तनाव) रस्सी, जिससे तंबू ताना जाता है।

---

* इसमें २८ मात्राएँ होती हैं। १६ और १२ मात्रा पर यति होती है, अन्त में लघु गुरु होता है।

अर्थ—मोतियों की झालरें मणिमालाओं के साथ छज्जों पर ऐसी शोभित हो रही हैं मानो सन्ध्या समय लाल आकाश में नक्षत्र (तारे) हों। और जहाँ तहाँ ऊँचे स्थानों पर जड़े हुए हीरों की किरणें ऐसी घनी चमक रही हैं मानो गगन (आकाश) में तम्बू की श्वेत रस्सियाँ हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, 'मानो गगन तंबू तन्यो' में।

हरिगीतिका

भूषन भनत जहँ परसि कै मनि पुहुप रागन की प्रभा।
प्रभु पीत पट की प्रगट पावत सिन्धु मेघन की सभा॥
मुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक महलन संग मैं।
विकसंत कोमल कमल मानहु अमल गंग तरंग मैं॥१८॥

शब्दार्थ—पुहुपराग = पुखराज, इनका पीला रंग होता है। प्रभा = प्रकाश। प्रभु = भगवान, कृष्ण। सिन्धु = समुद्र। सिन्धु मेघन की सभा = समुद्र से उठे हुए अर्थात् जलपूर्ण बादलों का समूह। नागरिन = नगर की रहने वाली स्त्रियाँ, चतुर स्त्रियाँ। फटित = स्फटिक, बिल्लौर पत्थर।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि वहाँ सजल मेघों का समूह (महलों के शिखर पर जड़ी) पीली पुखराज मणियों को छू कर भगवान् कृष्ण के पीतांबर की शोभा प्राप्त करता है। और कहीं चतुर स्त्रियों के मुख स्फटिक मणियों के महलों में ऐसे दिखाई देते हैं मानो स्वच्छ गंगा की लहरों में कोमल कमल खिल रहे हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, चौथे चरण में।

आनंद सों सुन्दरिन के कहुँ बदन-इंदु उदोत हैं।
नभ सरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल कुल गोत हैं॥
कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्धमनि सोपान हैं।
जहँ हंस सारस चक्रवाक विहार करत समान हैं॥१९॥

शब्दार्थ—बदन-इन्दु = मुख-चन्द्र। नभ सरित = आकाश गंगा; रात्रि के समय आकाश में तारों का एक घना समूह आकाश के एक ओर से दूसरी ओर तक नदी की धारा के समान फैला हुआ दिखाई देता है; अंग्रेजी में इसे मिल्की वे (Milky way) कहते हैं; इसे ही कवि लोग आकाशगंगा मानते

हैं। कुमुद = रात्रि में खिलने वाला लाल कमल, कुमुदिनी। मुकुलित = संकुचित। बद्धमनि = मणियों से जड़ी। सोपान = सीढ़ी।

अर्थ—कहीं सुन्दरियों के मुखचन्द्र (स्फटिक के महलों में) आनन्द से चमक रहे हैं, जो ऐसे प्रतीत होते हैं मानो आकाश-गंगा में पूर्ण खिले कुमुद और अधखिले कमलों का समूह हो (यहाँ प्रफुल्लित कुमुद और मुकुलित कमल से क्रमशः पूर्ण-यौवना और अर्ध स्फुटित-यौवना का भाव लक्षित होता है)। कहीं मणि-जटित सीढ़ियों वाले तालाब बावड़ी और कुएँ हैं, जिनमें हंस, सारस और चकवा चकवी स्नान करते हुए क्रीड़ा कर रहे हैं।

अलंकार—'बदन इन्दु' में रूपक। प्रथम दोनों पंक्तियों में 'गम्योत्प्रेक्षा'।

कितहूँ बिसाल प्रबाल जालन जटित अंगन भूमि है।
जहँ ललित बागनि द्रुमलतनि मिलि रहै झिलमिल झूमि है॥
चंपा चमेली चारु चन्दन चारिहू दिसि देखिए।
लवली लवंग यलानि केरे लाखि हों लगि देखिए॥२०॥

शब्दार्थ—प्रबाल = मूँगा। जाल = समूह, बहुत से। लवली = एक वृक्ष, हरफारेवरी। यलानि = इलायची। केरे = के।

अर्थ—किसी ओर आँगन में पृथ्वी पर बड़े-बड़े बहुत से मूँगे जड़ रहे हैं, जहाँ पर बागों के सुन्दर वृक्ष और लताएँ मिल कर झूमते और झिलमिलाते हैं अर्थात् उनके घने पत्तों से छन कर झिलमिला प्रकाश पड़ रहा है। चारों ओर सुन्दर चंपा, चमेली, चन्दन, लवली, लवंग और इलायची आदि के लाखों प्रकार के वृक्ष दिखाई देते हैं।

कहुँ केतकी कदली करौंदा कुन्द अरु करबीर हैं।
कहुँ दाख दाड़िम सेव कटहल तूत अरु जंभीर हैं॥
कितहूँ कदंब कदंब कहुँ हिन्ताल ताल तमाल हैं।
पीयूष ते मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल हैं॥२१॥

शब्दार्थ—करबीर = कनेर। जंभीर = नींबू। कदंब = एक वृक्ष का नाम तथा समूह। हिंताल = एक वृक्ष। ताल = ताड़। पीयूष = अमृत। रसाल = मीठा तथा आम।

अर्थ—कहीं केतकी, केला, करौंदा, कुन्द, कनेर, अंगूर, अनार, सेब,

कटहल, शहतूत और नींबू के वृक्ष हैं। कहीं कदंब के वृक्षों के झुंड हैं। कहीं हिंताल, ताड़, आबनूस के वृक्ष हैं और कहीं अमृत से भी अधिक रसीले आम फल रहे हैं।

अलंकार—'कदंब कदंब' और 'रसाल रसाल में' यमक है।

पुन्नाग कहुँ कहुँ नागकेसरि कतहुँ बकुल असोक हैं।
कहुँ ललित अगर गुलाब पाटल-पटल बेला थोक हैं॥
कितहूँ नेवारी माधवी सिंगारहार कहूँ लसैं।
जहँ भाँति भाँतिन रंग रंग बिहंग आनंद सों रसैं॥२२॥

शब्दार्थ—पुन्नाग = जायफल। बकुल = मौलसिरी। पाटल = ताम्र-पुष्पी। पटल = झुंड, समूह। थोक = समूह। नेवारी = जूही, नव मल्लिका। माधवी = चमेली का एक भेद। सिंगारहार = हरसिंगार। रसैं = रसीले बोलते हैं या प्रफुल्लित होते हैं।

अर्थ—कहीं जायफल, नागकेसर, मौलिसिरी और अशोक वृक्ष हैं, तो कहीं सुन्दर अगर, गुलाब, पाटल के समूह और बेला के झुंड के झुंड खड़े हैं। किसी ओर जूही, माधवी और हरसिंगार शोभायमान हैं, जहाँ अनेक प्रकार के रंग बिरंगे विहंग (पक्षी) आनन्द पूर्वक रसीले बोल रहे हैं या प्रफुल्लित हो रहे हैं।

षट्पद—लसत बिहंगम बहु लवनित बहु भाँति बाग महँ।
कोकिल कीर कपोत केलि कलकल करत तहँ॥
मंजुल महरि मयूर चटुल चातक चकोर गन।
पियत मधुर मकरन्द झंकार भृंग वन॥
भूषन सुबास फल फूल युत, छहुँ ऋतु बसत बसंत जहँ।
इमि राजदुग्ग राजत रुचिर, सुखदायक सिवराज कहँ॥२३॥

शब्दार्थ—लवनित = लावण्ययुक्त, मनमोहक। केलि = क्रीड़ा, विहार। कलकल = सुन्दर शब्द। मंजुल = सुन्दर। महरि = ग्वालिन पक्षी। चटुल = गौरैया पक्षी। मकरन्द = पुष्परस। राजदुग्ग = रायगढ़।

अर्थ—बाग में अनेक प्रकार के मनमोहक पक्षी शोभित हो रहे हैं। कोयल, तोते, कबूतर, ग्वालिन, मयूर (मोर), गौरैया, चातक (पपीहा) और चकोर आदि अनेक पक्षी विहार करते हुए सुन्दर शब्द कर रहे हैं। भौंरे मीठा-

मीठा मकरंद पी कर गूँज रहे हैं। भूषण कवि कहते हैं कि जहाँ छहों ऋतुओं (अर्थात् बारहों महीनों) में सुगन्धित फूल फल वाली वसंत ऋतु ही रहती है, वह शिवाजी को सुख देने वाला रायगढ़ इस प्रकार सुशोभित है।

तहँ नृप रजधानी करी, जीति सकल तुरकान।
सिव सरजा रुचि दान मैं, कीन्हों सुजस जहान ॥२४॥

शब्दार्थ—रुचि = इच्छा, यहाँ इच्छित से तात्पर्य है।

अर्थ—महाराज शिवाजी ने सारे तुर्कों (मुसलमानों) को जीत कर वहाँ रायगढ़ में अपनी राजधानी बनाई और इच्छित (मुँह-माँगा) दान दे कर अपना सुन्दर यश सारे संसार में फैलाया।

कवि-वंश-वर्णन

दोहा—देसन देसन ते गुनी, आवत जाचन ताहि।
तिन में आयो एक कवि, भूषन कहियतु जाहि ॥२५॥

अर्थ—उसके (अर्थात् शिवाजी के) पास देश-देश से विद्वान याचना (पुरस्कार प्राप्ति) की इच्छा से आते हैं, उन्हीं में एक कवि भी आया जिसे 'भूषण' कवि के नाम से पुकारा जाता था।

दोहा—दुज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत तिविक्रमपुर सदा, तरनि-तनूजा तीर ॥२६॥

शब्दार्थ—दुज = द्विज, ब्राह्मण। कनौजकुल = कान्यकुब्ज। रतनाकर = रत्नाकर, भूषण के पिता का नाम है। तिविक्रमपुर = त्रिविक्रमपुर, वर्तमान तिकवाँपुर, यह जिला कानपुर में है। तनूजा = पुत्री। तरनि-तनूजा = सूर्य की पुत्री, यमुना।

अर्थ—वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण कश्यप गोत्र, धैर्यवान, श्रीरत्नाकर जी का पुत्र था और यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर ग्राम में रहता था।

दोहा—बीर बीरबर से जहाँ, उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीश्वर जहाँ, विश्वेश्वर तद्रूप ॥२७॥

शब्दार्थ—बीरबर = अकबर के मन्त्री बीरबल। विश्वेश्वर = श्री विश्वेश्वर महादेव। तद्रूप = समान।

अर्थ—(जिस गाँव में) बीरबल के समान महाबली राजा और कवि

हुए तथा विश्वेश्वर महादेव के समान विहारीश्वर महादेव का जहाँ मंदिर था।

अलंकार—'बीर बीरबर' में यमक। 'बीरबल से कवि अरु भूप' में उपमा। 'देवबिहारीश्वर विश्वेश्वर तद्रूप' में रूपक।

दोहा—कुल सुलंक चितकूटपति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषन पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र ॥२८॥

शब्दार्थ—कुल सुलंक = सोलंकी वंशीय क्षत्रिय। रुद्र = हृदयराम सोलंकी के पुत्र 'रुद्रशाह', चित्रकूट के राजा।

अर्थ—हृदयरामजी के पुत्र चित्रकूट के महासाहसी, शील के समुद्र, राजा रुद्रशाह सोलंकी ने भूषण जी को 'कवि भूषण' की पदवी प्रदान की।

दोहा—सिव चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषन से चित्त।
भाँति भाँति भूपननि सों, भूषित करौं कवित्त ॥२९॥

अर्थ—शिवाजी के चरित्र को देख कर भूषण कवि के चित्त में यह बात उत्पन्न हुई कि इनके विषय में भिन्न भिन्न अलङ्कार सहित काव्य रचना करूँ।

अलंकार—यमक।

सुकविन हूँ की कछु कृपा, समुझि कविन को पंथ।
भूषन भूषनमय करत, "शिव भूषन" सुभ ग्रन्थ ॥३०॥

शब्दार्थ—पथ = मार्ग। शिव भूषन = शिवराज भूषण (पुस्तक)।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि श्रेष्ठ कवियों की कुछ कृपा से उनका मार्ग जान कर इस श्रेष्ठ "शिवराज भूषण' पुस्तक को अलङ्कारमय लिखता हूँ।

अलंकार—भूषन भूषन में यमक।

दोहा—भूषन सब भूषननि में, उपमहिं उत्तम चाहि।
याते उपमहि आदि दै, बरनत सकल निबाहि ॥३१॥

शब्दार्थ—चाहि = देख कर, जान कर। आदि दै = आरम्भ में रख कर। सकल निबाहि = सब नियमों को निबाहते हुए, पालते हुए।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि समस्त अलङ्कारों में उपमा को ही सबसे उत्तम जान कर (काव्य के) सब नियमों का पालन करते हुए आरम्भ में मैं उसका ही वर्णन करता हूँ।

अलंकार—यमक।

अलंकार निरूपण

उपमा

लक्षण—दोहा

जहाँ दुहुन की देखिए, सोभा बनति समान।
उपमा भूषण ताहि को, भूषन कहत सुजान ॥३२॥

शब्दार्थ—दुहुन = दोनों (उपमेय और उपमान)।

अर्थ—जहाँ दो वस्तुओं की [आकृति, गुण और दशा की] शोभा एक-सी वर्णन की जाय, भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ विद्वान् उपमा अलङ्कार मानते हैं।

जाको बरनन कीजिए, सो उपमेय प्रमान।
जाकी सरवरि कीजिए, ताहि कहत उपमान ॥३३॥

शब्दार्थ—प्रमान = ठीक, निश्चय कर जानो। सरवरि = समता।

अर्थ—जिसका वर्णन किया जाता है, उसे उपमेय मानते हैं और जिस वस्तु से समता की जाती है उसे उपमान कहते हैं।

उदाहरण—मनहरण कवित्त

मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हों
सरजा, सुरेश ज्यों दुचित ब्रजराज को।
भूषण, कुमिस गैर मिसिल खरे किये को,
किये म्लेच्छ मुरछित करि कै गराज को॥
अरे ते गुसलखाने* बीच ऐसे उमराय,
लै चले मनाय महाराज सिवराज को।
दावदार निरखि रिसानों दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज को ॥३४॥

---

*इस गुसलखाने वाली घटना का भिन्न-भिन्न इतिहास-लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। सभासद और चिटनीस आदि मराठा बखर के लेखकों ने लिखा है कि जब शिवाजी औरंगज़ेब के दरबार में पहुँचे तब वे

शब्दार्थ—कुरुख = बुरा रुख, अप्रसन्न। चकत्ता = चगतई प्रदेश के तुर्कों का वंशज, औरङ्गज़ेब। दुचित्त = दुविधावान, शंकायुक्त। कुमिस = झूठा बहाना। गैरमिसिल = (फा०) अयोग्य स्थान, बेमौके। गराज = गर्जना। दाबदार = मस्त। दीह = (सं० दीर्घ), बड़ा। दलराय = दल का राजा, दलपति, झुंड का मुखिया। गड़दार = भाला ले कर चलने वाले लोग जो मस्त हाथी को पुचकार कर आगे बढ़ाते हैं। अड़दार = मस्त, अड़ियल।

अर्थ—शिवाजी ने औरङ्गज़ेब से मिलते ही उसे ऐसा अप्रसन्न कर दिया जैसे सुरेश (इन्द्र) ने ब्रजराज (श्रीकृष्ण) को किया था। भूषण कवि कहते हैं कि झूठे बहाने से बेमौके (अनुचित स्थान पर) खड़ा करने के कारण उन्होंने गर्जना करके सब मुसलमानों को मूर्च्छित कर दिया। गुसलखाने के निकट अड़ने से (ठिठकने पर) सारे उमराव अमीर उनकी खुशामद करके ऐसे ले चले जैसे कि सोटेमार लोग अत्यन्त क्रोधित मस्त अड़ियल बड़े दलपति हाथी को पुचकार करके ले जाते हैं।

अपनी श्रेणी के आगे जोधपुर-नरेश (बुन्देला-मेमायर्स के मतानुसार यह उदयपुर के भीमसिंह जी का पुत्र रामसिंह सीसौदिया था) को देख कर बिगड़ गये और उसे मारने के लिए रामसिंहजी (मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र) से कटार माँगी, उसके न मिलने पर अपमान के कारण शिवाजी बेहोश हो गये और गुसलखाने में ले जा कर इत्र आदि सुँघाने पर इन्हें होश हुआ। ओर्मी (Orme) ने लिखा है शिवाजी ने सम्राट् की बहुत निन्दा की और पंच-हज़ारियों में खड़ा कर देने के कारण क्रोध और अपमान के मारे आत्मघात करना चाहा, परन्तु पास वालों ने रोक दिया। जनानखाने में भाग जाने वाली घटना अमरसिंह राठौर और बादशाह शाहजहाँ की प्रसिद्ध है। शिवाजी और औरंगज़ेब के विषय में ऐसी घटना होने का वर्णन इतिहास में नहीं मिलता। केवल भूषण कवि ने इनका वर्णन किया है। सम्भव है ऐसा हुआ हो। किसी महाशय ने 'गुसलखाने' का अर्थ गोसलखाँ किया है और इस नाम का कोई व्यक्ति विशेष औरंगज़ेब का अंगरक्षक माना है, किन्तु "गुसलखाने" के आगे 'बीच' शब्द होने से उनका गोसलखाँ वाला अर्थ ठीक नहीं बैठता।

विवरण—इसमें पहले शिवाजी और औरंगज़ेब (उपमेयों) को क्रमशः इन्द्र और कृष्ण की उपमा दी है, फिर शिवाजी को मस्त हाथी की उपमा दी गई है। इसमें औरंगजेब को श्रीकृष्ण की उपमा देना उचित प्रतीत नहीं होता; वरन् कुछ लोग इसे दोष समझते हैं।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

सासताखाँ दुरजोधन सो औ दुसासन सो जसवन्त निहार्‌यो।
द्रोन सो भाऊ, करन्न करन्न सो, और सबै दल सो दल भार्‌यो॥
ताहि बिगोय सिवा सरजा, भनि भूषन, औनि छता यों पछार्‌यो।
पारथ कै पुरषारथ भारथ जैसे जगाय जयद्रथ मार्‌यो॥३५॥

शब्दार्थ—सासताखाँ = शाइस्तखाँ, दिल्ली का एक बड़ा सरदार और सेनानायक था। यह सन् १६६३ ई० में चाकन को जीतता हुआ पूना में ठहरा। ५ अप्रैल १६६३ ई० की रात को शिवाजी २०० योद्धाओं को साथ ले कर इसके महल में घुस गये और उन्होंने इसके पुत्र को मार डाला। इस पर भी तलवार चलाई, परन्तु यह एक खिड़की से कूद गया। इसके एक हाथ की कुछ अँगुलियाँ कट गईं। जसवन्त = मारवाड़ का राजा जसवन्तसिंह। यह भी शाइस्ताखाँ के साथ १६६३ ई० में गया था। भाऊ = बूँदी के छत्रसाल हाड़ा का पुत्र था। यह सन् १६५८ ई० में गद्दी पर बैठा और औरंगज़ेब की तरफ से शिवाजी से लड़ा। करन्न = करणसिंह, बीकानेर के महाराजा रायसिंह का पुत्र था। इसने सन् १६६३ ई० से सन् १६७४ ई० तक राज किया। इसे दो हजारी का मनसब औरंगज़ेब ने दिया था। बिगोय = (सं० विगोपन) छुपा कर, नष्ट कर के। औनि छता = औनि (अवनि) पृथ्वी, छता = छत्र, पृथ्वी का छत्र, औरंगज़ेब।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने शाइस्ताखाँ को दुर्योधन के समान, जसवन्तसिंह को दुःशासन के समान, भाऊ को द्रोणाचार्य और करणसिंह को कर्ण के समान और समस्त प्रबल सेना को (कौरवों की बड़ी भारी) सेना के समान देखा (समझा) तथा उन्हें नष्ट करके औरंगज़ेब को इस तरह से पछाड़ा (हराया) जैसे पार्थ (अर्जुन) ने महाभारत के युद्ध में जयद्रथ को सावधान करके मारा था।

लुप्तोपमा

उपमा वाचक पद धरम, उपमेयो उपमान।
जा मैं सो पूर्णोपमा, लुप्त घटत लौं मान ॥३६॥

शब्दार्थ—वाचकपद = सा, सम, जिमि आदि। धरम = धर्म, स्वभाव।

अर्थ—जिस उपमा में वाचकपद, धर्म, उपमेय और उपमान ये चारों हों उसे पूर्णोपमा कहते हैं और जहाँ इनमें से किसी की कमी हो उसे लुप्तोपमा कहते हैं।

उदाहरण (धर्मलुप्ता)—मालती सवैया।

पावक तुल्य अमीतन को भयौ, मीतन को भयो धाम सुधा को।
आनन्द भो गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को॥
भूतल माँहि बली सिवराज भो भूषन भाखत शत्रु मुधा को।
वंदन तेज त्यों चंदन कीरति सोंधे सिंगार बधू वसुधा को ॥३७॥

शब्दार्थ—धाम सुधा को = सुधा को धाम। (सुधा = अमृत + धाम = स्थान) = सुधाधाम, चन्द्रमा। कुमुदावली = कुमुद + अवलि = कुईं (नीलोफर) की पंक्ति। मुधा = निष्फलता अथवा असत्य। बन्दन = ईंगुर, सिंदूर। सोंधे = सुगंधि।

अर्थ—शिवाजी शत्रुओं के लिए अग्नि के समान (तपाने वाले) और अपने मित्रों को अमृत के भंडार चन्द्रमा के समान वैसे ही सुखदायक हो गये जैसे, गहरे समुद्र, कुमुदों और तारों के लिए चन्द्रमा अनेक प्रकार से आनन्द देने वाला होता है। भूषण कवि कहते हैं कि पृथ्वी पर महाबली राजा शिवाजी निष्फलता अथवा असत्य के शत्रु हो गये अर्थात् उनका कार्य सदा सफल होता था, अथवा वे कभी असत्य भाषण नहीं करते थे। और सिंदूर के समान उनका तेज और चंदन के समान यश, पृथिवी रूपी नव-वधू के लिए सुगंधित शृंगार की वस्तुएँ हो गईं।

विवरण—यहाँ अग्नि का धर्म 'गर्मी' और चन्द्रमा का धर्म 'शीतलता' नहीं दिया है। अतः धर्म लुप्तोपमा अलङ्कार है।

दूसरा उदाहरण—मनहरण

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि,
जापता करन हारे नेक हू न मनके।
भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भए उमराय तुजुक करन के॥
साहि रह्यो जकि, सिव साहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि, बने ब्योंत अनबन के।
ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गये मूँदि तुरकन के॥३८॥

शब्दार्थ—बिललाने = व्याकुल होकर असम्बद्ध बातें करने लगे। जापता = (फा० जाब्ता) प्रबन्ध। मनके = हिले डुले। तुजुक = (तुर्की अदब) आदर, सत्कार। जकि = डरा हुआ, लज्जित, पराभूत। चकि = भौंचक्का। ब्योंत = मामला। तारे = आकाश के तारे, आँखों की पुतली।

अर्थ—शिवाजी को दरबार में आया हुआ देख कर चोबदार लोग व्याकुल हो उठे और (दरबार के) प्रबन्धक गण सब सन्न रह गये, हिले तक नहीं। भूषण कवि कहते हैं कि कोई कोई सरदार तो शिवाजी का अदब बजा लाने की इच्छा करने लगे। औरंगजेब डर गया या लज्जित हो गया। शिवाजी औरंगजेब की ओर देखने लगे, यह देख कर वह भौंचक्का रह गया। इस प्रकार सब अनबन हो गया, सारा मामला बिगड़ गया। ग्रीष्म के सूर्य के समान शिवाजी के प्रताप को देख कर तारों के समान तुर्कों की आँखों की पुतली मुँद गई।

विवरण—यहाँ सूर्य का धर्म 'तेज' लुप्त है।

अनन्वय

जहाँ करत उपमेय को, उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वै कहत हैं, भूषन सकल सुजान॥३९॥

शब्दार्थ—उपमेयै = स्वयं उपमेय ही।

अर्थ—जहाँ उपमेय का उपमान स्वयं उपमेय ही वर्णन किया जाय अर्थात् एक ही वस्तु उपमान और उपमेय का काम दे वहाँ चतुर लोग अनन्वय अलङ्कार कहते हैं।

विवरण—इसमें दूसरी वस्तु (उपमान) नहीं होती, किन्तु उपमेय और उपमान एक ही वस्तु होती है। उपमा अलङ्कार में उपमेय और उपमान दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ होती हैं।

उदाहरण—मालती सवैया।

साहि तनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुन्दुभि बाजै।
भूषन भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें बढ़ि मौजनि साजै।
राजन को गन, राजन! को गनै? साहिन मैं न इती छबि छाजै।
आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै॥४०॥

शब्दार्थ—दुन्दुभि = नगाड़ा। भोज = मालवे के प्रसिद्ध दानी महाराजा भोज। गरीबनेवाज = (फा०) गरीबों पर कृपा करने वाले।

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! आपके दरवाजे पर प्रतिक्षण दान के नगाड़े बजते रहते हैं। भिक्षुकों की भीड़ (आपके यहाँ) राजा भोज से अधिक मौज (आनन्द) प्राप्त करती है। हे राजन्! आपके सम्मुख अन्य राजाओं की तो क्या गिनती है? बादशाहों में भी इतनी छवि नहीं मिलती। आज कल पृथिवी पर कृपा करने वाले आपके समान, हे शिवाजी! आप ही हैं।

विवरण—यहाँ 'तो सो तुही' इस पद में उपमान और उपमेय एक ही वस्तु है।

प्रथम प्रतीप

जहँ प्रसिद्ध उपमान को, करि बरनत उपमेय।
तहँ प्रतीप उपमा कहत, भूषन कविता प्रेय॥४१॥

अर्थ—जहाँ प्रसिद्ध उपमान को उपमेय के समान वर्णन किया जाय वहाँ कविता प्रेमी सज्जन प्रतीप अलङ्कार कहते हैं।

विवरण—प्रतीप पाँच प्रकार के होते हैं। यह प्रथम है। यह उपमा का ठीक उलटा होता है, इसमें उपमेय तो उपमान हो जाता है और उपमान उपमेय होता है। जैसे, नेत्र सा कमल।

उदाहरण—मालती सवैया

छाय रही जितही तितही अति ही छबि छीरधि रंग करारी।
भूषन सुद्ध सुधान के सौधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी।

यों तम तोमहि चाबि कै चंद चहूँ दिसि चाँदनि चारु पसारी।
ज्यों अफजल्लहि मारि मही पर कीरति श्री सिवराज बगारी ॥४२॥

शब्दार्थ—छीरधि = क्षीर सागर, दूध का समुद्र। करारी = चोखी, सुन्दर। सुधान = सुधा का बहुवचन, (चूना)। सौधनि = महलों को। सोधति = साफ करती। ओप = चमक। तोम = समूह। बगारी = फैलाई।

अर्थ—क्षीर-सागर के (शुभ्र) रंग की छबि के समान चाँदनी जहाँ तहाँ छाई हुई है और वह स्वच्छ चूने के बने महलों को साफ कर के उज्ज्वल चमक दे रही है। भूषण कहते हैं कि चन्द्रमा ने अन्धकार के समूह को दबा कर चारों ओर सुन्दर चाँदनी ऐसे फैलाई है, जैसे शिवाजी ने अफजलखाँ को मार कर पृथिवी पर अपनी कीर्ति फैलाई थी।

विवरण—यहाँ 'चाँदनी' उपमान को उपमेय कथन किया है। और कीर्ति उपमेय को उपमान बनाया गया है, यही उलटापन है।

द्वितीय प्रतीप

करत अनादर बन्र्य को, पाय और उपमेय।
ताहू कहत प्रतीप जे, भूषन कविता प्रेय ॥४३॥

शब्दार्थ—बन्र्य = उपमेय।

अर्थ—जहाँ दूसरे उपमेय के मिलने से वर्ण्य (उपमेय) का अनादर हो वहाँ कविता-प्रेमी सज्जन द्वितीय प्रतीप कहते हैं।

विवरण—इसमें उपमान को उपमेय मान कर असली उपमेय का अनादर किया जाता है।

उदाहरण—दोहा।

शिव ! प्रताप तव तरनि सम, अरि पानिप हर मूल।
गरब करत केहि हेत है, बड़वानल तो तूल ॥४४॥

शब्दार्थ—पानिप = तेज, कान्ति (पानी)। बड़वानल = समुद्र के अन्दर की अग्नि। तूल = (सं०) तुल्य, समान।

अर्थ—हे शिवाजी ! आपका प्रताप सूर्य के समान है, और वह शत्रुओं के तेज (कान्ति) को समूल नष्ट करने वाला है, परन्तु आप अभिमान क्यों करते हैं, बड़वानल भी तो आपके समान है।

विवरण—यहाँ शिवाजी का प्रताप उपमेय है, किन्तु बड़वानल को उपमान होना चाहिए उसे यहाँ उपमेय बना कर 'गरब करत केहि हेत' द्वारा उपमेय (शिवाजी के प्रताप) का अनादर किया गया है।

तृतीय प्रतीप

आदर घटत अबन्र्य को, जहाँ बन्र्य के जोर।
तृतीय प्रतीप बखानहीं, तहँ कविकुल सिरमौर ॥४५॥

शब्दार्थ—अबन्र्य = उपमान।

अर्थ—जहाँ उपमेय के प्रभाव के कारण उपमान का अनादर हो वहाँ सर्वश्रेष्ठ कवि तृतीय प्रतीप कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाजगत, कीरति सिवा खुमान ॥४६॥

शब्दार्थ—कत = क्यों, क्या। छीर = क्षीर, दूध। समाजगत = दुनियाँ में।

अर्थ—हे दूध और हीरे के समान उज्ज्वल चाँदनी! तू (अपनी उज्ज्वलता का और संसार में व्यापक होने का) क्या घमंड करती है, खुमान राजा शिवाकी की कीर्ति भी दुनियाँ में इतनी ही फैली हुई है।

विवरण—यहाँ चाँदनी उपमान है, उसकी उज्ज्वलता एवं व्यापकता के गर्व को 'शिवाजी की कीर्ति' उपमेय ने दूर किया है।

चतुर्थ प्रतीप

पाय बरन, उपमान को जहाँ न आदर और।
कहत चतुर्थ प्रतीप हैं, भूषन कवि सिरमौर ॥४७॥

शब्दार्थ—बरन = वर्ण्य, उपमेय।

अर्थ—जहाँ उपमेय को पा कर उपमान का आदर न हो [अयोग्य बताया जाय] वहाँ श्रेष्ठ कवि चतुर्थ प्रतीप अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चंदन में नाग, मद भर्यो इन्द्रनाग,
विष भरो सेस नाग, कहै उपमा अबस को।

भोर ठहरात न, कपूर बहरात, मेघ
सरद उड़ात बात लाके दिसि दस को ॥
शंभु नीलग्रीव, भौंर पुंडरीक ही बसत,
सरजा सिवाजी सन भूषन सरस को ?
छीरधि में पंक, कलानिधि मैं कलंक याते,
रूप एक टंक ए लहैं न तव जस को ॥४८॥

शब्दार्थ—नाग = सर्प । इन्द्रनाग = ऐरावत । अबस = व्यर्थ । बहरात = उड़ जाता है । भोर = प्रभात । ग्रीव = कंठ । पुंडरीक = श्वेत कमल । छीरधि = क्षीर सागर । कलानिधि = चन्द्रमा । टंक = एक तोल जो २४ रत्ती का है, यहाँ तात्पर्य 'रत्तीभर' से है ।

अर्थ—चन्दन में साँप लिपटे रहते हैं, ऐरावत हाथी मदमत्त है, शेष-नाग में विष है इसलिए इन (दूषित वस्तुओं) से शिवाजी के शुभ्र यश की कौन व्यर्थ उपमा दे ? अर्थात् कोई नहीं देता । प्रभात ठहरता नहीं; कपूर उड़ जाता है; वात (हवा) के लगने से शरद ऋतु के बादल भी दसों दिशाओं को उड़ जाते हैं; शिवजी का कंठ नीला है और कमलों में भौंरे रहते हैं । अतः भूषण कवि कहते हैं कि सरजा राजा शिवाजी की बराबरी इनमें से भी कोई नहीं कर सकता । क्षीर सागर में कीचड़ है, चन्द्रमा में कलङ्क है; इसलिए ये भी आपके यश के रूप की समानता रत्ती भर भी नहीं पा सकते ।

विवरण—यहाँ चन्दन, ऐरावत, शेषनाग, प्रभात और कर्पूरादि उपमानों में दोष होने से उनको शिवाजी के यश 'उपमेय' से अयोग्य सिद्ध किया गया है । कीर्ति (यश) का रंग श्वेत माना जाता है । उक्त चन्दन, ऐरावत, पुंडरीक, शिव, शेषनाग, प्रभात और कर्पूरादि उपमान भी श्वेत होते हैं, किंतु कुछ न कुछ दोष होने से वे अयोग्य सिद्ध किये गये हैं ।

पंचम प्रतीप

हीन होय उपमेय सों, नष्ट होत उपमान ।
पंचम कहत प्रतीप तेहि, भूषन सुकवि सुजान ॥४९॥

शब्दार्थ—हीन = तुच्छ, न्यून, घट कर । नष्ट होत = लुप्त होता है, व्यर्थ सिद्ध किया जाय ।

अर्थ—उपमान उपमेय से किसी प्रकार घट कर होने के कारण जहाँ नष्ट हो जाय (छिप जाय) वहाँ श्रेष्ठ कवि पंचम प्रतीप कहते हैं ।

विवरण—भूषण का पंचम प्रतीप का यह लक्षण ठीक नहीं है । इसका ठीक लक्षण यह है—"व्यर्थ कोई उपमान जब बर्ननीय लखि सार" अर्थात् जब यह कह कर उपमान का तिरस्कार किया जाय कि उपमेय ही स्वयं उसका (उपमान का) कार्य करने में समर्थ है तब उस 'उपमान' की आवश्यकता ही क्या ! भूषण के दिये हुए तीन उदाहरणों में प्रथम तो उनके दिये हुए लक्षण के अनुसार है; परन्तु शेष दो पंचम प्रतीप के वास्तविक लक्षण से मिलते हैं ।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तो सम हो सेस, सो तो बसत पताल लोक,
ऐरावत गज, सो तो इन्द्रलोक सुनियै ।
दूरे हंस मानसर ताहि मैं कैलासधर,
सुधा सरवर सोऊ छोड़ि गयो दुनियै ।
सूर दानी सिरताज महाराज सिवराज,
रावरे सुजस सम आजु काहि गुनियै ?
भूषन जहाँ लौं गनौं तहाँ लौं भटकि हार्‌यौ,
लखिए कछू न केती बातैं चित चुनियै ॥५०॥

शब्दार्थ—कैलासधर = महादेव । सुधा सरबर = अमृत का सरोवर । रावरे = आपके । गुनियै = जानिये । चुनियै = चुनी, ढूँढी ।

अर्थ—तुम्हारे यश के समान शुभ्र शेषनाग था, पर वह तो अब पाताल में रहता है; ऐरावत हाथी था, वह अब इन्द्रलोक में सुना जाता है; हंस मानसरोवर में जा छिपे हैं, उसी में शिवजी भी लुप्त हो गये हैं और अमृत का सरोवर भी दुनियाँ को छोड़ कर चला गया है । हे बलवानों और दानियों में श्रेष्ठ शिवाजी महाराज ! आप के यश के सम्मुख आज किसकी गिनती की जाय अर्थात् आपके यश से किसकी उपमा दें क्योंकि आपके यश के समान शुभ्र जो पदार्थ थे वे आप के यश की उज्ज्वलता को देख कर इधर उधर जा छिपे हैं । भूषण कहते हैं कि जहाँ तक मैंने सोचा वहाँ तक खोज कर थक

गया, सब व्यर्थ रहा, जितनी बातें मन में सोचीं उनमें से कोई भी आपकी बराबरी की नहीं दिखाई देती।

विवरण—यहाँ दिखाया गया है कि शेष, ऐरावत हाथी, हंस, शिव, अमृत, आदि उपमान, शिवाजी के यश उपमेय से घट कर होने के कारण क्रमशः पाताल, इन्द्रलोक, मानसरोवर और स्वर्गलोक में जा छिपे हैं।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

कुन्द कहा, पय वृन्द कहा, अरु चन्द कहा, सरजा जस आगे ?
भूषन भानु कृसानु कहाऽब खुमान प्रताप महीतल पागे ?
राम कहा, द्विजराम कहा, बलराम कहा, रन मैं अनुरागे ?
बाज कहा, मृगराज कहा, अति साहस मैं सिवराज के आगे ? ॥५१॥

शब्दार्थ—कुन्द = एक सफेद फूल। पय वृन्द = दूध का समूह, क्षीर सागर। कृसानु = आग। कहाऽब = कहा अब, अब क्या। पागे = फैले हुए। द्विजराम = परशुराम। अनुरागे = अनुरक्त होने पर। रन में अनुरागे = युद्ध में भिड़ जाने पर। मृगराज = सिंह।

अर्थ—शिवाजी के यश के सामने कुन्द पुष्प, क्षीरसागर और चन्द्रमा क्या हैं ? अर्थात् कुछ भी नहीं। भूषण कहते हैं, खुमान राजा शिवाजी के सारी पृथिवी पर फैलते हुए प्रताप के आगे सूर्य और कृशानु (अग्नि) भी क्या हैं, अर्थात् तुच्छ हैं। युद्ध में जब शिवाजी भिड़ जाते हैं तब उनके सामने श्रीरामचन्द्र, बलराम और परशुराम भी क्या हैं ? अर्थात् वे शत्रुओं का इतनी भयंकरता से संहार करते हैं कि इन बड़े-बड़े बलवानों की भयंकरता भी फीकी पड़ जाती है। साहस में उनके सम्मुख बाज और सिंह भी क्या हैं ?

विवरण—यहाँ शिवाजी के यश (उपमेय) के सामने कुन्द, क्षीर-सागर और चन्द्रमा आदि उपमान व्यर्थ दिखाये गये हैं। पुनः शिवाजी के प्रताप (उपमेय) के सामने भानु, अग्नि, आदि उपमानों की व्यर्थता प्रकट की गई है। फिर शिवाजी की वीरता (उपमेय) के सामने राम, परशुराम, बलराम आदि उपमानों की वीरता को तुच्छ दिखाया गया है, इसी प्रकार अन्त में शिवाजी के साहस उपमेय के सामने बाज और सिंह उपमानों की व्यर्थता दिखाई गई है।

यहाँ उपमेयों के सामने उपमानों की व्यर्थता प्रकट की गई है, उन्हें नष्ट नहीं किया गया। यह उदाहरण भूषण के दिए हुए लक्षण से नहीं मिलता किन्तु वास्तविक लक्षण से मिलता है।

तीसरा उदाहरण—मालती सवैया

यों सिवराज को राज अडोल कियो सिव जोऽब कहा ध्रुव धू है।
कामना-दानि खुमान लखे न कछू सुर-रूख न देवगऊ है?
भूषन भूपन में कुल भूषन भौंसिला भूप धरे सब भू है।
मेरु कछू न कछू दिग्दन्ति न कुण्डलि कोल कछू न कछू है॥५२॥

शब्दार्थ—जोऽब = सो अब। ध्रुव = ध्रुव, तारे का नाम। धू ध्रुव = निश्चल (ध्रुव तारा निश्चल माना जाता है)। कामना दानि = मनोवांछित दान देने वाला। सुखरूख = कल्पवृक्ष। देवगऊ = कामधेनु। दिग्दन्ति = दिग्गज, दिशाओं के हाथी। कुण्डलि = सर्प, शेषनाग। कोल = शूकर, वराह। कछू = कच्छप, कछुवा।

अर्थ—महादेवजी ने शिवाजी के राज को ऐसा अटल कर दिया है कि ध्रुवतारा भी अब उसके सम्मुख क्या अटल है? मनोवांछित दान देने वाले शिवाजी को देख कर कल्पवृक्ष और कामधेनु भी कुछ नहीं जँचते अर्थात् तुच्छ दिखाई देते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि राजाओं के कुल में भूषण (श्रेष्ठ) भौंसिला राजा शिवाजी समस्त भूमि का भार अपने ऊपर इस तरह धारण किये हुए हैं कि न मेरु पर्वत की आवश्यकता है न दिग्गजों की, और न शेषनाग वराह तथा कच्छप की आवश्यकता है।

विवरण—पुराणों में वर्णन आता है कि पृथ्वी कहीं हवा में उड़ न जाय, अतएव पृथ्वी को दबाये रखने के लिए आठों दिशाओं में आठ बड़े-बड़े हाथी हैं। भगवान ने वराहावतार ले कर पृथ्वी को अपने दाँत से उबारा और धारण किया था, अतएव वराह की गणना भी पृथ्वी के धारण करने वालों में है। ऐसा कहा जाता है कि सब से नीचे कच्छप है, उसकी पीठ पर शेषनाग कुंडली लगाये बैठा है। उसके फणों पर ही इस पृथ्वी का सारा भार है। अतः कच्छप और शेष भी पृथ्वी को धारण करने वाले हैं।

यहाँ शिवाजी उपमेय के सम्मुख मेरु पर्वत, दिग्गज, शेषनाग आदि

उपमानों की व्यर्थता प्रकट की गई है।

उपमेयोपमा

जहाँ परस्पर होत है, उपमेयो उपमान।
भूषन उपमेयोपमा, ताहि बखानत जान ॥५३॥

शब्दार्थ—जान = जानो।

अर्थ—जहाँ आपस में उपमेय और उपमान ही एक दूसरे के उपमान और उपमेय हों, वहाँ उपमेयोपमा अलंकार होता है।

विवरण—इसमें उपमेय की उपमान से और उपमान की उपमेय से उपमा दी जाती है, किसी तीसरी वस्तु की उपमा नहीं दी जाती।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तेरो तेज सरजा समत्थ! दिनकर सो है,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।
भौंसिला भुवाल! तेरो जस हिमकर सो है,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो॥
भूषन भनत तेरो हियो रत्नाकर सो,
रत्नाकरौ है तेरो हिए सुखकर सो।
साहि के सपूत सिव साहि दानि! तेरो कर
सुरतरु सो है, सुरतरु तेरो कर सो ॥५४॥

शब्दार्थ—समत्थ = (सं०) समर्थ, शक्तिशाली। दिनकर = सूर्य। सो है = समान है। सोहै = शोभित होता है। निकर = समूह। भुवाल = भूपाल। हिमकर = चन्द्रमा। अकर = आकर, खान। रत्नाकर = समुद्र। सुखकर = सुखदाई। सुरतरु = कल्पवृक्ष।

अर्थ—हे शक्तिशाली शिवाजी! आपका तेज सूर्य के समान है और सूर्य आपके तेज-पुंज के समान शोभित है। हे भौंसिला राजा! आपका यश (उज्ज्वलता में) चन्द्रमा के समान है और चन्द्रमा आपके यश की खान के समान शोभित है। भूषण कवि कहते हैं कि आपका हृदय (गंभीरता में) समुद्र के समान है और समुद्र आपके सुखदायी हृदय के समान गंभीर है। हे

शाहजी के सुपुत्र दानी शिवाजी ! (मुँह माँगा दान देने में) आपका हाथ कल्पवृक्ष के समान है और कल्पवृक्ष आपके हाथ के समान है।

विवरण—यहाँ पहले शिवाजी का तेज, उनका यश, उनका हृदय और उनका कर, क्रमशः उपमेय हैं फिर ये ही, सूर्य, हिमकर, रत्नाकर और कल्पवृक्ष आदि के (जो पहले उपमान थे और बाद में उपमेय हो गये हैं) क्रमशः उपमान कथन किये गये हैं।

मालोपमा

जहाँ एक उपमेय के, होत बहुत उपमान।
ताहि कहत मालोपमा, भूषन सुकवि सुजान ॥५५॥

अर्थ—जहाँ एक ही उपमेय के बहुत से उपमान हों वहाँ श्रेष्ठ कवि मालोपमा अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाडव सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन बारिबाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाह पर राम-द्विजराज है॥
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
'भूषन' बितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है ॥५६॥

शब्दार्थ—अम्भ = (सं० अंभस्) जल, यहाँ समुद्र से तात्पर्य है। दंभ = घमंडी। रघुकुलराज = रामचन्द्र। बारिवाह = (वारि + वाह) जल वहन करने वाला, बादल। रतिनाह = रति के स्वामी, कामदेव। रामद्विजराज = परशुराम। दावा = वन की अग्नि। द्रुमदण्ड = वृक्ष की शाखाएँ। बितुण्ड = हाथी। तम अंस = अंधकार का समूह।

अर्थ—जिस प्रकार इन्द्र ने जृम्भ राक्षस को, श्रीराम ने घमंडी रावण को, महादेव जी ने रतिनाथ (कामदेव) को, परशुराम ने सहस्रबाहु को और

श्रीकृष्ण ने कंस को नष्ट किया† और बाड़व (बड़वानल) समुद्र को, पवन बादलों को, दावाग्नि (जङ्गल की आग) वृक्षों की शाखाओं को, चीता हिरणों के झुंडों को, सिंह हाथियों को और सूर्य का तेज अंधकार के समूह को नष्ट कर देता है उसी प्रकार शिवाजी मुसलमान वंश का नाश करने वाले हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी 'उपमेय' के इन्द्र, राम, महादेव, कृष्ण, बड़वानल आदि अनेक उपमान कथन किये गये हैं।

ललितोपमा

जहँ समता को दुहुन की, लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा, सकल कविन के गोत ॥५७॥

शब्दार्थ—लीलादिक पद = पद विशेष, (जिनका वर्णन अगले दोहे में है) गोत = समूह, वंश, सब।

अर्थ—जिस स्थान पर उपमेय और उपमान की समता देने को लीलादिक पद आते हैं, वहाँ सब कवि ललितोपमा अलंकार कहते हैं।

बहसत, निदरत, हँसत जहँ, छवि अनुहरत बखान।
सत्रु मित्र इमि औरऊ, लीलादिक पद जान ॥५८॥

शब्दार्थ—निदरत = अपमान करना।

अर्थ—बहस करना, अपमान करना, हँसना, छवि की नकल करना, शत्रु है, मित्र है आदि तथा इसी प्रकार के और भी शब्द लीलादिक पद कहलाते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहि तनै सरजा सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है।

---

† जृम्भ नामक राक्षस महिषासुर का पिता था। इसे इन्द्र ने मारा था। समाधिस्थ महादेव ने अपने तीसरे नेत्र द्वारा समाधि भंग करने के लिए आये हुए कामदेव को भस्म कर दिया था, यह प्रसिद्ध है। सहस्रबाहु (कार्तवीर्य) एक बड़ा पराक्रमी राजा था। इसकी एक सहस्र भुजाएँ थीं। इसने परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि का सिर काटा था। इसपर क्रुद्ध हो परशुराम ने इसे मार डाला था।

भूषन भनत जाके एक एक सिखर ते,
केते धौं नदी नद की रेल उतरति है ॥
जोन्ह को हँसत जोति हीरा मनि मन्दिरन,
कन्दरन मैं छवि कुहू की उछरति है।
ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामैं
नखतावली सों बहस दीपावली करति है ॥५९॥

शब्दार्थ—सिखर = (सं०) शिखर, चोटी। रेल = रेला, प्रवाह। रेल उतरति है = बहते हैं। जोन्ह = ज्योत्स्ना, चाँदनी। कन्दर = कन्दरा, गुफा। कुहू की छवि = अमावस्या की रात का अंधकार। उछरति है = उछल कर भागती है, नष्ट होती है। नखतावली = (सं० नक्षत्र + अवली) तारों की पंक्ति।

अर्थ—जिस किले में शाहजी के पुत्र सरजा राजा शिवाजी की ऐसी सभा है, जो कि इन्द्र की मेरु पर्वत वाली (देवताओं की) सभा को भी लज्जित करती है, भूषण कवि कहते हैं कि जिस किले के पहाड़ की प्रत्येक चोटी से कितने ही नदी नालों के प्रवाह बहते हैं, जिस किले के महलों में जड़े हुए हीरे और मणियों के प्रकाश से चाँदनी की हँसी होती है और गुफाओं में रहनेवाला अमावस्या की रात्रि का सा घना अँधेरा नष्ट हो जाता है, शिवाजी का वह किला इतना ऊँचा है कि उसकी दीपावली तारों की पंक्तियों से बहस करती है।

विवरण—यहाँ शिवाजी की सभा से इन्द्र की सभा का लज्जित होना और हीरों की चमक से चाँदनी की हँसी होना और दीपावली का तारों की पंक्ति से बहस करना वर्णित है। यही ललितोपमा है। ललितोपमा में प्रसिद्ध वाचक शब्दों के द्वारा उपमा न कह कर विशेष प्रकार के शब्दों (लीलादिक पदों) से उसका लक्ष्य कराया जाता है, इसलिए इसे लक्ष्योपमा भी कहते हैं।

रूपक

जहाँ दुहुन को भेद नहिं बरनत सुकवि सुजान।
रूपक भूषन ताहि को, भूषन करत बखान ॥६०॥

अर्थ—जहाँ चतुर कवि उपमेय और उपमान दोनों में कुछ भेद वर्णन न करें, वहाँ भूषण कवि रूपक अलंकार कहते हैं।

विवरण—उपमा में उपमेय और उपमान का भेद बना रहता है, परन्तु

रूपक में दोनों में एकरूपता होती है। यद्यपि उपमेय और उपमान दोनों का अलग-अलग अस्तित्व रहता है, फिर भी दोनों एक ही रूप प्रतीत होते हैं। जैसे—मुखचन्द्र अर्थात् मुख ही चन्द्र है। इसके दो भेद हैं—अभेद रूपक और ताद्रूप्य रूपक। भूषण ने केवल अभेद रूपक का वर्णन किया है। उक्त दो भेदों के भी तीन तीन और भेद होते हैं—सम, अधिक और न्यून। इनमें से भूषण ने छन्द सं० ६४ में केवल न्यून और अधिक दिये हैं।

उदाहरण—छप्पय

कलियुग जलधि अपार, उद्ध अधरम्म उर्म्मिमय।
लच्छनि लच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मगर चय॥
नृपति नदीनद वृन्द होत जाको मिलि नीरस।
भनि भूषन सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस॥
हिन्दुवान पुन्य गाहक बनिक, तासु निबाहक साहि सुव।
बर बादवान किरवान धरि जस जहाज सिवराज तुव॥६१॥

शब्दार्थ—उद्ध = (सं० ऊर्ध्व) ऊपर उठा हुआ, प्रबल। उर्मिमय = लहर वाला। लच्छनि लच्छ = लक्षणि-लक्ष, लाखों। कच्छ = कछुए। चय = समूह। सुअप्प = सुन्दर जल या अपना जल। निबाहक = निर्वाह करने वाला, कर्णधार। सुव = सुत, पुत्र। बादबान = (फा०) नाव में कपड़े का पाल, जिसमें हवा भरने पर नौका चलती है। किरवान = सं० कृपाण, तलवार।

अर्थ—कलियुग रूपी अपार समुद्र है जो अधर्म की प्रबल तरंगों से युक्त है, लाखों मुसलमान ही जिसमें कछुए मछली और मगर-समूह हैं, और जिसमें छोटे छोटे राजा-रूपी नदी नाले मिल कर नीरस हो जाते हैं (नदियाँ एवं नाले जब समुद्र में मिल जाते हैं तब उनका भी जल खारा हो जाता है), भूषण कहते हैं कि इस प्रकार कलियुग रूपी समुद्र ने समस्त पृथ्वी को घेर कर अपने जल के वश कर लिया है (अर्थात् कलियुग रूपी समुद्र सारे संसार में फैल गया है)। उस समुद्र में हिन्दू लोग पुण्य (का सौदा) खरीदने वाले बनिये हैं। हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! आप ही उनको पार उतारने वाले (कर्णधार) हैं और तलवार-रूपी सुन्दर पाल को धारण करने वाला आपका यश उनका जहाज है।

विवरण—यहाँ कलियुग उपमेय से समुद्र उपमान का अभेद वर्णन किया है। दोनों में एकरूपता है। यहाँ समुद्र का पूर्णरूप – कलियुग-समुद्र; अधर्म-ऊर्मि; म्लेच्छ-कच्छ मच्छ और मगर; राजा-नदीनद; हिन्दुवान–पुण्यग्राहक व्यापारी; शिवाजी-कर्णधार; कृपाण-पाल; यश–जहाज वर्णित हैं; अतः अभेद रूपक है। इसे सांग रूपक भी कहते हैं क्योंकि इसमें सब अवयवों (अंगों) का वर्णन है।

दूसरा उदाहरण—छप्पय

साहिन मन समरत्थ जासु नवरंग साहि सिरु।
हृदय जासु अब्बास साहि बहुबल बिलास थिरु॥
एदिलसाहि कुतुब्ब जासु जुग भुज भूषन भनि।
पाय म्लेच्छ उमराय काय तुरकानि आनि गनि॥
यह रूप अवनि अवतार धरि जेहि जालिम जग दंडियव।
सरजा सिव साहस खग्ग गहि कलियुग सोई खल खंडियव॥६२॥

शब्दार्थ—मन = मणि (श्रेष्ठ)। नवरंग सहि = औरंगजेब बादशाह। सिरु = सिर। थिरु = स्थिर। अब्बास = तत्कालीन फारस के बादशाह का नाम; इसके साथ शाहजहाँ और औरंगजेब का मेल और लिखा पढ़ी थी, इसका दूत औरंगजेब के दरबार में रहता था। एदिलसाहि = आदिलशाह, बीजापुर का बादशाह; शिवाजी के पिता शाहजी इसी के यहाँ नौकर थे। कुतुब्ब = कुतुबशाह, गोलकुंडा का बादशाह। जुग = युग, दोनों। पाय = पैर। काय = शरीर। आन = अन्य, और। दंडियब = दंडित किया, सताया। खंडियब = खंडित किया, मार डाला।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि बादशाहों में श्रेष्ठ, शक्तिशाली औरंगजेब बादशाह जिसका सिर है, महाबली किंतु विलासरत (आमोद प्रमोद में लगा हुआ) अब्बासशाह जिसका हृदय है, आदिलशाह और कुतुबशाह जिसके दो बाहु हैं, म्लेच्छ (मुसलमान) उमराव जिसके पैर हैं और अन्य तुर्क लोग जिसके अन्यांग हैं, ऐसे शरीर से पृथ्वी पर अवतार धारण कर अत्याचारी कलियुग ने सारे संसार को बहुत सताया। परन्तु उसी नीच को शिवाजी ने साहस की तलवार पकड़ कर खंड खंड कर डाला।

विवरण—यहाँ औरंगजेब, अब्बासशाह, कुतुबशाह, आदि को कलियुग

खल के अंगों का रूप दिया गया है। यहाँ भी सांग रूपक है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल हठी,
भठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
भूषन भनत, देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मति हिये मैं धरि काहुवै न हटक्यो॥
साहि के शिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा
मदगल अफजलै पंजाबल पटक्यो।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो॥६३॥

शब्दार्थ—थरि = स्थली, जगह। जावली = यह प्रान्त कोयना नदी की घाटी में ठीक महाबलेश्वर के नीचे था। यह एक तीर्थ स्थान था। शिवाजी ने सन् १६५६ में इस स्थान को जीत कर यहाँ प्रतापगढ़ किला बनवाया था। इसी स्थान पर उन्होंने अफ़ज़लखाँ को मारा था। भठी = भटी, सेनापति; (भट = सैनिक)। भटक्यो = भटका, धोखा खाया, भूल की। भभरि = हड़बड़ा कर, घवड़ा कर। काहुवै = किसी ने भी। न हटक्यो = हटका नहीं, रोका नहीं। गाजी = मुसलमानों में वह वीर जो धर्म के लिए विधर्मियों से युद्ध करे, धर्म-वीर। मदगल = मद झरता हुआ, मस्त। आकुल = सिद्दी कासिम याकूत खाँ; यह बीजापुर का एक वीर सरदार था। सटक्यो = चुपचाप चला गया। आँकुस = अंकुश।

अर्थ—हठी आदिलशाह ने जावली देश के जंगल को सिंह के रहने का स्थान न जान कर सेनापति अफ़ज़लखाँ रूपी हाथी को वहाँ भेज कर बड़ी भूल की—अर्थात् शिवाजी रूपी सिंह के पराक्रम को न जान कर आदिलशाह ने अफ़ज़लखाँ को भेज कर बड़ी भूल की। भूषण कवि कहते हैं कि वीरकेसरी शिवाजी को देख सारी सेना हड़बड़ा कर भाग गई और हृदय में हिम्मत धारण कर किसी ने उन्हें न रोका। शाहजी के समर्थ पुत्र शिवाजी रुपी सिंह ने अफ़ज़लखाँ-रूपी मदमस्त हाथी को अपने पंजे (बघनखे) के जोर से पछाड़

दिया* । उस अफ़ज़लखाँ के बिना याकूतखाँ-रूपी महावत बेकार हो अपने (प्रेरणा रूप) अंकुश को ले चुपचाप चला गया (याकूतखाँ ने अफ़ज़लखाँ को शिवाजी से एकान्त में मिलने की सलाह दी थी)।

विवरण—यहाँ शिवाजी में सिंह का, अफ़जलखाँ में मदगलित हाथी का और याकूतखाँ में महावत का आरोप किया गया है।

रूपक के दो अन्य भेद (न्यून तथा अधिक)

घटि बढ़ि जहँ बरनन करैं, करिकै दुहुन अभेद।
भूषन कवि औरौ कहत, द्वै रूपक के भेद ॥६४॥

अर्थ—जहाँ उपमान का उपमेय में अभेद आरोपण करके उनके गुण घटा बढ़ा कर वर्णन किये जायँ वहाँ कवि रूपक के न्यून और अधिक दो और भेद करते हैं।

विवरण—जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ अधिकता दिखाई जाती है, तब अधिक रूपक, और जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ न्यूनता दिखाई जाय तब न्यून रूपक होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहि तनै सिवराज भूषन सुजस तव,
बिगिरि कलंक चंद उर आनियतु है ॥
पंचानन एक ही बदन गनि तोहि,
गजानन गजबदन बिना बखानियतु है।
एक सीस ही सहससीस कला करिबे को,
दुहूँ दृग सों सहसदृग मानियतु है।
दुहूँ कर सों सहसकर मानियतु तोहि,
दुहूँ कर सों सहसबाहु जानियतु है ॥६५॥

शब्दार्थ—उर = हृदय। बिगिरि = बिना, रहित। उर आनियतु है = मन में लाते हैं, मानते हैं। पंचानन = शिव। गजानन = हाथी के समान मुख वाले, गणेश। सहससीस = शेषनाग। बखानियतु है = कहते हैं। सहसदृग =

---

* अफजलखाँ के वध का वर्णन भूमिका में देखिये।

इन्द्र। सहसकर = सूर्य।

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! भूषण कवि आपके शुभ्र यश को बिना कलंक का चंद्रमा मानते हैं। एक ही मुख वाले आपको वे पंचानन और हाथी के मुख बिना ही आपको गणेश कहते हैं। एक ही शीश वाले आपको वे हजार फण वाला शेषनाग और दो नेत्र वाले होने पर भी आपको हजारों आँख वाला इन्द्र मानते हैं। आपके दो हाथ होने पर भी आपको हज़ार कर (किरणों) वाला सूर्य मानते हैं और दो भुजाएँ होने पर भी आपको हजार बाहु वाला सहस्रबाहु समझते हैं।

विवरण—यहाँ "बिगरि कलंक चंद" में अधिक रूपक है, किन्तु अन्याङ्गों में न्यूनता होने पर भी उनका क्रमशः शिव, गणेश और शेषनाग आदि उपमानों में आरोप किया गया है, अतः न्यून रूपक है।

जेते हैं पहार भुव पारावार माहिं,
तिन सुनि कै अपार कृपा गहे सुख फैल है।
भूषन भनत साहि तनै सरजा के पास,
आइबे को चढ़ी उर हौंसनि की ऐल है॥
किरवान वज्र सों बिपच्छ करिबे के डर,
आनि के कितेक आए सरन की गैल है।
मघवा मही मैं तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल है॥६६॥

शब्दार्थ—पारावार = समुद्र। ऐल = रेल, ज़ोरों का प्रवाह। हौंस = हविस, इच्छा। कोट करि = किले बना कर। मघवा = इन्द्र।

अर्थ—समस्त पृथ्वी और समुद्र में जितने भी पहाड़ हैं उन्होंने शिवाजी की अपार कृपा को सुन कर अत्यधिक सुख पाया है। भूषण कवि कहते हैं कि उन सब के मन में महाराज शिवाजी के आश्रय में आने की बड़ी हविस पैदा हो गई है, उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गई है। (शिवाजी पृथ्वी पर के इन्द्र हैं अतएव) बहुतों ने तो उनके तलवार-रूपी वज्र से पक्षहीन होने के भय से शरण मार्ग ग्रहण कर लिया, अर्थात् इस डर से कि कहीं शिवाजी अपने तलवार-रूप वज्र से हमारे पंख न काट दें, वे स्वयं शिवाजी की शरण में आ

गये हैं, क्योंकि महापुरुष शरणागत को कष्ट नहीं देते। इस प्रकार पृथ्वी पर तेजस्वी तथा महाबली शिवाजी रूपी इन्द्र ने इन सब पर्वतों पर किले बना बना कर उन्हें सपक्ष कर दिया अर्थात् अपने पक्ष में ले लिया। (इस पद में कवि ने ऐतिहासिक तथ्य को बड़ी कुशलता से वर्णन किया है। शिवाजी ने अपने प्रबल शत्रुओं से लोहा लेने के लिए आस पास की पहाड़ियों पर अनेक किले बनवाये थे, और इस प्रकार उन पहाड़ियों को अपने पक्ष में कर लिया था जिनपर उस समय तक अन्य किसी का राज्य न था। यह देख कर और शिवाजी के पराक्रम से डर कर आस पास के अनेक पहाड़ी किलों के मालिक भी शिवाजी की शरण में आ गये थे। उन्हें इस बात का डर था कि कहीं हमने शिवाजी के विरुद्ध कार्य किया तो शिवाजी हमारा किला छीन लेंगे। इसी ऐतिहासिक तथ्य को कवि ने आलंकारिक ढंग से वर्णन किया है)।

विवरण—यहाँ उपमेय शिवाजी में इन्द्र उपमान का आरोप है, किन्तु 'शैल का सपक्ष करना' रूप गुण इन्द्र में नहीं था, इन्द्र ने तो उन्हें पक्ष-रहित किया था, वह शिवाजी में आरोपित कर अधिकता प्रकट की है। अतः अधिक रूपक है।

पुराणों में लिखा है कि पहले पहाड़ों के पंख थे। वे इधर-उधर उड़ कर जहाँ तहाँ बैठते थे और इस प्रकार बड़ा जन-संहार करते थे। अतः इन्द्र ने अपने वज्र से एक बार इन पहाड़ों के पंख काट डाले। केवल मैनाक पर्वत ही समुद्र में छिप जाने के कारण बच गया, उसके पंख नहीं कटे और वह अभी तक छिपा पड़ा है।

परिणाम

जहँ अभेद कर दुहुन सों, करत और स्वे काम।
भनि भूषन सब कहत हैं, तासु नाम परिनाम ॥६७॥

शब्दार्थ—स्वे = स्वकीय, अपना।

अर्थ—जहाँ उपमान से उपमेय एक रूप हो कर अपना कार्य करे भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ सब परिणाम अलंकार मानते हैं।

विवरण—इसमें उपमान स्वयं किसी काम के करने में असमर्थ होने के कारण उपमेय के साथ एक रूप हो कर उस काम को करता है। अथवा उपमेय

के करने का काम उपमान करता है। रूपक की तरह इस अलंकार में उपमान और उपमेय की एकरूपता ही नहीं दिखाई जाती, अपितु उपमेय को उपमान में परिणत कर उसके द्वारा उस कार्य के किये जाने का भी वर्णन होता है जो कार्य उपमान द्वारा किया जाना चाहिए था। 'यशरूपी चन्द्रमा' इतने में केवल रूपक अलंकार है, पर 'यशरूपी चन्द्रमा अपनी ज्योत्स्ना से जगत को धवलित कर रहा है' इसमें परिणाम अलंकार हो गया। भूषण का यह लक्षण अधिक स्पष्ट नहीं है।

उदाहरण—मालती सवैया

भौंसिला भूप बली भुव को भुज भारी भुजंगम सों भरु लीनो।
भूषन तीखन तेज तरन्नि सों बैरिन को कियो पानिप हीनो॥
दारिद दौ करि बारिद सों दलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो।
साहि तनै कुलचंद सिवा जस चंद सों चंद कियो छबि छीनो॥६८॥

शब्दार्थ—भुजंगम = सर्प (शेषनाग)। भरु = भार। तरन्नि = तरणि, सूर्य। पानिप = आब, कान्ति। दौ = दावाग्नि (सूखे जंगल में चारों ओर से लगने वाली अग्नि)। करि = हाथी। छीनो = क्षीण, हीन, मलिन।

अर्थ—वीर भौंसिला राजा शिवाजी ने अपनी बलवती भुजा-रूपी सर्प (शेषनाग) पर पृथ्वी का भार उठा लिया। भूषण कहते हैं कि उन्होंने अपने प्रबल तेजरूपी सूर्य से शत्रुओं के मुख की कान्ति फीकी कर डाली। दरिद्रता रूपी अग्नि को हाथी (दान) रूपी मेघों से नष्ट करके पृथ्वी-तल को शीतल कर दिया—अर्थात् हाथियों का दान दे कर दरिद्रों की दरिद्रता को दूर कर दिया। शाहजी के पुत्र, कुल के चन्द्रमा शिवाजी ने अपने यश चन्द्र से चन्द्रमा की छवि को मलिन कर दिया।

विवरण—यहाँ भुजा (उपमेय) से सर्प (उपमान), तेज (उपमेय) से तरनि (उपमान), करि (उपमेय) से बारिद (उपमान) और यश (उपमेय) से चन्द्र (उपमान) एक रूप हो कर क्रमशः भार उठाना, पानिप (कान्ति) हीन करना, दारिद्र्याग्नि दूर करना, और प्रकाश करना आदि काम करते हैं। यहाँ प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्ति में परिणाम अलङ्कार ठीक बैठता है किन्तु तीसरी पंक्ति में दो रूपक एक साथ होने से परिणाम न

रह कर रूपक हो गया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

बीर बिजैपुर के उजीर निसिचर
गोलकुंडा वारे घूघूते उड़ाये हैं जहान सों।
मंद करी मुखरुचि चंद चकता की कियो,
भूषन मुषित द्विज-चक्र खान पान सो॥
तुरकान मलिन कुमुदिनी करी है, हिंदु-
वान नलिनी खिलायो विविध विधान सों।
चारु सिव नाम को प्रतापी सिव साहि सुव,
तापी सब भूमि यों कृपान भासमान सों॥६९॥

शब्दार्थ—उजीर=वजीर। घूघू=उल्लू। मुख-रुचि=मुख की कान्ति। भासमान=सूर्य।

अर्थ—शिवजी के शुभ नाम वाले शाहजी के बेटे प्रतापी शिवाजी ने अपने कृपाण-रूपी सूर्य के प्रकाश से समस्त भूमंडल को इस प्रकार तपाया (प्रकाशित कर दिया) जिससे कि बीजापुर के वज़ीर रूपी निशिचर (राक्षस) और गोलकुंडा के सरदार रूपी उल्लू दुनियाँ से उड़ गये (दिन में राक्षस और उल्लू कहीं छिप जाते हैं)। चगताई प्रदेश के तुर्क तैमूर के वंशज औरंग-जेब के मुखचन्द्र की कान्ति फीकी पड़ गई और द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) रूपी चक्रवाक भोजन-सामग्री से युक्त हो गये अर्थात् इनके प्रताप से सुख पाने लगे, (चकवा चकवी दिन में प्रसन्न रहते हैं)। तुर्क-रूपी कुमुदिनी को मुरझा दिया और हिन्दू रूपी कमलिनी को अनेक भाँति से प्रफुल्लित कर दिया।

विवरण—यहाँ शिवाजी के 'कृपाण' उपमेय से 'सूर्य' उपमान ने एक हो कर उपर्युक्त कार्य किये हैं।

उल्लेख

कै बहुतै कै एक जहँ, एक वस्तु को देखि।
बहु विधि करि उल्लेख हैं, सो उल्लेख उलेख॥७०॥

अर्थ—एक वस्तु को अनेक मनुष्य बहुत तरह से कहें वा एक ही व्यक्ति उसे (विषय-भेद से) अनेक प्रकार से कहे तब उल्लेख अलङ्कार होता

है। (प्रथमावस्था में पहला उल्लेख होता है, द्वितीय में दूसरा)।

उदाहरण—मालती सवैया

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सब को चित चाहै।
एक कहैं अवतार मनोज को यों तन मैं अति सुन्दरता है॥
भूषन, एक कहैं महि इंदु यों राज बिराजत बाढ्यो महा है।
एक कहैं नरसिंह है संगर एक कहैं नरसिंह सिवा है॥७१॥

शब्दार्थ—पूरत = पूरी करता। चित चाहै = इच्छा। मनोज = कामदेव। इन्दु = चन्द्रमा। संगर = संग्राम, युद्ध।

अर्थ—शिवाजी को सब की इच्छाएँ पूर्ण करने वाला जान कर कोई उन्हें कल्पद्रुम बताता है। उनके शरीर की अत्यधिक सुन्दरता को देख कर कोई उन्हें काम का अवतार मानता है। भूषण कवि कहते हैं कि कोई उनके खूब फैले हुए राज्य की समुज्ज्वल कीर्ति को देख कर उन्हें पृथ्वी का चन्द्रमा कहता है। कोई कहता है कि शिवाजी संग्राम में मनुष्य रूपी सिंह हैं और कोई उन्हें नृसिंह अवतार भी मानता है।

विवरण—यहाँ अनेक मनुष्य एक शिवाजी का अनेक भाँति से वर्णन करते हैं, अतः प्रथम उल्लेख है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

कवि कहैं करन, करनजीत कमनैत,
　　अरिन के उर माहिं कीन्ह्यों इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
　　और धराधरन को मेट्यो अहमेव है॥
भूषन भनत महाराज शिवराज तेरो,
　　राज-काज देखि कोई पावत न भेव है।
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहैं,
　　बहरी निजाम के जितैया कहैं देव है॥७२॥

शब्दार्थ—करनजीत = कर्ण को जीतने वाला, अर्जुन। कमनैत = तीर कमान चलाने वाले, धनुषधारी। छेव = छेद, क्षत, घाव। धरेस = राजा। धराधर = पृथ्वी को धारण करने वाला (राजा या शेषनाग)। अहमेव =

अहंकार, घमंड। कहरी = कहर ढाने वाला, विपत्ति लाने वाला। यदिल = आदिलशाह। लहरी = मौजी। बहरी निज़ाम = बहरी निज़ामुल्मुल्क, यह अहमदनगर के निज़ामशाही बादशाहों की उपाधि थी।

अर्थ—कवि लोग शिवाजी को (अत्यधिक दान करने के कारण) कर्ण कहते हैं (कर्ण दानवीर के रूप में प्रसिद्ध हैं); उन्होंने शत्रुओं के हृदय में इस प्रकार घात किये हैं कि धनुषधारी लोग उन्हें अर्जुन मानते हैं। शिवाजी ने पृथिवी के पालन करने वाले अन्य सब राजाओं के अहंकार को नष्ट कर दिया, अतः सारे राजा उन्हें पृथ्वी को धारण करने वाला शेषनाग कहते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! आपके राजकार्यों को देख कर कोई आपका भेद नहीं पा सकता। अर्थात् आपकी राजनीति बड़ी गूढ़ है क्योंकि आपको आदिल-शाह कहरी (कहर ढाने वाला, ज़ालिम), कुतुबशाह मन-मौजी (जो मन में आये वही करने वाला) और बहरी निजाम को जीतने वाले दिल्ली के मुगल बादशाह देव (उर्दू—देओ—राक्षस) कहते हैं।

विवरण—यहाँ भी शिवाजी का अनेक लोगों ने अनेक भाँति से वर्णन किया है, इसलिए यहाँ प्रथम उल्लेख है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

पैज प्रतिपाल, भूमि भार को हमाल, चहुँ
चक्क को अमाल भयो दण्डक जहान को।
साहिन को साल भयो ज्वारि को जवाल भयो,
हर को कृपाल भयो हार के विधान को॥
बीर रस ख्याल सिवराज भुवपाल तुव
हाथ को विसाल भयो भूषन बखान को।
तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो
हिन्दु को दिवाल भयो काल तुरकान को॥७३॥

शब्दार्थ—पैज = प्रतिज्ञा। हमाल = (अ० हम्माल) धारण करने वाला। भूमि भार को हमाल = पृथिवी के भार को उठाने वाला, रक्षक। चहुँ चक्क = चारों दिशाएँ। अमाल = आमिल, हाकिम। साल = सालने वाला, चुभने वाला, शूल। ज्वारि = जवारि या जौहर नाम का कोंकण के

पास का कोरी राज्य, जिसे सलहेरि के घेरे के बाद मोरोपंत पिंगले ने जीता था। जवाल = आफत। हार के विधान को = हार (मुण्डमाला, जो शिवजी पहनते हैं) का प्रबन्ध करने के कारण। करवाल = तलवार। ढाल = रक्षक।

अर्थ—हे शिवाजी! आपकी इस करवाल (तलवार) का कौन वर्णन करे यह आपकी पैज (प्रतिज्ञा—शत्रुओं को नष्ट करने की प्रतिज्ञा) का पालन करने वाली है, भूमि के भार को धारण करने वाली है अर्थात् भूमि-भार को धारण करने में सहायक है, चारों दिशाओं की अधिकारिणी (हाकिम) और संसार को दंड देने वाली है। यह बादशाहों को चुभने वाली, जवारि या जौहर प्रदेश के लिए आफत और महादेवजी की मुंडमाला का प्रबन्ध करने से उनपर कृपा करने वाली अथवा कृपालु है (अर्थात् युद्ध में शत्रुओं के सिर काट कर उनसे महादेव की मुंडमाला बनाने वाली है।) यह वीररस का ख्याल (ध्यान दिलाने वाली) है और हे महाराज शिवाजी! आपके हाथ को बड़ा करने वाली (अर्थात् बड़प्पन देने वाली) है, अथवा (यदि यहाँ 'भूषण' कवि का नाम न समझा जाय और उसका आभूषण अर्थ किया जाय तो 'विसाल' 'भूषण' का विशेषण होगा और तब इसका अर्थ होगा कि यह आपके हाथ के लिए विशाल आभूषण है। इसी प्रकार 'वीररस ख्याल' भी 'सिवराज' का विशेषण हो सकता है; और तब इसका अर्थ होगा—हे वीररस का ध्यान करने वाले—भारी वीर महाराज शिवाजी! यह तलवार आपके हाथ के लिए बड़प्पन का कारण है या विशाल आभूषण है।) यह दक्षिण देश की ढाल (रक्षक) है, हिन्दुओं के लिए दीवार (आक्रमण से बचाने वाली) है और मुसलमानों की काल है।

विवरण—यहाँ शिवाजी की 'करवाल' को एक ही व्यक्ति ने अनेक भाँति से वर्णन किया है, अतः द्वितीय उल्लेख है।

स्मृति

सम सोभा लखि आन की, सुधि आवत जेहि ठौर।
स्मृति भूषन तेहि कहत हैं, भूषन कवि सिरमौर ॥७४॥

अर्थ—समान शोभा (गुण, आकृति, रूप) वाली किसी दूसरी वस्तु को देख कर (वा सोच कर) जहाँ किसी (पहले देखी हुई) वस्तु की याद आ

जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि स्मृति अलंकार कहते हैं। (कभी-कभी स्वप्न देख कर भी स्मृति होती है।)

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आजु,
तुम ही जगत काज पोषत भरत हौ।
तुम्हैं छोड़ि यातें काहि बिनती सुनाऊँ मैं
तुम्हारे गुन गाऊँ, तुम ढीले क्यों परत हौ॥
भूषन भनत वाहि कुल मैं नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित मैं धरत हौ।
और बाँभनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥७५॥

शब्दार्थ—ब्रजराज = कृष्ण। पोषत भरत हौ = भरण पोषण करते हो, पालते हो। ढीले = शिथिल, उदासीन। बाँभनन = ब्राह्मण। भृगु = एक ऋषि थे, जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। कहा जाता है कि एक बार इन्होंने यह निश्चय करना चाहा कि ब्रह्मा, शंकर और विष्णु में कौन बड़ा है। ब्रह्मा और शंकर की परीक्षा के अनन्तर विष्णु जी के रनिवास में जा कर इन्होंने उनके वक्षःस्थल में लात जमाई। इसपर विष्णु बिलकुल क्रुद्ध न हुए अपितु उन्होंने भृगु जी से पूछा कि मेरी कठोर छाती पर लात मारने से आपके चरण तो नहीं दुखे। इस तरह अद्भुत सहिष्णुता दिखा कर वे सर्व-श्रेष्ठ सिद्ध हुए।

अर्थ—हे शिवाजी! वर्तमान समय में आप ही श्रीकृष्ण के अवतार हैं, क्योंकि आप ही संसार का भरण-पोषण करते हैं। इस हेतु मैं आपको छोड़ कर किससे बिनती करूँ! मैं तो आपका ही गुण-गान करता हूँ, परन्तु पता नहीं आप मुझसे उदासीन क्यों रहते हैं? भूषण कवि कहते हैं कि मैं भी उसी ब्राह्मण-कुल (भृगु कुल) में उत्पन्न हुआ हूँ—मेरा यह एक नया अपराध आप नाहक (व्यर्थ) मन में सोचते हैं। अन्य ब्राह्मणों को देख कर तो आपको सुदामा की याद आती है अर्थात् उनपर आप प्रसन्न रहते हैं, उनकी इच्छाओं को पूरा कर देते हैं और मुझे देख कर न जाने आपको भृगु-ऋषि की क्यों याद आती है अर्थात् मुझसे न जाने आप क्यों नाराज रहते हैं।

विवरण—शिवाजी ब्रजराज के अवतार हैं। अन्य ब्राह्मणों को देख कर उनको अपने मित्र सुदामा का स्मरण हो आने से और (विष्णु का अवतार होने के कारण) भूषण को देख कर भृगु का स्मरण हो आने से यहाँ स्मृति अलंकार हुआ।

भ्रम

आन बात को आन मैं, होत जहाँ भ्रम आय।
तासों भ्रम सब कहत हैं, भूषन सुकवि बनाय ॥७६॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य बात में अन्य बात का भ्रम हो वहाँ श्रेष्ठ कवि भ्रम अलंकार कहते हैं।

विवरण—भूल से किसी वस्तु को कोई और वस्तु मान बैठना भ्रम या भ्रांति है, इसी प्रकार जब उपमेय में उपमान का भ्रम हो तब भ्रम या भ्रांतिमान अलंकार होता है। इस अलंकार का 'रूपक' और 'रूपकातिशयोक्ति' से यह भेद है कि उक्त दोनों अलंकारों में उपमेय में उपमान का आरोप वास्तविक नहीं होता, कल्पित होता है; पर इस अलंकार में वास्तव में भ्रम हो जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

'पीय पहारन पास न जाहु' यों तीय बहादुर सों कहैं सोषै।
कौन बचैहै नवाब तुम्हैं भनि भूषन भौंसिला भूप के रोषै॥
बन्दि सइस्तखँहू को कियो जसवन्त से भाउ करन्न से दोषै।
सिंह सिवा के सुबीरन सों गो अमीर न बाचि गुनीजन घोषै ॥७७॥

शब्दार्थ—पीय = प्रिय, पति। सोषै = सोखें, सौगन्ध खिला कर। रोषै = रुष्ट होने पर। दोषै = दूषित कर दिया। बाचि = बच कर। घोषै = घोषणा करके कहते हैं, बार-बार कहते हैं। बहादुर = बहादुर खाँ, सलहेरि के युद्ध में जब मुगलों का पूर्ण पराजय हुआ तब औरंगज़ेब ने महावतखाँ और शाहज़ादा मुअज्जम की जगह बहादुरखाँ को सेनापति बना कर भेजा था। मराठों से लड़ने की इसकी हिम्मत न होती थी इसलिए इसने युद्ध बन्द कर दिया और भीमा नदी के किनारे पेड़गाँव में छावनी डाल कर रहने लगा। यहीं इसने बहादुरगढ़ नामक किला बनाया। करणसिंह और भाऊ का उल्लेख छंद सं० ३५ में देखिए।

अर्थ—स्त्रियाँ बहादुरखाँ को (अथवा अपने वीर पतियों को) सौगन्ध खिला-खिला कर कहती हैं कि हे प्यारे ! तुम पहाड़ों (दक्षिणी पहाड़ों) के निकट न जाओ, क्योंकि हे नवाब साहब ! भौंसिला राजा शिवाजी के क्रुद्ध होने पर तुम्हें कौन बचाएगा अर्थात् कोई भी नहीं बचा सकता। उन्होंने शाइस्तखाँ को भी कैद कर दिया तथा जसवन्तसिंह, करणसिंह और भाऊ जैसे वीरों को भी परास्त करके दूषित कर दिया फिर तुम्हारी क्या सामर्थ्य है ? सब गुणवान (पंडित लोग) बार-बार यही कहते हैं कि शिवाजी के वीर सरदारों से कोई भी अमीर उमराव अभी तक बच कर नहीं गया अर्थात् जितने भी अमीर उमराव दक्षिण में सूबेदारी अथवा युद्ध करने के लिए गये वे सब वहाँ मारे गये, इस हेतु तुम न जाओ।

विवरण—यहाँ शाइस्ताखाँ, करण और भाऊ की दुर्गति देख अथवा सुन कर शत्रु-स्त्रियों को अपने पतियों की सुरक्षितता में भ्रम होता है कि वे भी वहाँ जा कर न बचेंगे। किन्तु वास्तव में यह उदाहरण ठीक नहीं। इसका ठीक उदाहरण यह है—"फूल समझ कर शकुन्तला-मुख, भन भन उस पर भ्रमर करें।"

सन्देह

कै यह कै वह यों जहाँ होत आनि सन्देह।
भूषण सो सन्देह है, या मैं नहिं सन्देह ॥७८॥

अर्थ—जहाँ 'यह है वा यह है' इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो, भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ सन्देह अलंकार होता है, इसमें सन्देह नहीं।

विवरण—इसमें और भ्रम अलंकार में यह भेद है कि भ्रम में एक वस्तु पर निश्चय जम जाता है पर सन्देह में किसी पर निश्चय नहीं जमता, संदेह ही बना रहता है। धौं, किधौं, कि, कै, वा, आदि शब्दों द्वारा सन्देह प्रकट किया जाता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

आवत गुसलखाने ऐसे कछू त्यौर ठाने,
जाने अवरंग जू के प्रानन को लेवा है।

रस खोट भए ते अगोट आगरे मैं सातौं,
चौकी डाँकि आन घर कीन्हीं हद रेवा है ॥
भूषन भनत वह चहूँ चक्क चाहि कियो,
पातसाही चकता को छाती माँहि छेवा है ॥
जान्यो न परत ऐसे काम है करत कोऊ,
गंधरब देव है कि सिद्ध है कि सेवा है ॥७९॥

शब्दार्थ—त्यौर ठाने = त्यौरी चढ़ाये हुए, क्रोधित हुए हुए। रसखोट होना = अनरस होना, बात बिगड़ जाना। अगोट = आड़, पहरा। डाँकि = उल्लंघन कर, लाँघ कर। रेवा = नर्मदा नदी। चक्क = (सं० चक्र) दिशा। चाहि = इच्छा करके। छेवा = छेद, साल।

अर्थ—(शिवाजी जिस समय औरंगजेब से भेंट करने गये थे तब का वर्णन है) शिवाजी भृकुटी चढ़ाये हुए गुसलखाने के निकट हो कर (दरबार में) आते हुए ऐसे दिखाई दिये जैसे कि औरंगजेब का काल हो। बात बिगड़ने पर (क्योंकि औरंगजेब की ओर से मिर्ज़ा जयसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि आपके साथ प्रतिष्ठा-सहित संधि हो जायगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ बल्कि शिवाजी को कैद कर लिया गया) आगरे की पहरेदारों से रक्षित सातों चौकियों को लाँघ कर वे घर आ गये और उन्होंने अपने राज्य की सीमा रेवा (नर्मदा) को बनाया (राज्य इतना बढ़ाया कि नर्मदा तक सीमा पहुँच गई)। भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने इस भाँति चारों दिशाओं का राज्य प्राप्त करने की इच्छा कर औरंगजेब के हृदय में छेद कर दिया (शिवाजी के राज्य की बढ़ती देख औरंगजेब बड़ा दुखी हुआ)। वे ऐसा काम करते हैं कि पता नहीं लगता है कि वे गन्धर्व हैं, या देवता हैं, या कोई सिद्ध हैं या शिवाजी हैं।

विवरण—यहाँ 'गंधरब देव है कि सिद्ध है कि सेवा है' वाक्य में संदेह प्रकट किया गया है।

शुद्ध-अपह्नुति (शुद्धापह्नुति)

आन बात आरोपिए, साँची बात दुराय।
सुद्धापह्नुति कहत हैं, भूपन सुकवि बनाय ॥८०॥

अर्थ—जहाँ सच्ची बात या वास्तविक वस्तु को छिपा कर किसी दूसरी बात अथवा वस्तु का उसके स्थान में आरोप किया जाय वहाँ शुद्धापह्नुति अलंकार कहते हैं। ('अपह्नुति' का अर्थ ही 'छिपाना' है)।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चमकती चपला न, फेरत फिरंगैं भट,
इन्द्र को न चाप, रूप बैरष समाज को।
धाए धुरवा न, छाए धूरि के पटल, मेघ
गाजिबो न, बाजिबो है दुन्दुभि दराज को॥
भौंसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहैं,
पिय भजौ, देखि उदौ पावस के साज को।
घन की घटा न, गज-घटनि सनाह साज,
भूषन भनत आयो सेन सिवराज को॥८१॥

शब्दार्थ—फिरंगैं = विलायती तलवार। बैरष = झंडा। धुरवा = बादल। पटल = तह। दराज = बड़े। पावस = वर्षा। सनाह = कवच।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी के भय से डरी हुई शत्रुओं की स्त्रियाँ वर्षा के साज (वर्षा होने के लक्षणों) को देख कर अपने पतियों से कहती हैं कि यह चपला (बिजली) नहीं चमकती है, ये शूरवीरों की विलायती तलवारें हैं; यह इन्द्र-धनुष नहीं है, यह सेना के झंडों का समूह है; ये आकाश में बादल नहीं दौड़ रहे हैं, वरन् धूल की तह उड़ रही है (जो सेना के चलने पर उड़ती है); न यह बादलों की गर्जना है, यह तो ज़ोर ज़ोर से नगाड़ों का बजना है; न यह मेघों की घटा है, यह तो हाथियों के झुण्ड और कवचों से सुसज्जित हो कर शिवाजी की सेना आ रही है। अतः प्यारे! आप भागिए, नहीं तो खैर नहीं है।

विवरण—यहाँ बिजली की चमक, इन्द्र-धनुष, बादल, मेघ-गर्जन और घटाओं को छिपा कर उनके स्थान में तलवारों, झण्डों, धूल की तह, दुन्दुभि-ध्वनि, हाथियों और कवचों से युक्त शिवाजी की सेना आदि असत्य बातों का आरोप किया गया है, अतः शुद्ध-अपह्नुति अलंकार है।

हेतु-अपह्नुति (हेत्वपह्नुति)

जहाँ जुगति सौं आन को, कहिए आन छिपाय।
हेतु अपह्नुति कहत हैं, ता कहँ कवि समुदाय ॥८२॥

अर्थ—जहाँ युक्ति द्वारा किसी बात को छिपा कर दूसरी बात कही जाती है, वहाँ कवि लोग हेत्वपह्नुति अलङ्कार कहते हैं।

सूचना—शुद्धापह्नुति में जब कोई कारण भी कहा जाता है, तब हेत्वपह्नुति होती है।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान।
भुज-भुजगेस भुजंगिनी, भखति पौन अरि-प्रान ॥८३॥

शब्दार्थ—भुजगेस = शेषनाग। भुजंगिनी = सर्पिणी। भखति = खाती है। किरवान = कृपाण, तलवार।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी के हाथों में जो वस्तु शोभा पाती है वह तलवार नहीं है बल्कि वह उनकी भुजा-रूपी शेषनाग की सर्पिणी है जो शत्रुओं के प्राण-रूपी वायु को पी कर जीती है। (कहा जाता है कि साँप केवल वायु ही पीता है)।

विवरण—यहाँ तलवार को तलवार न कह उसे युक्ति से सर्पिणी कहा है क्योंकि वह शत्रुओं के प्राण-वायु को खाती है, अतः हेत्वपह्नुति अलङ्कार हुआ।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

भाखत सकल सिवाजी को करबाल पर,
भूषन कहत यह करि कै विचार को।
लीन्हों अवतार करतार के कहे ते काली,
म्लेच्छन हरन उद्धरन भुव भार को॥
चंडी ह्वै घुमंडि अरि चंड-मुंड चाबि करि,
पीवत रुधिर कछु लावत न बार को।
निज भरतार भूत-भूतन की भूख मेटि,
भूषित करत भूतनाथ भरतार को ॥८४॥

शब्दार्थ—घुमंडि = घूम घूम कर। चंड = प्रचंड, भयंकर, अथवा

एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। मुंड = सिर अथवा एक दैत्य जो शुंभ का सेनापति था, और उसकी आज्ञा से भगवती के साथ लड़ा था और उनके हाथों से मारा गया था। चंड और मुंड को मारने ही के कारण चंडी देवी को चामुंडा कहते हैं। भूतनाथ = भूतों के स्वामी महादेव, अथवा प्रजा के स्वामी महादेव, अथवा प्रजा के नाथ प्रजापति शिवाजी।

अर्थ—सब लोग शिवाजी की तलवार को तलवार कहते हैं परन्तु भूषण कवि विचार कर कहते हैं यह तलवार नहीं है बल्कि भगवान की आज्ञा से म्लेच्छों को मारने और भूमि-भार का उद्धार करने के लिए (भूमि के भार को हलका करने के लिए) कलियुग में कालीजी ने अवतार लिया है [चंडी ने चंड और मुंड नामक राक्षसों को मारा था और वह अपने पति (शिवजी) के नौकर भूत-प्रेतों की भूख मिटाती हुई स्वयं उन्हें (शिवजी को) मुंडमाला से सुशोभित करती है। ऐसा विश्वास है कि युद्ध में मरे हुए वीर पुरुषों के मुंडों की माला शिवजी पहनते हैं] वह चंडी (तलवार) घूमघूम कर प्रचंड शत्रुओं के सिरों को खाती है और उनका रुधिर पान करने में देर नहीं करती [अथवा यह (तलवार) घूम घूम कर शत्रु रूपी चंड मुंड नामक राक्षसों को चबाती हुई तत्काल उनका रक्त पी लेती है] और अपने स्वामी शिवाजी के नौकरों और प्रजा की भूख मिटाती है, तथा अपने मालिक प्रजापति शिवाजी को भूषित करती है; उनकी कीर्त्ति बढ़ाती है (इस तलवार द्वारा युद्ध जीत कर ही शिवाजी दुश्मनों का खजाना और राज्य हरते हैं, जिससे उनकी प्रजा की भूख मिटती है और इस तलवार द्वारा जितना ही शत्रुओं का नाश होता है उतनी ही शिवाजी की कीर्त्ति बढ़ती है, इस कारण इसे चंडी का अवतार कहना उचित ही है)।

विवरण—यहाँ दूसरे और तीसरे चरण में कारण कथन पूर्वक तलवार का निषेध करके उसे युक्ति से चंडी (काली) सिद्ध किया गया है अतः हेतु-अपह्नुति है।

पर्यस्तापह्नुति

वस्तु गोय ताको धरम, आन वस्तु में रोपि।
पर्यस्तापह्नुति कहत, कबि भूषन मति ओपि ॥८५॥

शब्दार्थ—गोय = छिपा कर। रोपि = आरोपित कर। मतिओपि = चमत्कृतबुद्धि, चतुर, अथवा बुद्धि को चमका कर अर्थात् बुद्धिमत्ता से।

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु को छिपा कर उसका धर्म किसी अन्य वस्तु में आरोपित किया जाय वहाँ चतुर कवि पर्यस्तापह्नुति अलंकार कहते हैं। जब किसी वस्तु (उपमान) के सच्चे गुण का निषेध कर, उसके गुण या धर्म को अन्य वस्तु में स्थापित किया जाय तब पर्यस्तापह्नुति अलंकार होता है।

विवरण—पर्यस्त का अर्थ "फैंका हुआ" है। इसमें एक वस्तु का अर्थ दूसरी वस्तु पर फैंका जाता है। जो धर्म छिपाया जाता है, वह प्रायः दुबारा आता है।

उदाहरण—दोहा

काल करत कलि काल में, नहिं तुरकन को काल।
काल करत तुरकान को, सिब सरजा करवाल ॥८६॥

अर्थ—कलियुग में काल (मौत) तुर्कों का अन्त नहीं करता किन्तु वीरकेसरी शिवाजी की तलवार उनका अंत (नाश) करती है अर्थात् कलियुग में तुर्क मौत से नहीं मरते अपितु शिवाजी की तलवार से मरते हैं।

विवरण—यहाँ 'काल' में 'काल करने' के धर्म का निषेध करके शिवाजी की करवाल (तलवार) में उसका आरोप किया गया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

तेरे ही भुजन पर भूतल को भार
कहिबे को सेस-नाग दिगनाग हिमाचल है।
तेरो अवतार जग पोसन भरनहार,
कछु करतार को न तामधि अमल है॥
साहिन में* सरजा समत्थ सिवराज, कवि
भूषन कहत जीबो तेरोई सफल है।
तेरो करवाल करै म्लेच्छन को काल, बिन
काज होत काल बदनाम धरातल है॥८७॥

---

*पाठान्तर—'सहितनै"।

अर्थ—(हे शिवाजी !) समस्त पृथ्वी का भार आप ही की भुजाओं पर है। शेषनाग दिग्गज और हिमाचल तो कहने मात्र के लिए ही हैं, अर्थात् उन पर पृथ्वी का भार नहीं है। आपका अवतार दुनियाँ के पालन-पोषण के हेतु हुआ है, इसमें करतार (ब्रह्मा) का कोई दखल नहीं है। भूषण कवि कहते हैं कि हे बादशाहों में वीरकेसरी महाशक्तिशाली शिवाजी ! वास्तव में आपका ही जीना सफल है। आपकी तलवार म्लेच्छों को मारती है, मृत्यु बेचारी तो व्यर्थ ही दुनियाँ में बदनाम होती है।

विवरण—यहाँ 'शेषनाग' और 'दिगनाग' के पृथ्वी के धारण करने रूप धर्म का निषेध कर उस (धर्म) का शिवाजी में आरोप किया गया है। पुनः ब्रह्मा के धर्म का निषेध कर शिवाजी में उसका आरोप किया गया है। अन्तिम चरण में मृत्यु के धर्म का उसमें निषेध कर शिवाजी के करवाल में उसका आरोप किया गया है।

भ्रान्तापह्नुति

संक आन को होत ही, जहँ भ्रम कीजै दूरि।
भ्रान्तापह्नुति कहत हैं, तहँ भूषन कवि भूरि ॥८८॥

अर्थ—किसी अन्य बात की शंका होते ही जहाँ (सच्ची बात कह कर) भ्रम दूर कर दिया जाय वहाँ कवि भ्रान्तापह्नुति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सरजा के भय सों भगाने भूप
मेरु मैं लुकाने ते लहत जाय ओत हैं।
भूषन तहाऊँ मरहटपति के प्रताप,
पावत न कल अति कौतुक उदोत हैं॥
'सिव आयो सिव आयो' संकर के आगमन,
सुनि कै परान ज्यों लगत अरि गोत हैं।
'सिव सरजा न, यह सिव है महेस' करि,
यों ही उपदेस जच्छ रच्छक से होत हैं ॥८९॥

शब्दार्थ—ओत = कष्ट की कमी, आराम, चैन। कल = चैन। मरहटपति = शिवाजी। उदोत = उदय, प्रकट। परान = पलान, पलायन,

भगदड़। अरिगोत = शत्रुकुल।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी के भय से शत्रु राजा भाग कर मेरु पर्वत में जा छिपे और वहाँ जा कर छिपने से वे कुछ आराम पाते हैं। लेकिन भूषण कहते हैं कि वहाँ भी उन्हें महाराष्ट्रपति के प्रताप के कारण पूरा चैन नहीं मिलता अतएव वहाँ बड़ा तमाशा हुआ करता है। महादेवजी के वहाँ आने पर जब "शिव आये, शिव आये" ऐसा शब्द वे (शत्रु राजा) सुनते हैं तो वे दौड़ने लगते हैं, उनमें भगदड़ मच जाती है (वे समझते हैं कि शिवाजी आ गये)। (इस प्रकार उन्हें भागता हुआ देख) वहाँ के यक्ष यह कह कर कि 'यह वीर-केसरी शिवाजी नहीं हैं अपितु शिव हैं' उनका भ्रम मिटा, इस आपत्ति के समय उनके रक्षक से हो जाते हैं।

विवरण—यहाँ शत्रु राजाओं को 'शिव' नाम से वीर-केसरी शिवाजी का भ्रम उत्पन्न हो गया था वह "सिव सरजा न, यह सिव है महेस" यह सत्य बात कह मर मिटाया गया है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

एक समै सजि कै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए।
"आवत है सरजा सम्हरौ", यक ओर ते लोगन बोल जनाए।
भूषन भो भ्रम औरंग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाए।
धाय कै "सिंह" कह्यो समुझाय करौलनि आय अचेत उठाए ॥९०॥

शब्दार्थ—आलमगीर = औरंगज़ेब। धाक = आतंक। धुकाए = घिरे, रोब में आये। धाक धुकाए = आतंक में घबराये हुए। करौल = शिकारी, जो लोग सिंह को उसकी माँद से हाँक कर लाते हैं।

अर्थ—एक समय बादशाह औरंगजेब समस्त सेना सजा कर शिकार खेलने गया। वहाँ (शिकार के समय) एक ओर से लोगों ने आवाज़ दी—'सँभलिए, सरजा (सिंह) आता है।' भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला-नरेश शिवाजी के आतंक से घबराये हुए औरंगज़ेब को यह सुन कर शिवाजी का भ्रम हो गया (उसने सरजा का अर्थ शिवाजी समझा) और वह मूर्च्छित हो गया। तब शिकारियों ने शीघ्रता से निकट जा कर 'शिवाजी नहीं, अपितु सिंह है' ऐसा समझा कर मूर्च्छित पड़े हुए को उठाया।

विवरण—यहाँ औरंगजेब ने सरजा का अर्थ 'शिवाजी' समझा था, शिकारियों ने सत्यार्थ 'सिंह' कह कर भ्रम दूर किया।

छेकापह्नुति

जहाँ और को संक करि, साँच छिपावत बात।
छेकापह्नुति कहत हैं, भूषन कवि अवदात॥९१॥

शब्दार्थ—अवदात = शुद्ध, श्रेष्ठ। कवि अवदात = श्रेष्ठ कवि।

अर्थ—जहाँ किसी दूसरी बात की शंका करके सच्ची बात को छिपाया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि छेकापह्नुति अलंकार कहते हैं।

विवरण—यह अलंकार भ्रान्तापह्नुति का ठीक उलटा है। भ्रान्तापह्नुति में सत्य कह कर भ्रम दूर किया जाता है, किन्तु इसके विपरीत चालाकी से जब सत्य को छिपा कर और असत्य कह कर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है तब छेकापह्नुति अलंकार होता है। शुद्धापह्नुति में जो असत्य का आरोप होता है वह किसी गुप्त बात को छिपाने के लिए नहीं होता। यहाँ एक बात कह कर उससे मुकर जाना होता है, अतः इसे मुकरी भी कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

'तिमिर-बंस-हर अरुन-कर, आयो सजनी भोर'।
'सिव सरजा', 'चुप रह सखी, सूरज कुल सिरमौर'॥९२॥

शब्दार्थ—तिमिर = अंधकार, तैमूर। तिमिरबंसहर = अंधकार को नष्ट करने वाला सूर्य, अथवा तैमूर के वंश (मुगलों) को नष्ट करने वाला शिवाजी। अरुनकर = लाल किरणों वाला सूर्य, लाल हाथ वाला (मुगलों के रक्त से लाल हाथों वाला)। भोर = प्रातः काल। सूरज कुल सिरमौर = वंश में श्रेष्ठ सूर्य, सूर्य वंश ने श्रेष्ठ।

अर्थ—हे सखि, तैमूर के वंश को नष्ट करने वाला (अँधेरे को नष्ट करने वाला) और लाल हाथों वाला (लाल किरणों वाला) प्रातः होते ही आया। क्या सखि वीर केसरी शिवाजी? नहीं सखि, चुप रह, मैं तो वंश में श्रेष्ठ सूर्य की बात करती हूँ।

विवरण—कोई स्त्री ऐसी शब्दावली में अपनी सखी से बात करती है जिससे शिवाजी और सूर्य दोनों पक्षों में अर्थ लगता है और फिर वह 'सिव

सरजा' की सच्ची बात छिपा कर सूर्य की झूठी बात कहती है, अतः यहाँ छेकापह्नुति है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

'दुरगहि बल पंजन प्रबल, सरजा जिति रन मोहिं'।
औरँग कहै देवान सों, 'सपन सुनावत तोहिं' ॥९३॥
सुनि सु उजीरन यों कह्यो, 'सरजा सिव महाराज"?
भूषन कहि चकता सकुचि, "नहिं सिकार मृगराज" ॥९४॥

शब्दार्थ—देवान = दीवान, मन्त्री। सरजा सिव महाराज = क्या वीर-केसरी शिवाजी महाराज? मृगराज = शेर।

अर्थ—औरंगज़ेब अपने वज़ीरों से कहता है कि मैं तुम्हें अपना सपना सुनाता हूँ, (स्वप्न में मैंने देखा) कि दुर्गों के बल से (या दुर्गा के बल से—सिंह दुर्गा का वाहन है, अतः उसे दुर्गा की कृपा प्राप्त है) और अपनी प्रबल भुजाओं से (अपने प्रबल पंजों से) सरजा ने मुझे रण में जीत लिया। यह सुन कर वजीरों ने पूछा—'क्या सरजा (वीरकेसरी) शिवाजी महाराज ने?' भूषण कहता है कि तब लज्जा से सकुचा कर (झेंप कर) औरंगज़ेब बोला—नहीं, (युद्ध में शिवाजी ने मुझे नहीं जीता) शिकार में मृगराज (सिंह) ने मुझे जीत लिया।

विवरण—यहाँ भी शब्दों के हेर-फेर से सिंह की बात कह कर असल बात शिवाजी को छिपा दिया है, अतः यहाँ छेकापह्नुति अलंकार है।

कैतवापह्नुति

जहँ कैतव, छल, ब्याज, मिस इन सों होत दुराव।
कैतवऽपह्नुति ताहि सों, भूषण कहि सति भाव ॥९५॥

शब्दार्थ—कैतव = छल। सति भाव = सत्य भाव से, वस्तुतः।

अर्थ—जहाँ किसी बात को कैतव, व्याज और मिस आदि शब्दों के द्वारा छिपाया जाय वहाँ भूषण कवि कैतवापह्नुति अलंकार मानते हैं।

विवरण—यह भी अपह्नुति का एक भेद है, पर अपह्नुति के अन्य भेदों में कोई न कोई नकारात्मक शब्द आ कर बात को छिपाने में मदद पहुँचाता है, परन्तु जब ऐसा नकारात्मक शब्द न आवे और 'बहाने से' 'व्याज से' आदि

शब्दों के द्वारा सत्य बात को छिपा कर असत्य की स्थापना की जाती है तब कैतवापह्नुति अलंकार होता है। अतः इस अलंकार में ऐसे शब्दों का आना ज़रूरी है।

उदाहरण—मनहरण कवित्त

साहितनै सरजा खुमान सलहेरि पास,
कीन्हो कुरुखेत खीझि मीर अचलन सों।
भूषन भनत बलि करी है अरीन धर,
धरनी पै डारि नभ प्राण दै दलन सों॥
अमर कै नाम के बहाने गो अमरपुर,
चन्दावत लरि सिवराज के बलन सों।
कालिका प्रसाद के बहाने ते खवायो महि
बाबू उमराव राव पसु के छलन सों॥९६॥

शब्दार्थ—सलहेरि=यह सूरत के पास था। इसे शिवाजी के प्रधान मोरपंत ने १६७१ ई० में जीत लिया था। सन् १६७२ में दिल्ली के सेनापति दिलेरखाँ ने इसे घेरा और यहाँ मराठों और मुगलों में भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें मुगलों को बड़ी हानि पहुँची और उनके मुख्य सेनानायकों में से २२ मारे गये और अनेक बंदी हुए एवं समस्त सेना तितर बितर हो गई। इसीलिए भूषण ने कई स्थानों पर इसका वर्णन किया है। कुरुखेत कीन्हो=कुरुक्षेत्र सा किया, घोर युद्ध किया। बलि करी=बलि दे दी। अरीन धर=शत्रुओं को पकड़ कर। धरनी पै डारि नभ प्रान दै बलन सों=बल से (ज़बर्दस्ती उन शत्रुओं को) पृथ्वी पर पटक कर उनका प्राण आकाश को दे दिया (उन्हें मार डाला)। अमर=अमरसिंह चंदावत, यह भी सलहेरि के युद्ध में मारा गया था। कालिका प्रसाद=काली (देवी) की भेंट।

अर्थ—शाहजी के पुत्र वीरकेसरी चिरंजीव शिवाजी ने अटल (दुर्जय) अमीरों से नाराज़ हो कर सलहेरि के पास कुरुक्षेत्र मचा दिया अर्थात् घमासान युद्ध किया। भूषण कवि कहते हैं कि उन्होंने सारे शत्रुओं को ज़बर्दस्ती पकड़ पकड़ कर उनकी बलि दे दी, (उन्हें) पृथ्वी पर पटक कर उनके प्राण आकाश को दे दिये (उन्हें मार डाला), अमरसिंह चंदावत उनकी सेना से युद्ध कर

अपने नाम (अमर) के बहाने अमरपुर (देवलोक) को चला गया और काली-जी के प्रसाद के बहाने से बाबू, उमराव तथा सरदार रूपी पशुओं को उन्होंने पृथ्वी को खिला दिया।

उत्प्रेक्षा

आन बात को आन में, जहँ संभावन होय।
वस्तु हेतु फल युत कहत, उत्प्रेक्षा है सोय ॥९७॥

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु की संभावना की जाती है, वहाँ वस्तु, हेतु या फलोत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

विवरण—उत्प्रेक्षा (उत् + प्र + ईक्षण) शब्द का अर्थ है "बल-पूर्वक प्रधानता से देखना" अतः इसमें कल्पना शक्ति के ज़ोर से कोई उपमान कल्पित किया जाता है। इसके वाचक शब्द हैं—मनु, जनु, मानो, मानहु आदि।

वस्तूत्प्रेक्षा

उदाहरण—मालती सवैया

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भारयो।
भूषन बाहुबली सरजा तेहि भेंटिबे को निरसंक पधारयो ॥
बीछू के घाय गिरे अफज़ल्लहि ऊपर ही सिवराज निहारयो।
दाबि यों बैठो नरिन्द अरिन्दहि मानो मयन्द गयन्द पछारयो ॥९८॥

शब्दार्थ—दानव = राक्षस (यहाँ अफज़लखाँ से अभिप्राय है)। दीह = दीर्घ, बड़ा। भयारो = भयंकर। भारयो = भरा हुआ। घाय = घाव, ज़ख्म। नरिन्द = (नरेन्द्र) राजा। अरिन्द = प्रबल शत्रु। मयन्द = (मृगेन्द्र) सिंह। गयन्द = (गजेन्द्र) हाथी।

अर्थ—जब बड़े अभिमान में भरा हुआ महाभयंकर दानव (अफजल खाँ) धोखा करके (छल करने की इच्छा से) जावली स्थान पर आया, भूषण कहते हैं कि तब बाहुबली शिवाजी बिना किसी शंका के (बेधड़क) उससे मिलने को गये। (जब उसने धोखे से शिवाजी पर तलवार का वार करना चाहा तो) शिवाजी ने बघनखे के घाव से उसे नीचे गिरा दिया, (और शीघ्र ही) बीछू शस्त्र (बघनखा) के घाव से गिरे हुए अफजलखाँ के ऊपर ही वे दिखाई दिये। राजा शिवाजी अपने शत्रु (अफज़लखाँ) को ऐसे दबा कर बैठे,

मानो किसी सिंह ने हाथी को पछाड़ा हो (और वह उस पर बैठा हो) ।

विवरण—यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है । कवि का तात्पर्य पछाड़े हुए अफजलखाँ पर शिवाजी के बैठने का वर्णन करना है, परन्तु अपनी कल्पना से पाठक का ध्यान बलपूर्वक हाथी पर बैठे हुए सिंह उपमान की ओर ले जाता है जिससे कि पाठक शिवाजी के उस बैठने की शोभा का अनुमान कर सकें ।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सिव साहि निसा मैं निसाँक लियो गढ़सिंह सोहानौ ।
राठिवरो को सँहार भयो लरिकै सरदार गिर्‌यो उदैभानौ ॥
भूषन यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानौ ।
ऊँचै सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ ॥९९

शब्दार्थ—निसाँक = निःशंक । सोहानौ = सुहावना, सुन्दर । राठिवरो = राठौर क्षत्रिय । उदैभानो = उदयभानु, एक वीर राठौर क्षत्रिय जो औरंगज़ेब की ओर से सिंहगढ़ का किलेदार था । लोथिन = लाशों । मसानौ = श्मशान । गढ़सिंह = सिंहगढ़, इस किले का पहला नाम कोंडाना था । सन् १६४७ ई० में शिवाजी ने इसे जीता । जयसिंह से संधि करते समय शिवाजी को यह किला, और बहुत से किलों के साथ, औरंगज़ेब को देना पड़ा । औरंगजेब की कैद से निकल आने के बाद, सन् १६७० में शिवाजी ने तानाजी मालुसुरे को कोंडाना वापिस लेने के लिए भेजा । अँधेरी रात में तानाजी और उसके भाई सूर्याजी ने धावा किया । घमासान युद्ध हुआ । किला शिवाजी के हाथ आया पर वीर तानाजी लड़ते-लड़ते मारा गया । उस पुरुषसिंह की मृत्यु पर शिवाजी ने कहा 'गढ़ आया पर सिंह गया', तभी से इसका नाम सिंहगढ़ पड़ा । इसी घटना का यहाँ वर्णन है ।

अर्थ—शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी ने निःशंक हो (निर्भयता-पूर्वक) सिंहगढ़ को रात में युद्ध करके विजय कर लिया । समस्त राठौर क्षत्रिय (जो किले में थे) मारे गये और लड़ कर राठौर सरदार उदयभानु भी इस युद्ध में गिर गया । भूषण कवि कहते हैं कि ऐसा घमासान युद्ध हुआ मानो पृथ्वी-तल ही लोथों (लाशों) से घिरा हुआ श्मशान हो अर्थात् पृथ्वीतल ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो लोथों से घिरा हुआ श्मशान हो । (उसी समय

अर्धरात्रि को दुर्गविजय की सूचना किले से ६ मील दूर पर बैठे हुए शिवाजी को देने के लिए घुड़सवारों की फूस की झोपड़ियों में आग लगा दी गई ; अतएव) ऊँचे छज्जों पर (विजय-सूचक जलाई गई) आग इस प्रकार उचटी (भड़की) मानो प्रभातकाल की प्रभा (छटा, लाली) फैल गई हो ।

विवरण—यहाँ लाशों से पटे हुए स्थान को श्मशान के समान और ऊँचे छज्जों पर जलाई गई विजयसूचक आग को प्रभात की लालिमा कल्पित किया गया है, अतः वस्तूत्प्रेक्षा है ।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

दुरजन-दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं
उत्तर पहार डरि सिवजी नरिंद तें।
भूषन भनत, बिन भूषन बसन साधे
भूखन पियासन हैं नाहन को निंदते ॥
बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने,
कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिंद तें।
दृग जल कज्जल कलित बढ़्यो कढ़्यो मानो
दूजो सोत तरनि तनूजा कौ कलिंद तें ॥१००॥

शब्दार्थ—दुरजन = खल, नीच, यहाँ मुसलमान शत्रुओं से तात्पर्य है । बेसम्हार = बेशुमार, अनगिनत अथवा बिना सँभाल के (अस्तव्यस्त) । बसन = वस्त्र । साधे = साधन किए हुए, सहते हुए । नाह = पति । अयाने = (अज्ञानी) अबोध । बिलाने = विलीन हो गये, खो गये । अरविंद = कमल । कलिंद = वह पहाड़ जिससे यमुना निकली है, इसी से यमुना को कालिन्दी कहते हैं ।

अर्थ—महाराज शिवाजी के भय से शत्रुओं की अनगिनत (अथवा अस्तव्यस्त हुई) स्त्रियाँ भाग-भाग कर उत्तर दिशा के पहाड़ों पर चढ़ गईं । भूषण कवि कहते हैं कि वे न अपने गहनों-कपड़ों को सम्हालती थीं और न उन्हें भूख प्यास थी (वे भूख प्यास को साधे थीं) और वे अपने अपने पतियों को कोसती जाती थीं (कि उन्होंने नाहक ही शिवाजी से शत्रुता की) । उनके अबोध बच्चे मार्ग ही में (घबराहट के कारण) खो गये और स्वच्छ तथा सुन्दर कमलों से भी कोमल उनके मुख मुरझा गये । उनकी आँखों से निकल

कर कज्जल-मिश्रित आँसू ऐसे बह चले मानो कलिंद पर्वत से यमुना का दूसरा स्रोत निकला हो। (कवियों ने यमुना के जल का रङ्ग काला तथा गंगा-जल का रंग सफेद माना है। आँखों से निकला जल भी काजल से मिला होने के कारण काला है, और स्त्रियाँ पहाड़ पर तो चढ़ी हुई हैं ही। काला जल ऐसे निकलने लगा मानो कलिन्द पहाड़ से यमुना का स्रोत।)

विवरण—यहाँ नेत्रों के काले जल में कालिन्दी के द्वितीय स्रोत की संभावना की गई है अतः वस्तूत्प्रेक्षा है।

चौथा उदाहरण—दोहा

महाराज सिबराज तव, सुघर धवल धुव किति।
छवि छटान सों छुवति-सी, छिति-अंगन दिग-भित्ति ॥१०१॥

शब्दार्थ—धुव = ध्रुव, अचल। किति = कीर्ति, बड़ाई। दिगभित्ति = दिशा-रूपी भीत।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी, तेरी सुन्दर, शुभ्र (सफेद) और निश्चल कीर्त्ति अपनी कान्तिरूपी छटा से पृथ्वी रूपी आँगन और आकाशरूपी दीवारों को मानो छू रही है; पोत रही है। (कई प्रतियों में 'छुवति' के स्थान पर छवति' पाठ है; वहाँ अर्थ इस प्रकार होगा—हे महाराज शिवराज, तेरी सुन्दर शुभ्र और निश्चल कीर्त्ति पृथ्वी रूपी आँगन और दिशा रूपी दीवारों पर अपनी सुन्दरता से छत डाल रही है।)

विवरण—यहाँ शिवाजी के यश को चारों ओर फैलते देख कर यह कल्पना की गई है कि मानो उनका यश पृथ्वी-रूपी आँगन और दिशा रूपी दीवारों पर सफेदी पोत रहा है, अतः वस्तूत्प्रेक्षा है। वस्तूत्प्रेक्षा के दो भेद होते हैं, एक उक्तविषया (जहाँ विषय कह कर फिर कल्पना की जाय) दूसरा अनुक्त-विषया (जहाँ कल्पना का विषय न कहा गया हो)। इस दोहे में अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है, क्योंकि यहाँ (कीर्ति के फैलने का) कथन नहीं किया गया।

हेतूत्प्रेक्षा

उदाहरण—कवित्त मनहरण

लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु,
लूट्यो कारतलबखाँ मानहुँ अमाल है।

भूषन भनत लूट्यो पूना में सइस्तखान,
गढ़न मैं लूट्यो त्यों गढ़ोइन को जाल है॥
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि शिवाजी पै भेजत रिसाल है ॥१०२॥

शब्दार्थ—खानदौरा = दक्षिण का मुगल सूबेदार नौशेरी खाँ, जिसकी खानदौरा उपाधि थी। सफजंग = सफदरजंग नामक दिल्ली का एक सरदार अथवा यह किसी सरदार की उपाधि होगी। फारसी में सफजंग का अर्थ युद्ध की तलवार होता है। कारतलबखाँ = यह शाइस्ताखाँ का सहायक सेनापति था, अंबरखिंडी के पास इसे मराठों ने घेर लिया था, अन्त में बहुत सा धन ले कर इसे जीवनदान दिया था। अमाल = (अरबी अमल) आमिल, अधिकारी, हाकिम। हेरि हेरि = देख देख कर, खोज खोज कर। गढ़ोइन = गढ़पति। रिसाल, खिराज, कर।

अर्थ—शिवाजी ने महाबली खानदौरा और सफदरजंग को लूट लिया। कारतलबखाँ को भी लूटा। भूषन कवि कहते हैं कि पूना में शाइस्ताखाँ को भी लूट लिया और ऐसे ही शत्रुओं के जितने किले थे उनके सब किलेदारों को भी लूट लिया। और सलहेरि के रणस्थल में खोज खोज कर सरदारों को कुचल डाला और चारों ओर से भयंकर सेना से भी सब कुछ छीन लिया। (यह समस्त लूट की सामग्री ऐसी मालूम होती थी) मानो शिवाजी ही शासक हैं और औरंगज़ेब उनसे डर कर अमीर उमरावों के साथ घोड़े और हाथियों का खिराज भेजता है। अर्थात् औरंगजेब अपनी सेना चढ़ाई के लिए नहीं भेजता अपितु शिवाजी को शासक समझ उनके डर से खिराज में भेजता है।

विवरण—जहाँ अहेतु को (अर्थात् जो कारण न हो उसे) हेतु मान कर उत्प्रेक्षा की जाय वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है। यहाँ औरंगज़ेब के बार-बार सेना भेजने का कारण शिवाजी को खिराज भेजना बताया गया है, जो कि असली कारण नहीं है। अतः अहेतु को हेतु मानने से यहाँ हेतु-उत्प्रेक्षा अलंकार है।

फलोत्प्रेक्षा

उदाहरण—मनहरण कवित्त

जाहि पास जात सो तौ राखि न सकत याते,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।
भूषन भनत सिवराज तव कित्ति सम,
और की न कित्ति कहिबे को काँधियतु है॥
इन्द्र कौ अनुज तैं उपेन्द्र अवतार यातैं
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पायतर आय नित निडर बसायबे को
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥१०३॥

शब्दार्थ—नाधियतु = जोड़ते हैं। काँधियतु = ठानते हैं, स्वीकार करते हैं। उपेन्द्र = विष्णु। पायतर = पैरों के तले, चरणाश्रय में। पाग = पगड़ी। कोट = किला।

अर्थ—मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित राजा लोग जिसके पास शरणार्थ जाते हैं वे तो उन्हें अपनी शरण में रख नहीं सकते (उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि वे उनके शत्रुओं से लड़ कर उन्हें बचा सकें) इस हेतु हे शिवाजी, वे (शरणार्थी) आपसे अटल प्रीति जोड़ते हैं। अतएव भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! आपके यश के समान अन्य राजाओं के यश का वर्णन करना स्वीकार नहीं किया जा सकता। आप इन्द्र के छोटे भाई विष्णु के अवतार हैं (हिन्दुओं की रक्षा करने के कारण विष्णु का अवतार कहा है) इसलिए (दुखी) लोग आपके बाहुबल का आश्रय ले अपनी राय निश्चित करते हैं (आगे क्या करना है उसका निश्चय आपके बल पर करते हैं), निडर बसने के लिए शरण आये लोगों के सिर पर आप पगड़ी क्या बाँधते हैं मानो उनके निर्भय हो कर रहने के लिए किले ही बनवा देते हैं।

विवरण—यहाँ पगड़ी बाँधने में किले बनवाने की तथा फल रूप निडर होने की उत्प्रेक्षा की गई है, अतएव यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

६२ शिवराज-भूषण

दूसरा उदाहरण—दोहा

दुवन सदन सबके बदन, 'सिव सिव' आठों याम।
निज बचिबे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम ॥१०४॥

शब्दार्थ—दुवन = शत्रु। बदन = मुख।

अर्थ—शत्रुओं के घरों में सब के मुख से आठों पहर (रात-दिन) 'शिव-शिव' शब्द निकलता है (शिवाजी के भय से शत्रु लोग रात-दिन उनकी चर्चा करते हैं, इसपर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि) मानो तुर्क भी रक्षा के लिए शिव (महादेव) का नाम जपते हैं।

विवरण—हिन्दूशास्त्रानुसार शिव के नाम के जाप से प्राणरक्षा होती है, परन्तु मुसलमानों का शिव के नाम का जाप करना अफल को फल मानना है। साथ ही यहाँ शिवनामोच्चारण भय के कारण है न कि अपनी रक्षा के हेतु, किन्तु इस फल के अर्थ उसका कथन करना ही फलोत्प्रेक्षा है।

गम्योत्प्रेक्षा

मानो इत्यादिक बचन, आवत नहिं जेहि ठौर।
उत्प्रेक्षा गम, गुप्त सो, भूषन भनत अमौर ॥१०५॥

अर्थ—'मानो' 'जनु' इत्यादि उत्प्रेक्षा-वाचक शब्द जहाँ नहीं आते वहाँ भूषण कवि अमूल्य गम्योत्प्रेक्षा या गुप्तोत्प्रेक्षा अलंकार मानते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

देखत ऊँचाई उदरत पाग, सूधी राह
द्योसहू मैं चढ़ैं ते जे साहस निकेत हैं।
सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन,
सलहेरि परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं ॥
सावन भादौं की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि
दुग्ग पर जात मावली दल सचेत हैं।
भूषन भनत ताकी बात मैं बिचारी, तेरे
परताप रवि की उज्यारी गढ़ लेत हैं ॥१०६॥

शब्दार्थ—उदरत = गिरती है। द्योस = दिवस, दिन। परनाला = एक किले का नाम जो आजकल के कोल्हापुर से २२ मील उत्तर पश्चिम की ओर

था; जिसे सन् १६५६ के अन्त में शिवाजी ने अपने अधिकार में कर लिया था। मई १६६० में बीजापुर की ओर से सिद्दी जौहर ने इसे शिवाजी को पकड़ने के विचार से आ घेरा पर वह सफलमनोरथ न हुआ। किला उसे मिल गया, पर शिवाजी वहाँ से निकल चुके थे। इसके बाद शिवाजी की बीजापुर वालों से संधि हो गई, अतः यह किला बीजापुरवालों के हाथ में ही रहा। सन् १६७२ में अली आदिलशाह की मृत्यु हुई। उसके बाद १६७३ में शिवाजी के सेनापति कान्होजी अँधेरी रात में कुल ६० सिपाहियों की सहायता से इस किले पर चढ़ गये। किलेदार भाग गया और यह किला शिवाजी के हाथ में आ गया। कुहू = अमावस्या की रात। मावली = पहाड़ी देश के रहने वाले लोग, जो शिवाजी के पैदल सैनिक थे।

अर्थ—जिन किलों की ऊँचाई देखने में पगड़ी गिर पड़ती है, अर्थात् जो किले इतने ऊँचे हैं कि उनकी चोटी को देखने के लिए सिर इतना पीछे को झुकाना पड़ता है कि पगड़ी गिर पड़ती है और जिन पर दिन में भी सीधी राह से वे ही व्यक्ति चढ़ पाते हैं जो साहसनिकेत (अत्यधिक साहसी) हैं, हे शिवाजी तेरा हुक्म पा कर होशियार मावली सेना पैदल ही सावन और भादों की अमावस्या की घोर अँधेरी रात में उन सलहेरि और परनाले के किलों पर चढ़ जाती है, और उन्हें ऐसे जीत लेती है, मानो वे समतल खेत हों। भूषण कवि कहते हैं कि इतनी आसानी से ऐसी घोर अँधेरी रात्रि में उनके किले पर चढ़ जाने की बात को मैंने सोचा तो जान पाया कि (मानो) तेरे प्रताप-रूपी सूर्य के उजियाले में ही वे किले जीत पाते हैं।

विवरण—यहाँ द्वितीय चरण में तो 'जनु' वाचक आया है परन्तु चौथे चरण में जनु आदि कोई प्रसिद्ध वाचक शब्द नहीं है। अतः गम्योत्प्रेक्षा है। यदि भूषण इस पद में 'बात मैं विचारी' का प्रयोग न करते, जो एक प्रकार का वाचक ही है, तो उदाहरण अधिक उपयुक्त होता।

दूसरा उदाहरण—दोहा

और गढ़ोई नदी नद, सिव गढ़पाल दरयाव।
दौरि दौरि चहुँ ओर ते, मिलत आनि यहि भाव ॥१०७॥

शब्दार्थ—गढ़ोई = छोटे छोटे किलों के स्वामी। गढ़पाल = गढ़पति।

दरयाव = समुद्र।

अर्थ—छोटे छोटे किलेदार शिवाजी की अधीनता सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं और उन से मिल जाते हैं, (इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो) जितने भी छोटे छोटे किलों के स्वामी हैं वे सब नदी-नाले हैं, गढ़पति शिवाजी समुद्र हैं। इसलिए वे छोटे-छोटे किलेदार चारों ओर से दौड़े दौड़े आ कर इस प्रकार शिवाजी से मिलते हैं जैसे नदी नाले समुद्र में गिरते हैं।

विवरण—यहाँ वाचक शब्द 'मानो' नहीं है, अतः गम्योत्प्रेक्षा है।

अतिशयोक्ति

जहाँ किसी की अत्यन्त प्रशंसा के लिए बढ़ा चढ़ा कर लोक सीमा के बाहर की बात कही जाय वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है। अतिशयोक्ति के पाँच मुख्य भेद हैं--रूपकातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, चंचलातिशयोक्ति, अत्यन्तातिशयोक्ति। भाषा-भूषण में सापह्नवातिशयोक्ति और संबंधातिशयोक्ति दो भेद और दिये हैं। कहीं-कहीं इससे अधिक भेद भी मिलते हैं।

१. रूपकातिशयोक्ति

ज्ञान करत उपमेय को, जहँ केवल उपमान।
रूपकातिसय-उक्ति सो, भूषण कहत सुजान ॥१०८॥

अर्थ--जहाँ केवल उपमान ही उपमेय का ज्ञान कराये अर्थात् उपमान ही के कथन से उपमेय जाना जाय वहाँ चतुर लोग रूपकातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

बासव से बिसरत बिक्रम की कहा चली,
बिक्रम लखत बीर बखत-बुलंद के।
जागे तेज बृन्द सिवाजी नरिंद मसनंद,
माल-मकरंद कुलचंद साहिनंद के॥
भूषन भनत देस-देस बैरि-नारिन मैं,
होत अचरज घर घर दुख-दंद के।

कनक-लतानि इंदु, इंदु माहि अरविंद,
झरैं अरबिंदन तें बुन्द मकरंद के ॥१०९॥

शब्दार्थ—वासव = इन्द्र। बिसरत = भूल जाता है। विक्रम = विक्रमादित्य, पराक्रम। मसनन्द = गद्दी। माल मकरन्द = मालोजी। दंद = द्वन्द्व, उपद्रव। इंदु = चन्द्रमा।

अर्थ—सौभाग्यशाली वीर शिवाजी के पराक्रम को देख कर लोग इन्द्र को भी भूल जाते हैं अर्थात् इन्द्र जैसे पराक्रमी की गाथाओं को भी भूल जाते हैं, राजा विक्रमादित्य की तो बात ही क्या है। भूषण कवि कहते हैं कि मालोजी के कुल में चन्द्र-रूप शाहजी के पुत्र, गद्दीस्थित महाराज शिवाजी के तेज-समूह के जागरित होने पर देश-देश के शत्रुओं की स्त्रियों में घर-घर बड़ा दुःख और उपद्रव होता है तथा यह देख कर आश्चर्य होता है कि स्वर्णलता में जो चन्द्रमा है उस चन्द्रमा में कमल हैं और उनमें के पराग की बूँदें गिरती हैं—अर्थात् सोने की लता के समान रंग वाली कामिनियों के मुख रूपी चन्द्रमा के कमल-रूपी नेत्रों से पुष्परस-रूपी आँसू गिरते हैं।

विवरण—यहाँ केवल उपमान कनकलता, इन्दु, अरविन्द और मकरन्द बुन्द ही कथित हैं, उनसे ही क्रमशः स्त्रियों, उनके मुख तथा नेत्र और अश्रु-बूँदों का ज्ञान होता है, अतः रूपकातिशयोक्ति है।

२. भेदकातिशयोक्ति

जेहि थर आनहि भाँति की, बरनत बात कछूक।
भेदकातिसय-उक्ति सो, भूषन कहत अचूक ॥११०॥

शब्दार्थ—थर = स्थल, जगह। अचूक = ठीक, निश्चय ही।

अर्थ—जहाँ किसी अन्य प्रकार का ही कुछ वर्णन किया जाय भूषण कहते हैं वहाँ अवश्य भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

विवरण—इसके वाचक शब्द 'और', 'न्यारी रीति है', 'और ही बात है', 'अनोखी बात है' इत्यादि होते हैं। 'भेदक' का अर्थ 'भेद करने वाला' है। जहाँ यथार्थ में कुछ भेद न होने पर भी भेद कथन किया जाय, वहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल,
भेजत रिसाल चौंर, गढ़, कुही बाज की।
मेवार, ढुँढार, मारवाड़ औ बुँदेलखंड,
झारखंड बाँधौ धनी चाकरी इलाज की।
भूषन जे पूरब पछाँह नरनाह ते वै,
ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की।
जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगजेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की ॥१११॥

शब्दार्थ—श्रीनगर = गढ़वाल की राजधानी। नयपाल = नैपाल। जुमिला = सब कहीं। चौंर = चँवर। कुही = एक शिकारी चिड़िया जो बाज़ से छोटी होती है। मेवार = उदयपुर रियासत। ढुँढार = जयपुर रियासत। मारवाड़ = जोधपुर राज्य। झारखंड = छोटा नागपुर। बाँधौ = बांधव, रीवाँ। धनी = स्वामी। जैतवार = जीतने वाला।

अर्थ—श्रीनगर (गढ़वाल) नैपाल आदि सब देशों के राजा खिराज (कर) स्वरूप में जिसे चँवर, किले, कुही, बाज आदि पक्षी भेजते हैं; उदयपुर, जयपुर, मारवाड़, बुन्देलखंड, झाड़खंड और रीवाँ के राजाओं ने जिसकी नौकरी करना स्वीकार करके ही अपना इलाज (लाभ) समझा है; भूषण कवि कहते हैं कि पूरब और पश्चिम दिशाओं के राजा भी जिस दिल्लीपति औरंगज़ेब की शरण ताकते हैं, संसार को जीतने वाले उस ज़बरदस्त औरंगज़ेब को भी शिवाजी ने जीत लिया। पृथ्वी पर शिवाजी की यह निराली ही रीति दिखाई देती है। जहाँ भारत भर के सब राजा औरंगज़ेब से पनाह माँगते हैं, उसको कर देना स्वीकार करते हैं, वहाँ शिवाजी ही एक ऐसे निराले राजा हैं जिन्होंने उसको जीत लिया है।

विवरण—यहाँ 'न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की' इससे भेदकातिशयोक्ति प्रकट है। यद्यपि और सब राजाओं की तरह शिवाजी भी राजा हैं, परन्तु उनकी रीति हो निराली है, वे लोक से परे हैं; इसमें औरों से शिवाजी का भेद प्रकट किया गया है।

३. अक्रमातिशयोक्ति

जहाँ हेतु अरु काज मिलि, होत एक ही साथ।
अक्रमातिसय-उक्ति सो, कहि भूषन कविनाथ ॥११२॥

अर्थ—जहाँ कारण और कार्य मिल कर एक साथ हों वहाँ कवीश्वर भूषण अक्रमातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। साधारण नियमानुसार कारण पहले और कार्य पीछे होता है, पर जहाँ पर ऐसा अंतर न हो, कारण और कार्य एक साथ हो जायँ वहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार होता है।

विवरण—संग ही, साथ ही, एक साथ अथवा इस प्रकार के अर्थ वाले शब्दों को इस अलंकार का वाचक समझना चाहिए।

उदाहरण—कवित्त-मनहरण

उद्धत अपार तव दुन्दुभी धुकार साथ,
लंघैं पारावार बाल-वृन्द रिपुगन के।
तेरे चतुरंग के तुरंगन के अंग-रज,
साथ ही उड़ात रजपुञ्ज हैं परन के॥
दच्छिन के नाथ सिवराज! तेरे हाथ चढ़ैं,
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के।
भूषन असीसैं, तोहिं करत कसीसैं पुनि,
बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के॥११३॥

शब्दार्थ—उद्धत = उग्र, प्रचंड। धुकार = ध्वनि, आवाज़। पारावार = समुद्र। चतुरंग = चतुरंगिणी सेना जिसमें हाथी घोड़े रथ और पैदल हों। रज = धूल, राज्यश्री। अंग-रज = शरीर की धूल, सुमों की धूल। परन = दूसरों, शत्रुओं। कसीसैं = कशिश करते ही, कर्षण करते ही, खींचते ही।

अर्थ—हे दक्षिण के नाथ, महाराज शिवराज! तुम्हारे नगाड़ों की अति प्रचंड गड़गड़ाहट के साथ शत्रुओं के बाल बच्चे (परिवार) समुद्र को लाँघ जाते हैं अर्थात् इधर चढ़ाई के लिए आपके नगाड़े बजे और उधर मुसलमान अपने बाल-बच्चों को अपने देश में भेजने के लिए समुद्र पार करने लगे। तुम्हारी चतुरंगिणी सेना के घोड़ों के सुमों की धूल के उड़ने के साथ ही शत्रुओं की राज्य-श्री का समूह भी उड़ जाता है अर्थात् ज्यों ही चढ़ाई के लिए

उद्यत तुम्हारी सेना के घोड़ों के सुमों से धूल उड़ती है त्यों ही शत्रुओं के राज्य उड़ जाते हैं और तुम्हारे धनुष चढ़ाने के साथ ही दुर्जनों के किले भी तुम्हारे हाथ में चढ़ जाते हैं। फिर भूषण कवि आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि तुम्हारे धनुष की डोरी खींच कर बाणों के छूटने के साथ ही तुर्कों के प्राण छूट जाते हैं।

विवरण—यहाँ दुन्दुभि का बजना, चतुरंगिणी-सेना का चढ़ाई करना, धनुष चढ़ाना और बाण छूटना आदि कारण और शत्रुओं के कुटुम्ब का समुद्र पार करना, उनकी राज्यश्री का उड़ना उनके किलों का जीता जाना तथा प्राण छूटना रूपी कर्म एक साथ ही कथित हुए हैं, इसलिए यहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलङ्कार है।

चंचलातिशयोक्ति

जहाँ हेतु चरचा हि मैं, काज होत ततकाल।
चंचलातिसय-उक्ति सो, भूषन कहत रसाल ॥११४॥

अर्थ—जहाँ कारण की चर्चा में ही (कहते, सुनते या देखते ही) कार्य हो जाय वहाँ रसिक भूषण चंचलातिशयोक्ति अलङ्कार कहते हैं।

विवरण—कहते ही, सुनते ही, चर्चा चलते ही, आदि शब्द इसके वाचक होते हैं। जैसे चंचला (बिजली) चमकते ही एक दम दिखती है इसी प्रकार कारण की चर्चा होते ही जहाँ कार्य होता दिखाई दे वहाँ यह अलङ्कार होता है।

उदाहरण—दोहा

'आयो आयो' सुनत ही सिव सरजा तुव नाँव।
वैरि नारि दृग-जलन-सों बूड़ि जाति अरि-गाँव ॥११५॥

शब्दार्थ—नाँव = नाम। बूड़ि जात = डूब जाते हैं।

अर्थ—'शिवाजी आया' 'शिवाजी आया' इस प्रकार आपका नाम सुनते ही, हे वीर-केसरी शिवाजी, शत्रुओं की स्त्रियों के अश्रुजल से वैरियों के गाँव के गाँव डूब जाते हैं अर्थात् चारों ओर गाँवों में इतना रोना शुरू हो जाता है कि अश्रुजल में गाँव ही बह जाता है।

विवरण—अक्रमातिशयोक्ति में कारण और कार्य एक साथ होते हैं, पर यहाँ कारण की चर्चा होते ही कार्य हो जाता है। शिवाजी गाँव में नहीं

आये, केवल उनके आने की चर्चा ही हुई है कि स्त्रियों का रोना-धोना प्रारम्भ हो गया।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

गढ़नेर गढ़चाँदा भागनेर बीजापुर,
नृपन की नारी रोय हाथन मलति हैं।
करनाट, हबस, फिरंगहू बिलायती,
बलख रूम अरि-तिय छतियाँ दलति हैं॥
भूषन भनत सहितनै सिवराज एते,
मान तव धाक आगे दिसा उबलति हैं।
तेरी चमू चलिबे की चरचा चले तें, चक्र-
वर्तिन की चतुरंग चमू बिचलति हैं॥११६॥

शब्दार्थ—गढ़नेर = खानदेश में एक गढ़। चाँदा = मध्य देश के दक्षिण में एक प्रान्त तथा एक नगर है, यह नागपुर के दक्षिण में है। भागनेर = भाग नगर, आधुनिक हैदराबाद; गोलकुंडा वाले मुहम्मद कुतबुल्मुल्क ने अपनी प्यारी पत्नी भागमती के नाम पर गोलकुण्डा से ४ मील पर बसाया था। करनाट = कर्नाटक। फिरंग = पुर्तगाल निवासी फिरंगियों की बस्ती। हबस = हबशियों का स्थान, एबीसिनिया के लोगों की बस्ती। १६वीं शताब्दी से एबीसीनिया के लोग भारत के पश्चिमी घाट पर जंजीरा द्वीप में बस गये थे। वे सीदी कहाते थे। उनसे शिवाजी के कई युद्ध हुए थे। विलायत = विदेशी राज्य, मुसलमानी देश, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, फारस आदि। बलख = तुर्किस्तान का एक प्रसिद्ध नगर। रूम = तुर्की, टर्की। उबलति है = खौलती है।

अर्थ—गढ़नेर, चाँदागढ़, भागनगर और बीजापुर के राजाओं की स्त्रियाँ रो-रो कर हाथों को मलती हैं (पछताती हैं)। कर्नाटक, एबीसीनियनों की बस्ती, फिरंगदेश, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, बलोचिस्तान, बलख और रूम देश के शत्रुओं की स्त्रियाँ भी शोक से अपनी छाती पीटती हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! आपकी धाक का इतना प्रबल प्रभाव है कि उसके आगे दिशाएँ खौलने लगती हैं और आपकी सेना के चलने की बात सुनते ही बड़े-बड़े बादशाहों की चतुरंगिणी सेना के भी पैर उखड़ जाते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी की सेना के चलने रूप कारण की चर्चामात्र से शाहों की सेना का तितर-बितर होना रूप कार्य कथन किया गया है।

अत्यन्तातिशयोक्ति

जहाँ हेतु ते प्रथम ही, प्रगट होत है काज।
अत्यन्तातिसयोक्ति सो, कहि भूषन कविराज ॥११७॥

अर्थ—जहाँ कारण से पहले ही कार्य हो जाय वहाँ कविराज भूषण अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।

विवरण—कहीं कहीं इसके वाचक 'प्रथम ही', 'पूर्व ही' आदि शब्द होते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहि,
कामधेनु कामतरु सो गनाइयतु है।
याते तेरे गुन सब गाय को सकत कवि,
बुद्धि अनुसार कछु तऊ गाइयतु है॥
भूषन भनत साहितनै सिवराज, निज
बखत बढ़ाय वीर तोहि ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि, दीह-
दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है ॥११८॥

शब्दार्थ—मंगन = माँगने वाला, भिक्षुक। कामतरु = कल्पवृक्ष। बखत बढ़ाय = सौभाग्य बढ़ा कर। बिडारि = दूर करके, दूर फैंक कर। दीह = दीर्घ, भारी।

अर्थ—हे शिवाजी! कवि लोग तुम्हें कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान (इच्छित फल देनेवाले) गिनाते (वर्णन करते) हैं, परन्तु तुम भिक्षुकों के (मन में) माँगने की इच्छा होने के पूर्व ही देनेवाले हो इसलिए तुम्हारे समस्त गुणों का वर्णन कौन कर सकता है! अर्थात् कोई नहीं कर सकता (क्योंकि कामधेनु और कल्पवृक्ष मनोरथ पैदा होने पर ही वांछित वस्तु देते हैं, किन्तु तुम तो इच्छा करने से भी पहले दे देते हो।) फिर भी कवि लोग अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे कुछ गुण गाते हैं—वे तुम्हारी उपमा कामधेनु आदि से

देते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! लोग अपना भाग्य बड़ा करके (भाग्यशाली हो कर) ही तुम्हारा ध्यान करते हैं अर्थात् तुम्हारा ध्यान करने से पहले ही वे भाग्यवान हो जाते हैं। समस्त दीन जन (गरीब मनुष्य) अपनी दीनता दूर कर पराधीनता को नष्ट कर और भयंकर दरिद्रता को मार कर फिर तुम्हारे दरवाजे पर आते हैं अर्थात् तुम्हारे द्वार पर आने से पहले ही उनकी दीनता, अधीनता और गरीबी नष्ट हो जाती है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के निकट आ कर दान लेना रूपी कारण है परन्तु इससे प्रथम ही याचकों का धनाढ्य हो जाना रूपी कार्य कथन किया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

कवि-तरुवर सिव-सुजस-रस, सींचे अचरज-मूल।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल ॥११९॥

शब्दार्थ—तरुवर = सुन्दर वृक्ष। रस = जल। अचरज मूल = आश्चर्य रूपी जड़, अद्‌भुत जड़। सफल होना = फलीभूत होना, फल लगना। फूल = प्रसन्नता, पुष्प।

अर्थ—शिवाजी के सुन्दर यश-रूपी जल से कविरूपी वृक्ष की चमत्कार-पूर्ण जड़ के सींचे जाने से यह वृक्ष पहले सफल (फल युक्त या सफल मनोरथ) होता है, पीछे इसमें फूल लगते हैं (प्रसन्नता होती है)। अर्थात् कवि लोग धन पा कर पहले सफल मनोरथ होते हैं और तदनन्तर प्रसन्न।

विवरण—प्रायः फूल पहले लगते हैं, और फिर फल लगते हैं; फूल कारण है फल कार्य; पर यहाँ फल लगने का कार्य पहले होता है और कारण-स्वरूप फूल पीछे होते हैं, अतः अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार है।

सामान्य-विशेष

कहिबे जहँ सामान्य है, कहै जु तहाँ बिसेष।
सो सामान्य-बिसेष है, बरनत सुकबि असेष ॥१२०॥

शब्दार्थ—सामान्य—सब पर घटने वाली बात। विसेष = किसी विशेष वस्तु पर घटने वाली बात। असेष = समस्त।

अर्थ—जहाँ सामान्य रूप से कोई बात कहनी हो वहाँ उसे विशेष रूप

से कहा जाय तो श्रेष्ठ कवि सामान्य-विशेष अलंकार कहते हैं।

विवरण—भूषण का यह सामान्य-विशेष अलंकार प्रचीन आचार्यों ने कोई स्वतंत्र अलंकार नहीं माना है। यह तो "अप्रस्तुत प्रशंसा" अलंकार का एक भेद 'विशेष निबंधना' कहा जा सकता है। इसमें सामान्य घटना को लक्ष्य करने के लिए विशेष घटना का वर्णन किया जाता है।

उदाहरण—दोहा

और नृपति भूषन कहै, करैं न सुगमौं काज।
साहि तनै सिव सुजस तो, करै कठिनऊ आज ॥१२१॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अन्य राजा लोग साधारण सा काम भी नहीं कर पाते, किन्तु हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! आपका यश तो आज कठिन से कठिन कार्य कर डालता है।

विवरण—"बड़े पुरुषों के यश से ही कठिन से कठिन कार्य हो जाते हैं" इस सामान्य बात के लिए यहाँ शिवाजी की विशेष घटना का वर्णन किया गया है तथा अन्य राजाओं की दुर्बलता दिखा कर शिवाजी के पराक्रम को विशेष रूप दिया गया है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

जीत लई वसुधा सिगरी घमसान घमंड कै बीरन हू की,
भूषन भौंसिला छीनि लई जगती उमराव अमीरन हू की।
साहितनै सिवराज की धाकनि छूट गई धृति धीरन हू की,
मीरन के उर पीर बढ़ी यों जु भूलि गई सुधि पीरन हू की ॥१२२॥

शब्दार्थ—सिगरी = समस्त। घमसान = घोर युद्ध। जगती = पृथ्वी। धृति = धैर्य। पीर = कष्ट, मुसलमानों के गुरु। मीर = सरदार, प्रधान, सैयद जाति के मुसलमानों को भी 'मीर' कहा जाता है।

अर्थ—घोर युद्ध करके शिवाजी भौंसिला ने बड़े-बड़े वीर शत्रुओं की समस्त पृथ्वी को जीत लिया। भूषण कहते हैं कि उन्होंने अमीर-उमरावों की जमीनों को भी छीन लिया (छोड़ा नहीं)। शाहजी के पुत्र शिवाजी की धाक से बड़े-बड़े धैर्यवानों का भी धीरज जाता रहा और मीरों के हृदयों में ऐसी पीड़ा बढ़ी कि वे अपने पीर (पैगंबरों) की भी सुध भूल गये।

विवरण—साधारणतया देखा जाता है कि जब किसी की पृथ्वी छिन जाती है तो उसके होश-हवास भी जाते रहते हैं। यहाँ इस सामान्य बात को प्रकट करने के लिए शिवाजी के कार्यों (विशेष) का वर्णन किया गया है।

तुल्ययोगिता

तुल्ययोगिता तहँ धरम, जहँ बरन्यन को एक।
कहूँ अबरन्यन को कहत, भूषन बरनि बिबेक ॥१२३॥

शब्दार्थ—बरन्यन = उपमेयों का। अबरन्यन = उपमानों का। तुल्ययोगिता = धर्म की एकता।

अर्थ—जहाँ बहुत से उपमेयों का धर्म एक ही कहा जाय अथवा बहुत से उपमानों का एक ही धर्म वर्णन किया जाय वहाँ बुद्धिमान तुल्ययोगिता अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चढ़त तुरंग चतुरंग साजि सिवराज,
चढ़त प्रताप दिन-दिन अति अंग मैं।
भूषन चढ़त मरहट्टन के चित्त चाव,
खग्ग खुलि चढ़त है अरिन के अंग मैं॥
भौंसिला के हाथ गढ़ कोट हैं चढ़त, अरि
जोट है चढ़त एक मेरु गिरि-शृङ्ग मैं।
तुरकान गन ब्योम-यान हैं चढ़त बिनु
मान, है चढ़त बदरंग अवरंग मैं ॥१२४॥

शब्दार्थ—जोट = जत्थे, समूह। शृंग = चोटी। व्योमयान = विमान, अरथी। बिनु मान = मानरहित। बदरंग = बुरा रंग, फीका रंग।

अर्थ—जब शिवाजी अपनी चतुरंगिणी सेना सजा कर घोड़े पर चढ़ते हैं तब उनके अंग अंग में दिन प्रतिदिन तेज चढ़ता (बढ़ता) है, मराठों के चित्त में जोश (युद्ध का उत्साह) चढ़ता है और तलवारें खुल कर बेरोक-टोक शत्रुओं के शरीर में चढ़ती (घुसती) हैं। शिवाजी के हाथ में किले चढ़ते (आते) हैं और शत्रुओं के समूह मेरु पहाड़ की चोटियों (शृंगों) पर चढ़ते (भाग जाते) हैं। मानरहित हो कर तुर्क लोग विमान (अरथी) में चढ़ते हैं

(मर जाते हैं) और औरंगजेब पर बदरंगी चढ़ जाती है, उसका रंग फीका पड़ जाता है।

विवरण—यहाँ सिवराज, प्रताप, चाव, खग्ग, गढ़कोट, अरिजोट तुरकानगन और बदरंग आदि उपमेयों (प्रस्तुतों, वर्ण्य वस्तुओं) का 'चढ़त' एक ही धर्म कथित हुआ है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सिव सरजा भारी भुजन, भुव-भरु धर्‍यो सभाग।
भूषण अब निहचिन्त हैं, सेसनाग दिगनाग ॥१२५॥

शब्दार्थ—भरु = भार, बोझ।

अर्थ—सौभाग्यशाली शिवाजी ने अपनी बलवती भुजाओं पर पृथ्वी का भार धारण कर लिया है। भूषण कहते हैं इसी कारण अब शेषनाग और दिशाओं के हाथी निश्चिन्त हो गये हैं। (हिन्दुओं का विश्वास है कि पृथ्वी को शेषनाग और दिग्गज थामे हुए हैं)।

विवरण—यहाँ शेषनाग और दिगनाग शिवाजी की भुजाओं के उपमान हैं। उन दोनों का "निहचिन्त हैं" यह एक धर्म बताया गया है।

द्वितीय तुल्ययोगिता

हित अनहित को एक सो, जहँ बरनत ब्यवहार।
तुल्यजोगिता और सो, भूषन ग्रन्थ विचार ॥१२६॥

अर्थ—जहाँ हित (मित्र) और अनहित (शत्रु) परस्पर दोनों विरोधियों से समान व्यवहार कथन किया जाय वहाँ भी ग्रन्थ के विचारानुसार तुल्योगिता अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

गुननि सों इनहूँ को बाँधि लाइयतु पुनि,
गुनन सों उनहूँ को बाँधि लाइयतु है।
पाय गहे इनहूँ को रोज ध्याइयतु अरु,
पाय गहे उनहूँ को रोज ध्याइतु है॥
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
रस रोस एक भाँति ही को पाइयतु है।

दोहा ई कहे तें कविलोग ज्याइयतु अरु,
दोहाई कहे ते अरि लोग ज्याइयतु है ॥१२७॥

शब्दार्थ—गुन = गुण तथा रस्सी। पाय गहै = पैर छू कर, और पा कर तथा पकड़ कर (कैद कर)। ध्याइयतु = ध्यान करते हो तथा धर लाते हो। रस = स्नेह, प्रेम। रोस = रोष, क्रोध। दोहा ई = दोहा ही। ज्याइतु = पोषण करते हो, जिलाते हो।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! तुम्हारा कवियों के प्रति प्रेम और (शत्रुओं के प्रति) क्रोध एक सा ही है, क्योंकि तुम अपने गुणों से कवियों को बाँधते हो (मोहित करते हो) और अपने गुण (रस्सी) से ही शत्रुओं को भी बाँध लेते हो। तुम चरण छू कर (कवियों) का नित्य ध्यान करते हो तो शत्रुओं को पा कर और पकड़ कर धर लाते हो। दोहा के ही कहने पर कविजनों की पालना करते हो, और उसी भाँति 'दोहाई' कहने पर शत्रुओं को अभयदान करते हो, उनके प्राण बचा लेते हो।

विवरण—इस पद में शब्द छल से हित और अनहित दोनों से एक सा व्यवहार बताया गया है, अतः दूसरी तुल्ययोगिता है।

दीपक

बर्न्य अबर्न्यन को धरम, जहँ बरनत हैं एक।
दीपक ताको कहत हैं, भूषन सुकवि विवेक ॥१२८॥

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म वर्णन किया जाय वहाँ सुकवि भूषण दीपक अलंकार कहते हैं।

विवरण—तुल्ययोगिता में केवल उपमेयों का वा केवल उपमानों का एकधर्म कथन किया जाता है, पर 'दीपक' में उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म कहा जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

कामिनी कंत सों जामिनी चंद सों दामिनि पावस मेघ घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों प्रीति बड़ी सनमान-महा सों ॥
'भूषन' भूषन सों तरुनी नलिनी नव पूषनदेव-प्रभा सों।
ज़ाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुबान खुमान सिवा सों ॥१२९॥

शब्दार्थ—कंत = पति । जामिनी = रात्रि । सूरति = स्वरूप, शक्ल । नलिनी = कमलिनी । पूषनदेव = पूषन + देव = सूर्य ।

अर्थ—जिस प्रकार अपने पति से स्त्री, चन्द्रमा से रात्रि, वर्षाकाल की मेघघटा से बिजली, दान से कीर्ति, ज्ञान से सूरत (स्वरूप), अत्यधिक सम्मान से प्रीति, आभूषणों से युवती और बाल सूर्य से कमलिनी शोभा पाती है, वैसे ही चिरंजीव शिवाजी से सारी हिन्दू जाति शोभायमान है, यह बात समस्त संसार में प्रसिद्ध है ।

विवरण—यहाँ 'खुमान सिवा सो' उपमेय और 'कामिनी कंत सों' आदि उपमानों का 'लसै' यह एक ही धर्म कथित हुआ है, अतः दीपक अलंकार है।

दीपकावृत्ति

दीपक पद के अरथ जहँ, फिर फिर करत बखान ।
आवृति दीपक तहँ कहत, भूषन सुकवि सुजान ॥१३०॥

अर्थ—जहाँ बार बार एक ही अर्थ वाले (क्रिया) पदों की आवृत्ति हो वहाँ चतुर कवि दीपकावृत्ति अलंकार कहते हैं ।

विवरण—आवृत्ति दीपक के तीन भेद हैं:—(१) पदावृत्ति दीपक (जिस में एक क्रियापद कई बार आये पर अर्थ भिन्न हो) (२) अर्थावृत्ति दीपक (जिसमें एक ही अर्थ वाले भिन्न-भिन्न क्रियापद आवें) (३) पदार्थावृत्ति दीपक (जिसमें एक ही क्रियापद उसी अर्थ में एक से अधिक बार आवे)। भूषण ने इन तीनों में से अर्थावृत्ति दीपक और पदार्थावृत्ति दीपक के उदाहरण दिये हैं ।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा तव दान को, करि को सकत बखान ।
बढ़त नदीगन दान जल, उमड़त नद गजदान ॥१३१॥

शब्दार्थ—दान = पुण्यार्थ धन देना, हाथी का मद-जल जो उसकी कनपटी के पास से झरता है । नद = बड़ी नदी ।

अर्थ—हे वीर-केसरी शिवाजी ! आपके दान की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ? क्योंकि (आप इतना दान देते हैं कि) आपके दान के संकल्प-जल से नदियों में बाढ़ आ जाती है और दान में दिये हुए हाथियों के

मद-जल से बड़े-बड़े नद उमड़ उठते हैं।

विवरण—यहाँ 'बढ़त' और 'उमड़त' पृथक् पृथक् (क्रिया) पद होने पर भी इनका एक ही अर्थ में दो बार कथन हुआ है (इन दोनों क्रियाओं का अर्थ एक ही है) अतः अर्थावृत्ति दीपक है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

चक्रवती चकवा चतुरंगिनि, चारिउ चाप लई दिसि चंका।
भूप दरीन दुरे भनि भूषन एक अनेकन बारिधि नंका॥
औरँगसाहि सों साहि को नन्द लरो सिबसाह बजाय कै डंका।
सिंह की सिंह चपेट सहै गजराज सहै गजराज को धंका॥१३२॥

शब्दार्थ—चाप लई = दबा ली। चंका = (चक्र) दिशा। दिसि चंका = चारों ओर से। दरीन = गुफाओं में। नंका = नाँघा, उल्लङ्घन किया, पार किया।

अर्थ—चक्रवर्ती औरंगजेब की चतुरंगिणी सेना ने चारों ओर से पृथ्वी को दबा लिया (अपने अधीन कर लिया)। भूषण कवि कहते हैं कि बहुत से राजा तो उसके डर के कारण गुफाओं में छिप गये और कितने ही समुद्र पार करके चले गये। ऐसे (दबदबे वाले) बादशाह औरंगजेब से शाहजी के पुत्र शिवाजी ने ही डङ्का बजा कर (खुल्लमखुल्ला) लड़ाई की। सच है सिंह का थप्पड़ सिंह ही सहता है और हाथी का धक्का हाथी ही सह सकता है।

विवरण—यहाँ 'सहै' क्रिया पद दो बार एक ही अर्थ में आया है, अतः पदार्थावृत्ति दीपक है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

अटल रहे हैं दिग अंतन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि कै।
राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि भूषन भनत गुन भरि कै॥
हाड़ा रायठौर कछवाहे गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चँवारू धरि डरि कै।

अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि,
धीर धरि, ऐंड धरि, तेग धरि, गढ़ धरि कै ॥१३३॥

शब्दार्थ—दिग अंतन = दिशाओं के छोर तक, सारा संसार। रैयति = प्रजा। पेस करि = पेश करके, भेंट कर के। बाना = वेश। हाड़ा = हाड़ा क्षत्रिय बूँदी और कोटा में राज करते थे। रायठौर = जोधपुर के राजा। कछवाहे = जयपुर के राजा। गौर = गौर राजाओं की रियासत राजपूताने में थी, पृथ्वीराज के समय में गौरों का अच्छा मान था। चँवारू = चँवर।

अर्थ—समस्त दिशाओं के राजा लोग प्रजा का रूप धारण कर अर्थात् औरंगज़ेब की अधीनता स्वीकार कर तथा अपने अपने देश उसे भेंट कर के निश्चिन्त हो गये। भूषण कवि कहते हैं कि उदयपुर के महाराणा भी अपने वीरता के वेश (परंपरागत हठ) को छोड़ कर तथा औरंगज़ेब का गुन-गान कर और नौकरी का बहाना कर बेफिक्र हो गये। हाड़ा (कोटा बूँदी के राजा), राठौर (जोधपुर के महाराजा), कछवाहे (जयपुर के महाराजा) और गौर वंशीय क्षत्रिय भी (औरंगज़ेब से) डर कर चँवर डुलाने वाले बन कर निश्चिन्त हो गये। परन्तु एक शिवाजी ही ऐसे हैं जो अपनी तलवार और किलों को रखते हुए दिल्ली को ठुकरा कर, धैर्य धारण कर अपने मान की रक्षा करते हुए निश्चिन्त रहे। जहाँ और राजा औरङ्गज़ेब की अधीनता स्वीकार कर अटल रह सके वहाँ शिवाजी अपनी तलवार और किलों के बल पर अटल रहे।

विवरण—यहाँ 'अटल रहे' और 'धरि' क्रिया-पदों की क्रमशः एक ही अर्थ में कई बार आवृत्ति हुई है अतः पदार्थावृत्ति दीपक है।

प्रतिवस्तूपमा

वाक्यन को जुग होत जहँ, एकै अरथ समान।
जुदो-जुदो करि भाषिए, प्रतिवस्तूपम जान ॥१३४॥

शब्दार्थ—जुग = युग, दो (उपमेय उपमान ये दो वाक्य)।

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान इन दो वाक्यों का पृथक्-पृथक् शब्दों से एक ही धर्म कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार जानना चाहिए।

उदाहरण—लीलावती*

मद्जल धरन द्विरद बल राजत,
बहु जल धरन जलद छवि साजै।
पुहुमि धरन फनिनाथ लसत अति,
तेज धरन ग्रीषम रवि छाजै॥
खरग धरन सोभा भट राजत
रुचि भूषन गुन धरन समाजै।
दिल्लि दलन दक्खिन दिसि थम्भन,
ऐंड़ धरन सिवराज विराजै॥१३५॥

शब्दार्थ—थम्भन=स्तम्भन, रोकने वाले, रक्षक। ऐंड़ धरन= स्वाभिमान धारण करने वाले।

अर्थ—मदजल धारण करने से ही (मदमस्त होने पर ही) हाथी का बल शोभित होता है, खूब जल धारण करने से ही बादल की शोभा है। पृथ्वी को धारण करने से ही शेषनाग अत्यन्त शोभित होता है और अत्यधिक तेज-युक्त होने पर ही ग्रीष्म का सूर्य शोभा देता है। तलवार धारण करने से ही वीर पुरुष सुन्दर लगते हैं और गुण धारण करने के कारण ही, अर्थात् गुणी होने से ही भूषण कवि समाज में शोभा पाता है। अथवा भूषण कवि कहते हैं कि तलवार धारण करने से ही योद्धा की शोभा है तथा गुण को धारण करने से ही (मनुष्य) समाज में शोभा पाता है। एवं दिल्ली का दलन करने से और दक्षिण दिशा के रक्षक होने से तथा स्वाभिमान धारण करने से ही महाराज शिवाजी शोभा पाते हैं।

विवरण—इस में प्रथम तीन चरण उपमान वाक्य हैं और चतुर्थ चरण उपमेय वाक्य है। उपमान वाक्यों के 'राजत' 'साजै' और 'छाजै शब्द तथा उपमेय वाक्य का 'विराजै' शब्द एक ही धर्म के द्योतक हैं।

---

* लीलावती छंद का लक्षण इस प्रकार है।
लघु गुरु का जहँ नेम नहिं बत्तिस कल सब जान।
तरल तुरंगम चाल सो लीलावती बखान॥

८० शिवराज-भूषण

दृष्टान्त

जुग वाक्यन को अरथ जहँ प्रतिबिम्बित सो होत।
तहाँ कहत दृष्टान्त हैं, भूषन सुमति उदोत ॥१३६॥

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों का (साधारण) धर्म बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से हो वहाँ विद्वान दृष्टान्त अलंकार कहते हैं।

विवरण—इसमें उपमेय और उपमान वाक्यों में समता सी जान पड़ती है किन्तु वाचक पद नहीं होता। प्रतिवस्तूपमा में केवल साधारण धर्म का वस्तु-प्रतिवस्तु भाव होता है अर्थात् एक ही धर्म शब्द-भेद से दोनों में होता है। किन्तु जहाँ उपमेय उपमान और साधारण धर्म तीनों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहता है अर्थात् दोनों वाक्यों में धर्म भिन्न भिन्न होने पर भी जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब दीखता है इसी प्रकार साधारण धर्म सहित उपमेय वाक्य का उपमान वाक्य में छाया (प्रतिबिम्ब) भाव होता है।

उदाहरण—दोहा

सिव औरंगहि जिति सकै, और न राजा राव।
हत्थि मत्थ पर सिंह बिनु, आन न घालै घाव ॥१३७॥

शब्दार्थ—घालै घाव = ज़खम करता, चोट करता।

अर्थ—औरंगज़ेब को शिवाजी ही जीत सकते हैं अन्य राजा राव लोग नहीं जीत सकते, हाथी के मस्तक पर सिंह के बिना अन्य कोई (वन्य पशु) चोट नहीं कर सकता।

विवरण—यहाँ पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य है और उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य। 'जिति सकै' और 'घालै घाव' ये दोनों पृथक् पृथक् धर्म हैं परन्तु बिना वाचक शब्द के ही इन दोनों की समता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव झलकता है। 'प्रतिवस्तूपमा' में शब्द-भेद से एक ही धर्म कथन किया जाता है, अतः उससे इसमें भेद स्पष्ट है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

देत तुरीगन गीत सुने बिनु देत करीगन गीत सुनाए।
भूषन भावत भूप न आन जहान खुमान की कीरति गाए ॥

मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन ऋतैं बरसे सरसैं, उमड़ैं नदियाँ ऋतु पावस पाए ॥१३८॥

शब्दार्थ—तुरीगन = तुरंग + गन, घोड़ों का समूह। भुवपाल = राजा। निहाल = संतुष्ट, मालामाल। सरसैं = बढ़ जाती हैं।

अर्थ—शिवाजी (अपने यश के) गीत बिना सुने ही कवियों को घोड़ों के समूह दे देते हैं और गीत सुनाने पर हाथियों का समूह दे डालते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि चिरजीवी शिवाजी का यशोगान करने पर दुनियाँ में अन्य कोई राजा अच्छा नहीं लगता। याचना के लिए (याचकों को) और बहुत से राजा हैं परन्तु प्रसन्न किये जाने पर शिवाजी ही उन्हें (कवियों को) निहाल करते हैं, जैसे अन्य ऋतुओं में वर्षा होने पर नदियाँ सरस (जलयुक्त) तो हो जाती हैं, पर उमड़ती हैं वे वर्षाऋतु आने पर ही। अर्थात् जैसे अन्य ऋतुओं में वर्षा होने पर नदियों का जल थोड़ा बहुत अवश्य बढ़ जाता है, पर वे उमड़ती हैं वर्षा ऋतु के आने पर ही, ऐसे ही अन्य राजाओं से थोड़ा बहुत अवश्य मिल जाता है, पर याचकों को निहाल तो केवल शिवाजी ही करते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी का 'निहाल करना' और 'नदियों का उमड़ना' में भी दो भिन्न अर्थवाली किन्तु समान सी जान पड़ती हुई वस्तुओं की एकता दो वाक्यों के द्वारा की गई है इसी से यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

पहली निदर्शना

सदृस वाक्य जुग अरथ को, करिए एक अरोप।
भूषन ताहि निदर्सना, कहत बुद्धि दै ओप ॥१३९॥

अर्थ—जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में भेद होने पर भी समता का ऐसा आरोप किया जाय कि जिसमें दोनों एक जान पड़ें वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।

विवरण—दृष्टान्त और निदर्शना में यह भेद है कि दृष्टान्त में वाचक पद नहीं होता, निदर्शना में होता है। इसके अतिरिक्त दृष्टान्त में यद्यपि दो वाक्यों के धर्म अलग-अलग होते हैं फिर भी उनमें समानता की झलक दिखाई देती है, इससे उनकी एकता स्वाभाविक सी जान पड़ती है। निदर्शना में दोनों का संबंध असंभव होता है, जो मजबूरी से मानना पड़ता है। प्रतिवस्तूपमा

और निदशना में यह भेद है कि प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं, पर निदर्शना में स्वतंत्र नहीं होते।

उदाहरण—मालती सवैया

मच्छहु कच्छ मैं कोल नृसिंह मैं बावन मैं भनि भूषन जो है।
जो द्विजराम मैं जो रघुराज मैं जोऽब कह्यो बलरामहु को है॥
बौद्ध मैं जो अरु जो कलकी महँ बिक्रम हूबे को आगे सुनो है।
साहस-भूमि-अधार सोई अब श्रीसरजा सिवराज में सोहै॥१४०॥

शब्दार्थ—मच्छ = मत्स्य, यहाँ मत्स्यावतार से तात्पर्य है। कच्छ = कच्छपावतार। कोल = वराहावतार। नृसिंह = वह अवतार जिसमें भगवान ने हिरण्यकशिपु दैत्य को मारा था और भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी। बावन = वामन, वह अवतार जिसमें भगवान् ने बलि को छला था। बौद्ध = बुद्ध भगवान। रघुराज = श्री रामचन्द्र भगवान्। द्विजराम = परशुराम जी। बलराम = श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता। कलकी = इस नाम का अवतार आगे होने वाला है।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जो पराक्रम मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलदेव और बुद्धावतार में था और जो (पराक्रम) अब आगे होने वाले कल्कि अवतार में होना सुनते हैं, वही भूमि का आधार रूप (पृथ्वी का सँभालने वाला) साहस अब श्री शिवराज में शोभित है।

विवरण—यहाँ उपर्युक्त अवतारों में और शिवाजी में भेद होने पर भी समता का आरोप किया गया है। यह उदाहरण कुछ अच्छा नहीं है, इस में दोनों वाक्यों में असमता नहीं है। जैसा पराक्रम मत्स्यादि अवतारों में है वैसा ही शिवाजी में साहस है, यहाँ उपमा की झलक है। परन्तु निदर्शना में जो सो, जे, आदि पदों द्वारा असम वाक्यों को सम किया जाता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

कीरति सहित जो प्रताप सरजा में बर,
मारतंड मध्य तेज चाँदनी सो जानी मैं।
सोहत उदारता औ सीलता खुमान मैं सो,
कंचन मैं मृदुता सुगंधता बखानी मैं॥

भूषन कहत सब हिन्दुन को भाग फिरै,
चढ़े ते कुमति चकताहू की पिसानी मैं।
सोहत सुबेस दान कीरिति सिवा मैं सोई,
निरखी अनूप रुचि मोतिन के पानी मैं ॥१४१॥

शब्दार्थ—तेज चाँदनी = तेज-युक्त प्रकाश, यहाँ चाँदनी का लक्ष्यार्थ प्रकाश है, चन्द्रमा की चाँदनी नहीं। पिसानी = पेशानी, मस्तक।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि वीर-केसरी शिवाजी में जो कीर्ति-सहित प्रताप है, उसे मैं सूर्य में तेजयुक्त प्रकाश मानता हूँ। उस चिरजीवी में जो उदारता और सुशीलता शोभित है उसे मैं सोने में कोमलता और सुगन्धि कहता हूँ। भूषण कहते हैं कि औरंगजेब के मस्तक में कुबुद्धि (हिन्दुओं पर अत्याचार करने का कुविचार) पैदा होने से ही हिन्दुओं का भाग्य फिरा (भाग्योदय हुआ, क्योंकि औरंगज़ेब के अत्याचारों से तंग होने से हिन्दुओं में जाग्रति होगी जिससे उनका भाग्य फिरेगा)। शिवाजी में जो सुन्दर दान की कीर्ति है वही सुन्दरता मैंने अनुपम मोतियों की आब (चमक) में देखी है।

विवरण—ऊपर के वाक्यों के अर्थ में विभिन्नता होने पर भी उनमें जो-सो द्वारा समता भाव का आरोप किया गया है, अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

औरन जो को जन्म है, सो वाको यक रोज।
औरन को जो राज सो, सिव सरजा की मौज ॥१४२॥

अर्थ—अन्य राजाओं का समस्त जीवन शिवाजी का एक दिन है (औरों के जीवन का कोई महत्त्व नहीं अथवा अन्य राजाओं के लिए जो कार्य जीवन भर में साध्य है, वह शिवाजी के लिए एक दिन का काम है), औरों का जो समस्त राज्य है वह शिवाजी का एक (तुच्छ) खेल मात्र है।

विवरण—यह उदाहरण बहुत स्पष्ट नहीं है।

चौथा उदाहरण—दोहा

साहिन सों रन माँडिबो, कीबो सुकवि निहाल।
सिव सरजा को ख्याल है, औरन को जंजाल ॥१४३॥

शब्दार्थ—ख्याल = खेल, मनोविनोद। जंजाल = बखेड़ा, विपत्ति।

अर्थ—शिवाजी के लिए बादशाहों से युद्ध करना और श्रेष्ठ कवियों को (इच्छित दान दे कर) निहाल करना एक खेल मात्र है, वही बात अन्य राजाओं के लिए बड़ा भारी बखेड़ा है (बड़ा कठिन काम है) ।

दूसरी निदर्शना

एक क्रिया सों निज अरथ, और अर्थ को ज्ञान ।
ताही सों जु निदर्शना, भूषन कहत सुजान ॥१४४॥

अर्थ—जहाँ एक क्रिया से अपने धर्म और उसी से दूसरे धर्म का ज्ञान हो उसे भी निदर्शना अलंकार कहते हैं अर्थात् जहाँ क्रिया से अपने अर्थ (कार्य) और अन्य अर्थ (कारण) का ज्ञान हो वहाँ दूसरी निदर्शना होती है ।

उदाहरण—दोहा

चाहत निर्गुण सगुण को, ज्ञानवंत की बान ।
प्रकट करत निर्गुण सगुन, सिवा निवाजै दान ॥१४५॥

शब्दार्थ—निर्गुण = निराकार, गुणहीन । सगुण = साकार, गुणयुक्त । निवाजै = कृपा करके ।

अर्थ—निर्गुण (गुणहीन) और सगुण (गुणवान) सब तरह के व्यक्तियों को दान दे कर शिवाजी यह प्रकट करते हैं कि ज्ञानी पुरुष का यह स्वभाव है कि वह निर्गुण तथा सगुण दोनों को चाहता है । अर्थात् ज्ञानी पुरुष परमेश्वर के निराकार और साकार दोनों रूपों को एक समान समझते हैं ।

विवरण—यहाँ 'प्रकट करत' इस एक ही क्रिया से जहाँ शिवाजी का सगुण और निर्गुण को एक समान समझना और ज्ञानियों का भी निर्गुण और सगुण में अभेदभाव लक्षित होता है, वहाँ शिवाजी के सब को दान देने का कारण भी यही अभेद भाव बताया गया है, अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है ।

व्यतिरेक

सम छबिवान दुहून में, जहँ बरनत बढ़ि एक ।
भूषन कवि कोविद सबै, ताहि कहत व्यतिरेक ॥१४६॥

अर्थ—जहाँ समान शोभावाली दो वस्तुओं (उपमान और उपमेय) में से किसी एक को बढ़ा कर वर्णन किया जाय वहाँ पंडित एवं कवि लोग व्यतिरेक अलंकार कहते हैं ।

विवरण—इसमें प्रायः उपमेय को उपमान से बढ़ा कर अथवा उपमान को उपमेय से घटा कर ही वर्णन किया जाता है।

उदाहरण—छप्पय

त्रिभुवन मैं परसिद्ध एक अरि बल वह खंडिय।
यह अनेक अरिबल बिहंडि रन मंडल मंडिय॥
भूषन वह ऋतु एक पुहुमि पानिपहि बढ़ावत।
यह छहुँ ऋतु निसदिन अपार पानिप सरसावत॥
सिवराज साहि सुव सत्थ नित, हय जग लक्खन संचरइ।
यक्कइ गयन्द यक्कइ तुरंग किमि सुरपति सरवरि करइ॥१४७॥

शब्दार्थ—खंडिय = खडन किया, नाश किया। बिहंडि = नाश करके। मंडिय = शोभित किया। पुहुमि = पृथ्वी। पानिप = शोभा, पानी। सत्थ = साथ। हय = घोड़ा। गय = हाथी। संचरइ = संचरण करते हैं, चलते हैं। यक्कइ = एक ही। गयन्द = गजेन्द्र। सरवरि = बराबरी।

अर्थ—यह बात तीनों लोकों में प्रसिद्ध है कि इन्द्र ने केवल एक ही शत्रु (वृत्रासुर) को मारा है, परन्तु शिवाजी ने अनेक शत्रुओं को मार कर रणभूमि को शोभित किया है, वह (इन्द्र) केवल एक (वर्षा) ऋतु में ही (जल बरसा कर) पृथ्वी की शोभा को बढ़ाता है, लेकिन यह शिवाजी छओं ऋतुओं में रात दिन इस पृथ्वी को अपार शोभा से सौन्दर्यमयी बनाते हैं। भूषण कवि कहते हैं उसके पास केवल एक हाथी (ऐरावत) और एक घोड़ा (उच्चैःश्रवा) है और इधर शाहजी के पुत्र शिवाजी के साथ लाखों हाथी और घोड़े चलते हैं। फिर भला इन्द्र शिवाजी की समता कैसे कर सकता है?

विवरण—यहाँ शिवाजी उपमेय में उपमान इन्द्र से विशेषता बताई गई है अतः व्यतिरेकालंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग,
भूषन भनत जग राख्यो छल मढ़ि कै।
धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव तेज, चढ़ि कै॥

साहि के सिवाजी गाजी, कर्‌यो आगरे मैं,
चंड पांडवनहू ते पुरुषारथ सु बढ़ि कै।
सूने लाखभौन तें कढ़े वे पाँच राति मैं जु
द्यौस लाख चौकी ते अकेलो आयो कढ़ि कै ॥१४८॥

शब्दार्थ—दारुन = कठोर। छल मढ़ि कै = कपट से ढक कर, कपट में फँसा कर। धरम = धर्म, धर्मसुत, युधिष्ठिर। पैज = प्रण, टेक। कढ़िकै = निकल कर।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब दुर्योधन से दुगुना दुष्ट है। उसने सारे संसार को अपने कपट में फँसा लिया है। युधिष्ठिर के धर्म, भीम के बल, अर्जुन की प्रतिज्ञा, नकुल की बुद्धि और सहदेव के तेज के प्रभाव से वे पाँचों पांडव (दुर्योधन के बनवाये) सूने लाख के घर से रात को निकल कर अपना उद्धार कर सके थे; परन्तु शाहजी के पुत्र धर्मबीर शिवाजी ने आगरे में पांडवों से भी अधिक पराक्रम दिखाया क्योंकि वे अकेले ही उक्त पाँचों गुणों को धारण करके दिन दहाड़े लाखों पहरेदारों के बीच से निकल आये।

विवरण—यहाँ शिवाजी (उपमेय) में पाँचों पांडवों (उपमान) से विशेषता कथन की गई है।

सहोक्ति

वस्तुन को भाषत जहाँ, जन-रंजन सहभाव।
ताहि सहोक्ति बखानहीं, जे भूषन कविराव ॥१४९॥

अर्थ—जहाँ 'सह' शब्द (या सह अर्थ को बताने वाले अन्य वाचक शब्दों) के बल से मनोरंजक सह-भाव प्रकट हो (कई वस्तुओं की संगति मनोरञ्जकतापूर्वक वर्णित हो) वहाँ कविराज सहोक्ति अलंकार कहते हैं।

विवरण—इसके वाचक शब्द संग, सहित, सह, समेत, साथ आदि होते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यो
हरम सरम एक संग बिनु ढंग ही।
नैनन तें नीर छूट्यो एक संग छूट्यो
सुख-रुचि मुख-रुचि त्यों ही बिन रंग ही ॥

भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी,
धाक बिललाने न गहत बल अंग ही।
दक्खिन के सूबा पाय दिली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव-आस एक संग ही ॥१५०॥

शब्दार्थ—हुलास = उल्लास, प्रसन्नता। आम खास = महल का भीतरी मार्ग। हरम = बेगम, अथवा अन्तःपुर। सुख रुचि = सुख की इच्छा। मुख रुचि = मुख की कान्ति, या मुख का स्वाद। बिललाना = व्याकुल हो कर असंबद्ध बातें कहना।

अर्थ—प्रसन्नता तथा आम खास का बैठना एक साथ छूट गये। बेगमों का सहवास (अन्तःपुर) और लज्जा आदि भी सब एक साथ ही बुरी तरह से छूट गये। नेत्रों से जल और हृदय का धैर्य भी एक साथ ही छूट गये। ऐसे ही सुखेच्छा और मुख का स्वाद वा मुख की कान्ति भी (बिना रंग, मलिन, उदास हो कर) काफूर हो गई। भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! वीर लोग भी तेरी धाक से व्याकुल हो कर असंबद्ध बातें करते हैं और अपने शरीर में बल नहीं पाते। दिल्ली के अमीर लोग दक्षिण प्रान्त की सूबेदारी पा कर फिर उत्तर आने की आशा और अपने जीवन की आशा को एक साथ ही छोड़ देते हैं। (वे समझ लेते हैं कि दक्षिण पहुँच कर शिवाजी के हाथ से बचना और सही-सलामत दक्षिण से फिर उत्तर पहुँचना अब संभव नहीं है।

विनोक्ति

बिना कछू जहँ बरनिए, कै हीनो कै नीक।
ताको कहत विनोक्ति हैं, कवि भूषन मति ठीक ॥१५१॥

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु के बिना कोई वस्तु हीन या उत्तम कही जाय वहाँ बुद्धिमान कवि विनोक्ति अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ किसी वस्तु के बिना हीनता पाई जाय अथवा जहाँ किसी वस्तु के बिना उत्तमता पाई जाय दोनों स्थानों में विनोक्ति अलंकार होता है।

विवरण—इसके वाचक पद बिना, हीन, रहित आदि होते हैं। कहीं-कहीं ध्वनि से भी व्यंजित होता है।

उदाहरण—दोहा

सोभमान जग पर किये, सरजा सिवा खुमान।
साहिन सो बिनु डर अगड़, बिन गुमान को दान॥१५२॥

शब्दार्थ—सोभमान = शोभित। अगड़ = अकड़। गुमान = घमंड।

अर्थ—चिरजीवी वीर-केसरी शिवाजी ने बादशाहों के डर के बिना अपनी अकड़ और बिना अभिमान के अपने दान को पृथ्वी तल पर सुशोभित किया। अर्थात् शिवाजी किसी बादशाह से डरते नहीं, अतः उनकी ऐंठ, उनका अभिमान सुन्दर लगता है और उनका दान बिना अभिमान के होता है, अतः वह प्रशंसनीय है।

विवरण—यहाँ बिना डर और बिना गुमान के होने से शिवाजी की ऐंठ और दान को प्रशंसनीय बताया है, अतः विनोक्ति अलङ्कार है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

को कविराज विभूषन होत बिना कवि साहितनै को कहाए?
को कविराज सभाजित होत सभा सरजा के बिना गुन गाए?
को कविराज भुवालन भावत भौंसिला के मन मैं बिन भाए?
को कविराज चढ़ै गज बाजि सिवाजी की मौज मही बिनु पाए॥१५३॥

शब्दार्थ—विभूषन होत = शोभा पाता है। सभाजित = सभा को जीतने वाले, अति प्रसिद्ध कवि। भुवाल = भूपाल, राजा।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी का कवि कहाए बिना कौन श्रेष्ठ कवि शोभा पा सकता है? अथवा कौन कवि कविशिरोमणि हो सकता है? और कौन ऐसा कवि है जो सभा में शिवाजी के गुण वर्णन किये बिना सभाजित कहला सके अर्थात् सभा में ख्याति पा सकता है? कौन-सा ऐसा कविराज है जो बिना शिवाजी को अच्छा लगे अन्य राजाओं को रुचिकर हो। और पृथ्वी पर ऐसा कौन-सा कवि है जो शिवाजी का कृपा-पात्र हुए बिना हाथी घोड़ों पर चढ़ सके? अर्थात् कोई ऐसा नहीं है।

विवरण—यहाँ बिना शिवाजी का कवि कहलाए, बिना उनके गुण गाए और बिना उनका कृपा पात्र हुए कवियों का शोभा न पाना कथन किया गया है, अतः विनोक्ति है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

बिना लोभ को बिबेक, बिना भय जुद्ध टेक,
साहिन सो सदा साहितनै सिरताज के।
बिना ही कपट प्रीति, बिना ही कलेस जीति,
बिना ही अनीति रीति लाज के जहाज के॥
सुकवि समाज बिन अपजस काज भनि,
भूषन भुसिल भूप गरीबनेवाज के।
बिना ही बुराई ओज, बिना काज घनी फौज,
बिना अभिमान मौज राज सिवराज के॥१५४॥

शब्दार्थ—बिबेक = विचार। टेक = प्रण, आन। अनीति = अन्याय। रीति = प्रजा के प्रति व्यवहार। लाज के जहाज = लज्जा के जहाज, अत्यन्त लज्जाशील। गरीबनेवाज = दीनदयालु।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी महाराज का विचार लोभ-रहित है और वे सदा बादशाहों से निर्भय हो कर युद्ध-टेक (युद्ध की आन) रखते हैं। उनकी प्रीति बिना कपट के होती है, उनकी विजय बिना किसी कष्ट के ही होती है अर्थात् विजय प्राप्ति के लिए उन्हें बहुत कष्ट नहीं करना पड़ता और (प्रजा के साथ) उन लज्जाशील महाराज का व्यवहार बिना अन्याय के होता है। भूषण कवि कहते हैं कि दीनदयालु भौंसिला राजा शिवाजी का सुकवि-समाज अपयश के कार्यों से रहित है, और उन शिवाजी का तेज बुराई से रहित है और उनकी बड़ी फौज बिना काम के रहती है अर्थात् उनके तेज के कारण सेना कार्य-रहित है, और उनकी प्रसन्नता या उल्लास अभिमान से सर्वथा रहित है।

विवरण—यहाँ विवेक, युद्ध-टेक, प्रीति, जीत, रीति आदि को क्रमशः बिना लोभ, बिना भय, बिना कपट, बिना क्लेश और बिना अनीति के शोभायमान कथन किया गया है; अतः विनोक्ति है।

चौथा उदाहरण—कवित्त मनहरण

कीरति को ताजी करी बाजि चढ़ि लूटि कीन्ही,
भइ सब सेन बिनु बाजी बिजैपुर की।

भूषन भनत, भौंसिला भुवाल धाक ही सों,
धीर धरबी न फौज कुतुब के धुर की ॥
सिंह उदैभान बिन अमर सुजान बिन,
मान बिन कीन्हीं साहबी त्यों दिलीसुर की।
साहिसुव महाबाहु सिवाजी सलाह बिन,
कौन पातसाह की न पातसाही मुरकी ॥१५५॥

शब्दार्थ—बाजि = घोड़ा। बिनु बाजी भई = हार गई। धरबी = धरेगी; यहाँ भूतकालिक क्रिया का अर्थ होगा (बुन्देलखंडी प्रयोग) धुर = केन्द्र-स्थल, किला। मुरकी = मुरक गई, नष्ट हो गई। सलाह = सम्मति, मेल। साहिबी = प्रभुत्व।

अर्थ—घोड़े पर चढ़ कर शिवाजी ने खूब लूट की और बीजापुर की समस्त सेना परास्त हो गई, इस तरह शिवाजी ने अपनी कीर्ति को फिर से फैलाया। भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी की धाक ही से कुतुबशाह की केन्द्र-स्थान की सेना भी धैर्य न धरेगी (अथवा कुतुबशाह की किले में रहने वाली सेना भी घबड़ा जायगी)। शिवाजी ने औरंगजेब के प्रभुत्व को उदयभानु, अमरसिंह और सुजानसिंह से रहित कर मानरहित कर दिया। भला शाहजी के पुत्र महाबली शिवाजी से मेल न रखने पर कौन ऐसा बादशाह है जिसकी बादशाहत नष्ट न हो गई हो।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब की उदयभानु, अमरसिंह और सुजानसिंह के बिना हीनता कथन की गई है, और शिवाजी से मेल किये बिना अन्य बादशाहों की अशोभनता कथन की गई है, अतः विनोक्ति अलंकार है।

समासोक्ति

बरनन कीजै आन को, ज्ञान आन को होय।
समासोक्ति भूषन कहत, कवि कोविद सब कोय ॥१५६॥

अर्थ—जहाँ वर्णन तो किसी अन्य प्रस्तुत वस्तु का किया जाय और उससे ज्ञान किसी अन्य (अप्रस्तुत) वस्तु का हो वहाँ समस्त विद्वान एवं कवि समासोक्ति अलंकार कहते हैं।

विवरण—इसमें प्रस्तुत के वर्णन में समान अर्थ-सूचक विशेषण

शब्दों द्वारा अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है। यह वर्णन कभी श्लेष के द्वारा होता है कभी बिना श्लेष के ही साधारण शब्दों द्वारा।

उदाहरण—दोहा

बड़ो डील लखि पील को, सबन तज्यो बन थान।
धनि सरजा तू जगत मैं, ताको हर्‌यो गुमान॥१५७॥

शब्दार्थ—डील = शरीर। पील = फील, हाथी।

अर्थ——हाथी का बहुत बड़ा डील (शरीर) देख कर समस्त पशुओं ने (भय से) वन-स्थली को छोड़ दिया, परन्तु हे सिंह, तू धन्य है कि तूने ऐसे हाथी का भी घमंड दूर कर दिया।

शब्दार्थ—यहाँ हाथी और सिंह (सरजा) का वर्णन करना अभीष्ट है किन्तु अप्रस्तुत औरंगज़ेब और शिवाजी का वृत्तान्त श्लिष्ट शब्द 'सरजा' द्वारा जाना जाता है। क्योंकि 'सरजा' शब्द का अर्थ (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक खिताब है। अतः इससे यह अभिप्राय निकलता है कि औरंगज़ेब की विशाल शक्ति को देख कर सब राजा लोग अपना अपना राज्य छोड़ कर भाग गये, परन्तु हे वीर-केसरी शिवाजी, आपही इस संसार में धन्य हैं जिन्होंने उसके गर्व को चूर्ण कर दिया। इस प्रकार प्रस्तुत से अप्रस्तुत का ज्ञान होने के कारण यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

तुही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी, जानत सकल जहान॥१५८॥

शब्दार्थ—द्विजराज = चन्द्रमा, ब्राह्मण। शिव = महादेव, शिवाजी। कला = चन्द्रमा की कला, काव्य कला।

अर्थ—तू ही सच्चा चन्द्रमा है, तेरी कला ही माननीय है, पूज्य है, क्योंकि तुझ पर श्री महादेव जी ने कृपा की है, यह बात समस्त संसार में प्रसिद्ध है।

विवरण—यहाँ कवि का तात्पर्य तो चन्द्रमा की प्रशंसा करना है परन्तु 'द्विजराज' और 'शिव' इन दोनों पदों के श्लिष्ट होने से अप्रस्तुत कवि भूषण और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है। जैसे—हे कवि भूषण, तू ही सच्चा ब्राह्मण है और तेरी ही कला (काव्य कला) प्रामाणिक है, क्योंकि

तुझ पर शिवाजी ने अनुग्रह किया है, यह संसार जानता है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

उत्तर पहार बिधनोल खँडहर झार-
खंडहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गोर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मार रद की॥
भूषन जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो अपनी ऊँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सो बैर कै बड़ाई निज पद की॥१५६॥

शब्दार्थ—बिधनोल = बिदनूर, तुंगभद्रा नदी के उद्गम स्थान के पास पश्चिमी घाट पर यह एक पहाड़ी राज्य था। शिवाप्पा नामक राजा यहाँ राज्य करता था। अलीआदिलशाह ने इस राज्य को विजय करके करद बनाया। इस पराजय के एक वर्ष बाद शिवाप्पा मर गया। तब उसका लड़का गद्दी पर बैठा। सन् १६७६ में शिवाजी ने उसे अपना करद बना लिया। खँडहर = इस नाम का चंबल और नर्मदा के बीच सुलतानपुर के समीप एक कसबा था। झारखंड = उड़ीसा। केली = केलि, क्रीड़ास्थान। बिरद = यश। गोर = अफगानिस्थान का एक शहर, जहाँ से मुहम्मद गोरी आया था। बसति = बस्ती। रद की = बरबाद की, नष्ट की।

अर्थ—जिस हाथी का सुन्दर यश उत्तर के पहाड़ों में तथा बिदनूर खँडहर और झाड़खंड आदि देशों में फैला हुआ है, गोर (अफगानिस्थान), गुजरात और पूरब तथा पच्छिम के समस्त जंगली जंतुओं को जिस हाथी ने चौपट कर दिया है, भूषण कहते हैं कि वह प्रबल मदमस्त गजराज एक ऐसे सिंह को, जो बिना जाने घोर गर्जना नहीं करता, देख कर अपने कद की ऊँचाई भूल बैठा और उससे लड़ाई कर अपने पद की—बल की—बड़ाई को खो बैठा।

विवरण—यहाँ भी कवि की इच्छा हाथी के वर्णन की है परन्तु उसमें सरजा शब्द श्लिष्ट होने से शिवाजी तथा औरंगज़ेब के व्यवहार का भान होता है। अभिप्राय यह है कि जिस औरंगज़ेब का यश उत्तर के पहाड़ों, तथा

बिदनूर (पश्चिमी घाट) खँडहर या कंधार और झाड़खंड के प्रान्तों में फैला हुआ है, गोर और गुजरात तथा पूरब और पश्चिम के जंगल में रहने वालों की बस्तियों को भी जिसने मार-मार कर चौपट कर दिया है, भूषण कहते हैं कि औरंगज़ेब रूपी यह प्रबल मदमस्त गजराज शिवाजी-रूपी वीर-केसरी से लड़ाई करके अपने कद की ऊँचाई को (अपने विशाल साम्राज्य को) भुला बैठा और अपने पद की—बल की—बड़ाई खो बैठा। इस तरह यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

परिकर तथा परिकरांकुर

साभिप्राय विशेषननि, भूषन परिकर मान।
साभिप्राय विशेष्य तें, परिकर अंकुर जान ॥१६०॥

शब्दार्थ—साभिप्राय = अभिप्राय सहित।

अर्थ—जहाँ अभिप्राय सहित विशेषण हों वहाँ परिकर और जहाँ अभिप्राय सहित विशेष्य हों वहाँ परिकरांकुर अलंकार होता है।

विवरण—साभिप्राय विशेषण एवं विशेष्य से एक विशेष ध्वनि निकला करती है, अर्थ वही रहता है, उसकी वास्तविकता भी वैसी ही रहती है, उससे जो ध्वनि निकलती है केवल उसी में विशेषता होती है, उससे ही चमत्कार होता है।

उदाहरण परिकर—कवित्त मनहरण

बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने,
भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझ तें सवाई तेरो भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा॥
साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हें गढ़,
जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिली-दल का दलन,
अफजल का मलन शिवराज आया सरजा॥१६१॥

शब्दार्थ—समुहाने = सम्मुख, सामने। दिल आनि = दिल में ला, मान ले। मेरा बरजा = मेरा मना किया। अयाने = मूर्ख। दलन = नाश करने

वाला। मलन = मसल डालने वाला। बहलोल खाँ—यह सन् १६३० ई० में निज़ामशाही दरबार में था। फिर सन् १६६१ में इसने बीजापुर सरकार की सेवा ग्रहण कर ली और शिवाजी से युद्ध करने को भेजा गया, परन्तु बीच में ही सिद्दी जौहर नामक सेनापति के बीजापुर से बिगड़ जाने के कारण यह शिवाजी तक न पहुँच सका। तब इसने सिद्दी को परास्त किया। सन् १६७३ में बीजापुर के वजीर खवासखाँ ने इसे शिवाजी से लड़ कर पन्हाला का किला लेने भेजा, पर मराठों ने इसे खूब तंग किया। इसे चारों ओर से इस प्रकार घेरा कि बेचारे को पानी पीने को न मिला। पीछे बड़ी कठिनाइयों से इसका पिंड छूटा। सन् १६७५ में इसने खवास खाँ को मरवा डाला और स्वयं बीजापुर के नाबालिक बादशाह का मुतवल्ली (Regent) बन बैठा। सन् १६७७ ई० में यह कुतुबशाह से लड़ने चला, परन्तु कुतुबशाह के वजीर और शिवाजी के साथी मधुना पन्त ने इसे परास्त किया। सन् १६७८ ई० में यह मर गया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अरे मूर्ख बहलोलखाँ, मेरा मना करना—कहना—मान ले, अन्यथा तू शिवाजी के सामने जाने पर नहीं बचेगा। तुझ से सवाया (अधिक) वीर तेरा भाई (इखलासखाँ) था, परन्तु उसे भी सलहेरि के युद्ध में (शिवाजी ने) कैद कर लिया और उसके साथ का कोई भी वीर चूँ तक न कर सका अर्थात् उसके साथियों ने भी उसके छुड़ाने में कुछ पुरुषार्थ प्रकट न किया। शाहों के शाह औरंगज़ेब बादशाह के भी किले शिवाजी ने जीत लिये जिसका तू नौकर है और जिसकी तू प्रजा है। शाहजी के प्रिय पुत्र, दिल्ली-पति की सेना का नाश करने वाले, अफ़ज़लखाँ को मसलने वाले (मारने वाले) वीर-केसरी शिवाजी आ गये हैं। (तू यहाँ से भाग अन्यथा तुझे भी मार डालेंगे।)

विवरण—यहाँ भूषण कवि बहलोलखाँ को शिवाजी के सम्मुख आने से मना करते हैं, शिवाजी को दिल्ली के दल का नाशक, अफ़ज़लखाँ को मारने वाला, और इखलासखाँ को पकड़ने वाला वर्णन करके उसके भी मरने का भय दिखलाया है। इन साभिप्राय विशेषणों से यही ध्वनि निकलती है कि जो ऐसा वीर है उसके सामने, हे बहलोलखाँ, तू क्यों जाता है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सूर सिरोमनि सूर-कुल, सिव सरजा मकरंद।
भूषन क्यों औरंग जितै, कुल मलिच्छ कुल चंद ॥१६२॥

शब्दार्थ—सूर = शूरवीर, तथा सूर्य। कुल = कुटुम्ब, सब। मकरंद = माल मकरंद के वंशज। कुल मलिच्छ कुलचन्द = समस्त म्लेच्छों के कुल का चन्द्र।

अर्थ—माल मकरंद के वंशज वीर शिवाजी सूर्य-कुल के शूरशिरोमणि हैं, (फिर भला) औरंगज़ेब रूपी समस्त म्लेच्छ-कुल का चन्द्रमा उनको कैसे जीत सकता है? अर्थात् नहीं जीत सकता।

विवरण—यहाँ शिवाजी और औरंगज़ेब के लिए क्रमशः सूर्य और चन्द्र आदि साभिप्राय विशेषण कथन किये गये हैं, क्योंकि चन्द्र सूर्य को नहीं जीत सकता, यह सब जानते हैं। साभिप्राय विशेषण होने से यहाँ परिकर है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

भूषन भनि सबही तबहि, जीत्यो हो जुरि जंग।
क्यों जीतै सिवराज सों, अब अंधक अवरंग ॥१६३॥

शब्दार्थ—अंधक = कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य जिस के सहस्र सिर थे। यह अंधक इस कारण कहलाता था कि यह देखते हुए भी मद के मारे अंधों की तरह चलता था। स्वर्ग से पारिजात लाते हुए यह शिवजी के हाथों मारा गया था।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अंधक आदि सब दैत्यों को शिवराज ने युद्ध करके तब ही (पहले ही) जीत लिया था, सो अब अंधकरूपी औरंगज़ेब शिवाजी (शिवजी के अवतार) को किस प्रकार जीत सकता है?

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब का विशेषण अंधक साभिप्राय है, अतः परिकर अलंकार है।

परिकरांकुर

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहिर जहान जाके धनद समान,
पेखियतु पासवान यों खुमान चित चाय है।

१६६ शिवराज-भूषण

भूषन भनत देखे भूख न रहत, सब,
आपही सों जात दुख-दारिद बिलाय है ॥
खीझे तें खलक माँहि खलबल डारत है,
रीझे तें पलक माँहि कीन्हे रंक राय है।
जंग जुरि अरिन के अंग को अनंग कीबो,
दीबो सिव साहब को सहज सुभाय है ॥१६४॥

शब्दार्थ—धनद = देवताओं का कोषाध्यक्ष, कुवेर। पेखियतु = दिखाई पड़ते हैं। पासवान = पास रहने वाले नौकर। खीझे तें = नाराज़ होने पर। खलबली = हल-चल। अनंग = अंगहीन, कामदेव।

अर्थ—इस कवित्त का अर्थ शिवजी और शिवाजी दोनों अर्थों में लगता है। (शिवजी के पक्ष में) जिनके पास रहने वाले कुवेर जैसे देवता हैं, और जिनके दर्शन-मात्र से भूख मिट जाती है, तथा दुःख दारिद्रय स्वयं नष्ट हो जाता है, और जिनके अप्रसन्न होने पर संसार भर में प्रलय हो जाती है और जो प्रसन्न होने पर पल भर में रंक को राजा कर देते हैं, उन शिवजी महाराज का युद्ध करके अपने शत्रु कामदेव को अनंग कर देना तथा दान देना सहज स्वभाव है।

(शिवाजी के पक्ष में) संसार में प्रसिद्ध है कि शिवाजी महाराज की ऐसी अभिरुचि है कि उनके पास रहने वाले नौकर भी (ऐसे ठाठ से रहते हैं कि) कुबेर के समान दिखाई देते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि जिन (शिवाजी) के देखने से लोगों की भूख उड़ जाती है और दरिद्रता आदि अनेक कष्ट सहज ही अपने आप नष्ट हो जाते हैं, जिनके नाराज़ हो जाने पर समस्त संसार में खलबली मच जाती है और जिनकी प्रसन्नता से पलक भर में ही कंगाल भी राजा हो जाते हैं, उन कृपालु शिवाजी का युद्ध में जुट कर शत्रुओं को अंगहीन कर देना और दीनों को दान देना सहज स्वभाव है।

विवरण—यहाँ 'सिव' शब्द साभिप्राय विशेष्य है क्योंकि 'शिव' ने ही कामदेव को भस्म करके अनंग कर दिया था अतः यहाँ परिकरांकुर अलंकार है।

श्लेष

एक बचन में होत जहँ, बहु अर्थन को ज्ञान।
स्लेस कहत हैं ताहि को, भूषन सुकवि सुजान ॥१६५॥

अर्थ—जहाँ एक बात के कहने से बहुत अर्थों का ज्ञान हो वहाँ चतुर कवि श्लेष अलंकार कहते हैं।

विवरण—भूषण ने श्लेष को अर्थालंकार में ही माना है। शब्दालंकार में इसे नहीं गिनाया, किन्तु उदाहरण शब्द-श्लेष और अर्थ-श्लेष दोनों के दिये हैं। शब्द-श्लेष और अर्थ-श्लेष में यही अन्तर है कि शब्द-श्लेष में श्लिष्ट (अनेक अर्थ वाले) शब्दों से अनेक अर्थों का विधान होता है किन्तु उन शब्दों के स्थान पर उनके पर्याय (समानार्थ) शब्द रख दिये जायँ तो वह श्लिष्टता नहीं रहती। अर्थ-श्लेष में शब्दों का एक ही अर्थ दो पक्षों में घटित होता है, उन शब्दों के पर्याय रख देने पर भी वह श्लेष ज्यों का त्यों बना रहता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके,
भू पर भरत नाम भाई नीति चारु है।
भूषन भनत कुल-सूर कुल-भूषन हैं,
दासरथी सब जाके भुज भुव भारु है॥
अरि-लंक तोर जोर जाके संग बानर हैं,
सिंधु रहैं बाँधे जाके दल को न पारु है॥
तेगहि कै भेंटै जौन राकस मरद जानै,
सरजा सिवाजी राम ही को अवतारु है ॥१६६॥

विवरण—इस कवित्त के दो अर्थ हैं—एक अर्थ राम-पक्ष में दूसरा शिवाजी-पक्ष में, यह कवित्त के अन्तिम पद से स्पष्ट प्रकट होता है।

शब्दार्थ—(राम-पक्ष में)—सीता संग सोभित = सीता के संग शोभित। सुलच्छन = श्रेष्ट लक्ष्मण जी। दासरथी = दशरथ के पुत्र। लंक = लंका। सिंधु रहैं बाँधे = सिंधु को बाँधा है। ते गहि कै भेंटै = जो भेंट होने पर पकड़ कर। जौन राकस मरद जानै—जो राक्षसों को मर्दन करना जानते हैं।

अर्थ—(राम-पक्ष में) जो श्री सीता जी के संग शोभित हैं, जिनके सहायक लक्ष्मण हैं, पृथ्वी पर सुन्दर नीति वाले भरत नाम के जिनके भाई हैं, भूषण कहते हैं कि जो समस्त सूर्य-कुल के भूषण हैं, जो दशरथ के बेटे हैं, और जिनकी भुजाओं पर समस्त पृथ्वी का भार है, शत्रु (रावण) की लंका को तोड़ने का जिनमें बल है, ऐसे वानर जिनके साथ हैं, जिन्होंने समुद्र को बाँधा था, जिनके दल का कोई पार न था, जो भेंट होने पर (सामना होने पर) राक्षसों को पकड़ कर मर्दन करना जानते हैं, उन्हीं रामचन्द्रजी के शिवाजी अवतार हैं।

शब्दार्थ—(शिवाजी पक्ष में)—सीता संग सोभित = सी (श्री, लक्ष्मी) उसके संग शोभित। सुलच्छन = शुभ लक्षण (वाले व्यक्ति)। भरत = भरना, पालन करना। भाई = भाती है। सूर = शूर, योद्धा। दासरथी = रथी हैं दास जिनके, बड़े-बड़े वीर जिनके सेवक हैं। लंक = कमर। बान रहैं = बाण रहते हैं। सिंधुर हैं बाँधे = हाथी (द्वार पर) बँधे रहते हैं। जाके दल को न पारु है = जिनकी सेना अनगनित है। तेगहि कै भेंटै = तलवार ही से भेंटते हैं। जौ नराकस मरद जानै = जो [नर = मनुष्य (प्रजा) + अकस = शत्रु] का मर्दन करना जानते हैं।

अर्थ—(शिवाजी-पक्ष में) जो सदा लक्ष्मी के सहित शोभित हैं, सुन्दर लक्षणों वाले व्यक्ति जिनके सहायक हैं, पृथ्वी पर जिनका भर्ता (पालन पोषण करने वाला) नाम प्रसिद्ध है, जिनकी सुन्दर नीति सबको भाती है, जो समस्त शूरवीरों के भूषण हैं, सब रथी जिनके दास हैं, और जिनकी भुजाओं पर सारी पृथ्वी का भार है, शत्रुओं की कमर तोड़ने का जिनमें बल है ऐसे तीखे बाण जिनके साथ रहते हैं, जिनके (द्वार पर) हाथी बँधे हुए हैं और जिनकी सेना का कोई पारावार नहीं है, जो शत्रुओं को तलवार से ही भेंटते हैं, जो मनुष्यों के शत्रुओं का मर्दन करना जानते हैं, अथवा जो राक्षस अर्थात् म्लेच्छों का मर्दन करना जानते हैं वह वीर-केसरी शिवाजी रामचन्द्र जी का ही अवतार हैं।

विवरण—यहाँ 'शब्द-श्लेष' है। यदि 'सीता' के स्थान पर 'जानकी' रख दिया जाय तो श्लिष्टता नहीं रहेगी। यही बात अन्य शब्दों की भी है।

'शब्द श्लेष' दो तरह का होता है—एक भंगपद, दूसरा अभंगपद। जहाँ दो अर्थों के लिए पदों को जोड़ा-तोड़ा जाता है, वह भंगपद और जहाँ पदच्छेद न करना पड़े वहाँ अभंगपद होता है। यहाँ भङ्गपद श्लेष है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

देखत सरूप को सिहात न मिलन काज
जग जीतिबे की जामैं रीति छल बल की।
जाकै पास आवै ताहि निधन करति बेगि,
भूषन भनत जाकी संगति न फल की॥
कीरति कामिनी राच्यो सरजा सिवा की एक,
बस कै सकै न बसकरनी सकल की।
चंचल सरस एक काहू पै न रहै दारि,
गनिका समान सूबेदारी दिली-दल की॥१६७॥

विवरण—इस कवित्त के भी दो अर्थ हैं। एक अर्थ दक्षिण की सूबेदारी-पक्ष में, दूसरा वेश्या-पक्ष में, यह बात कवित्त के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट प्रकट है।

शब्दार्थ—को न सिहात=कौन अभिलाषा नहीं करता, कौन नहीं ललचाता, मुग्ध नहीं होता। मिलन काज=प्राप्त करने के लिए अथवा मिलने के लिए। निधन करत=निर्धन करती है, अथवा मार डालती है। वेगि=शीघ्र। राच्यो=अनुरक्त। दारि=दारी, व्यभिचारिणी, छिनाल स्त्री। गनिका=गणिका, वेश्या। सरस=रस जानने वाली, बढ़ कर।

अर्थ—(वेश्या पक्ष में) सुन्दरी वेश्या के रूप-लावण्य को देख कर ऐसा कौन व्यक्ति है जो उससे मिलने के लिए—आलिंगन करने के लिए—न ललचाता हो, जिसमें छलबल से संसार भर (के हृदयों) को जीतने की अनेक रीतियाँ हैं, अर्थात् जो कपट और नाज़ नखरों से संसार भर को जीतना जानती है। वह जिसके पास आती है उसे शीघ्र ही निर्धन कर देती है, उसका धन चूस लेती है। भूषण कहते हैं कि उसका संग करना भी अच्छा फल नहीं देता। वह रस को जानने वाली चंचल व्यभिचारिणी वेश्या कभी किसी एक व्यक्ति के पास नहीं रहती और वह सबको वश में करने वाली, लपेट लेने वाली

है। परन्तु कीर्त्तिरूपी कामिनी में अनुरक्त एक शिवाजी ही ऐसे हैं जिनको वह अपने वश में नहीं कर सकी अर्थात् यशस्वी चरित्रवान् शिवाजी ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें वह नहीं लुभा सकी।

(सूबेदारी के पक्ष में) दिल्ली की सेना की इस सूबेदारी, जिसमें कि संसार भर को जीतने के लिए छलबल की—कपट की—अनेक रीतियाँ हैं, के सरूप (वैभव) को देख कर कौन ऐसा प्राणी है जो इसको पाने के लिए न ललचाता हो। पर यह जिसके पास जाती है, शीघ्र ही उसका नाश कर देती है, (क्योंकि सूबेदार बनते ही शिवाजी का सामना करने के लिए जाना आवश्यक होता है, तब शिवाजी के हाथों से कौन बच सकता है, प्रत्येक सूबेदार मारा जाता है। और इसका संग करना—साथ करना भी अच्छा नहीं। इस तरह जो इसे पाता है, है, शीघ्र ही उसका नाश हो जाता है)। यह (दिल्ली की सेना की सूबेदारी) वेश्या के समान चंचल है, वरन् उससे भी बढ़कर है, और कभी किसी एक के पास नहीं रही (अर्थात्—या वह सूबेदार मारा जाता है और नया सूबेदार नियुक्त हो जाता है, अथवा यदि किस्मत से बच जाय तो शिवाजी से हार खाने के कारण औरंगज़ेब उसे पदच्युत कर देता है, इस तरह सूबेदारी कभी किसी एक के पास नहीं रहती)। यह सूबेदारी सब को वश में करने वाली है। कीर्त्तिरूपी कामिनी में अनुरक्त शिवाजी ही एक ऐसे हैं जिन्हें यह नहीं लुभा सकी—अर्थात् जसवंतसिंह आदि सब राजाओं को इस सूबेदारी के लोभ ने फँसा लिया है, एक यशस्वी शिवाजी ही ऐसे हैं जो इसके लोभ में नहीं पड़े और जिन्होंने औरंगज़ेब से स्वतंत्र रहना कीर्त्तिकर समझा।

विवरण—यहाँ श्लिष्ट शब्दों द्वारा उक्त कवित्त के दो अर्थ हुए हैं—एक वेश्या-पक्ष में, दूसरा दक्षिण की सूबेदारी पक्ष में। इसमें अर्थश्लेष का प्राधान्य है, क्योंकि प्रायः ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं कि यदि उनके पर्याय भी प्रयुक्त होते तब भी अर्थ यही रहता।

अप्रस्तुत-प्रशंसा

प्रस्तुत लीन्हे होत जहँ, अप्रस्तुत परसंस।
अप्रस्तुत परसंस सो, कहत सुकवि अवतंस ॥१६८॥

शब्दार्थ—प्रस्तुत = जो प्रकरण में हो अर्थात् जिसके कहने की इच्छा

हो। लीन्हें = लेने, ग्रहण करने। अप्रस्तुत = जिस बात का प्रकरण न हो अथवा जिसके कहने की इच्छा न हो। परसंस = प्रशंसा, वर्णन। अवतंस = श्रेष्ठ।

अर्थ—जहाँ प्रस्तुत के लेने (ग्रहण करने) के लिए अर्थात् वर्णन के लिए अप्रस्तुत का वर्णन हो वहाँ श्रेष्ठ कवि अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार कहते हैं (इसमें प्रस्तुत को सूचित करने के लिए अप्रस्तुत का वर्णन किया जाता है)।

सूचना—श्लेष में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों मौजूद रहते हैं। समासोक्ति में केवल प्रस्तुत का वर्णन होता है, और उससे अप्रस्तुत का ज्ञान होता है, परन्तु अप्रस्तुत-प्रशंसा में अप्रस्तुत के वर्णन के द्वारा प्रस्तुत की सूचना दी जाती है। अप्रस्तुत-प्रशंसा के पाँच भेद हैं—१. कार्य-निबन्धना (कार्य कह कर कारण लक्षित किया जाना), २. कारण-निबंधना (जहाँ कहना है कार्य, पर कहा जाता है कारण), ३. सामान्य-निबंधना (अप्रस्तुत सामान्य के कथन के द्वारा प्रस्तुत विशेष का लक्षित करना), ४. विशेष-निबंधना (अप्रस्तुत विशेष के द्वारा प्रस्तुत सामान्य का बोध कराया जाना), ५. सारूप्य-निबन्धना (समान मिलता-जुलता अप्रस्तुत कह कर प्रस्तुत लक्षित किया जाना)। परन्तु महाकवि भूषण ने केवल कार्य-निबन्धना का ही वर्णन किया है, और विशेष-निबंधना को 'सामान्य विशेष' नामक अलग अलङ्कार माना है।

उदाहरण—दोहा

हिन्दुनि सों तुरकिनि कहैं, तुम्हैं सदा सन्तोष।
नाहिन तुम्हरे पतिन पर, सिव सरजा कर रोष॥१६९॥

शब्दार्थ—हिन्दुनि = हिन्दू स्त्रियाँ। तुरकिनि = मुसलमान स्त्रियाँ।

अर्थ—हिन्दू स्त्रियों से तुर्कों की स्त्रियाँ कहती हैं कि तुम ही सदा सुखी हो, क्योंकि तुम्हारे पतियों पर सरजा राजा शिवाजी का क्रोध नहीं है।

विवरण—यहाँ पराक्रमी शिवाजी का मुसलमानों का शत्रु होना तथा इस कारण मुसलमान-स्त्रियों का सदा अपने पतियों के जीवन के लिए दुःखित-चिन्तित रहना, इस प्रकार उनके द्वारा अपनी दुर्दशा का वर्णन प्रस्तुत है, इसको उन्होंने हिन्दू-स्त्रियों के पतियों पर शिवाजी का क्रोधित न होना, अतएव हिन्दू-स्त्रियों का संतुष्ट रहना रूप अप्रस्तुत कार्य द्वारा प्रकट किया है।

दूसरा—उदाहरण

अरितिय भिल्लिनि सों कहैं, घन बन जाय इकन्त।
सिव सरजा सों बैर नहिं, सुखी तिहारे कन्त ॥१७०॥

अर्थ—शत्रु-स्त्रियाँ एकान्त गहन वन में जा कर भीलनियों से कहती हैं कि तुम्हारे स्वामी ही आनन्द में हैं, क्योंकि उनकी शत्रुता सरजा राजा शिवाजी से नहीं है (पर हमारे पतियों का शिवाजी से वैर है इसलिए वे सुखी नहीं हैं)।

विवरण—यहाँ भी शिवाजी से वैर के कारण अपने पतियों की दुर्दशा का वर्णन न कर अपितु भीलनियों के पतियों को सुखी बता कर अप्रस्तुत वर्णन से प्रस्तुत का संकेत किया है।

तीसरा उदाहरण—मालती सवैया

काहू पै जात न भूषन जे गढ़पाल की मौज निहाल रहे हैं।
आवत है जो गुनीजन दच्छिन भौंसिला के गुन-गीत लहे हैं॥
राजन राव सबै उमराव खुमान की धाक धुके यों कहै हैं।
संक नहीं सरजा सिवराज सों आजु दुनी मैं गुनी निरभै हैं ॥१७१॥

शब्दार्थ—गढ़पाल = गढ़ों के पालक, शिवाजी। धाक धुके = आतंक से घबड़ाए हुए। दुनी = दुनिया, संसार।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि जो गुणीजन (पंडित कवि इत्यादि) दक्षिण में आते हैं भौंसिला राजा गढ़पति शिवाजी के गुणों के गीत गाते हैं। वे शिवाजी की प्रसन्नता से निहाल हो गये हैं और वे अब किसी अन्य के पास नहीं जाते। (उन्हें देख कर) चिरजीवी शिवाजी के आतंक से घबड़ाए हुए सब राजा, उमराव और सरदार यह कहते हैं कि आजकल संसार में पंडित ही निर्भय हैं (चैन में हैं) क्योंकि उन्हें शिवाजी से किसी भी प्रकार की भी शङ्का नहीं है।

विवरण—'शिवाजी बड़े-गुणग्राही हैं' इस प्रस्तुत कारण को 'गुणियों का शिवाजी से निहाल हो जाना' रूप अप्रस्तुत कार्य कथन द्वारा प्रकट किया है। अथवा अपने निहाल हो जाने और शिवाजी को छोड़ अन्यत्र कहीं न जाने इस प्रस्तुत विषय को भूषण ने अन्य कवियों के निहाल हो जाने से व्यक्त किया है। इस हालत में यहाँ सामान्य-निबन्धना अप्रस्तुत-प्रशंसा होगी।

पर्यायोक्ति

बचनन की रचना जहाँ, वर्णनीय पर जानि।
परयायोकति कहत हैं, भूषन ताहि बखानि ॥१७२॥

अर्थ—जहाँ वर्ण्य वस्तु का वचनों की चातुरी द्वारा घुमा फिरा कर वर्णन किया जाय वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है अर्थात् जिसका वर्णन करना हो उसको इस चतुरता से कहा जाय जिससे वर्णनीय का कथन भी हो जाय और उसका उत्कर्ष भी प्रतीत हो। पर्यायोक्ति दो प्रकार की होती है—एक जहाँ व्यंग से अपना इच्छित अर्थ कहा जाय, दूसरा जहाँ किसी बहाने से कोई काम हो।

सूचना—अप्रस्तुत-प्रशंसा में अप्रस्तुत से प्रस्तुत का ज्ञान होता है। समासोक्ति में प्रस्तुत-वर्णन से श्लिष्ट शब्दों द्वारा किसी अप्रस्तुत का ज्ञान होता है, पर पर्यायोक्ति में प्रस्तुत का कथन कुछ हेर-फेर करके किया जाता है, स्पष्ट शब्दों में नहीं, उसमें अप्रस्तुत का आभास नहीं होता, प्रत्युत प्रस्तुत का उत्कर्ष ज्ञात होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज तेरे बैर देखियतु,
घन बन ह्वै रहे हरम हबसीन के।
भूषन भनत रामनगर जवारि तेरे,
बैर परबाह बहे रुधिर नदीन के॥
सरजा समत्थ बीर तेरे बैर बीजापुर,
बैरी बैयरनि कर चीह्न न चुरीन के।
तेरे बैर देखियतु आगरे दिली के बीच,
सिन्दुर के बुन्द मुख-इन्दु जवनीन के ॥१७३॥

शब्दार्थ—रामनगर जवारि = रामनगर तथा जवारि या जौहर नाम के कोंकण के पास ही दो कोरी राज्य थे। सन् १६७२ में सलहेरि विजय के बाद मोरोपंत पिंगले ने बड़ी भारी फौज ले कर उनको विजय कर लिया। परवाह = प्रवाह। बैयर = वधूवर, स्त्री। चुरीन = चूड़ियाँ। जवनीन = यवन स्त्रियाँ, मुसलमान स्त्रियाँ।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी ! यह देखा जाता है कि आपके वैर के कारण घने जंगल हब्शियों के जनानखाने बन गये हैं, अर्थात् जो तातारी हब्शी पहरेदार बादशाह के अन्तःपुर में रहते थे, अब बादशाह के जंगल में चले जाने के कारण वे हब्शी गुलाम भी कुटुम्ब सहित जंगल में चले गये हैं। भूषण कवि कहते हैं कि आपके ही वैर के कारण रामनगर और जवार नगर में रक्त की नदियों के प्रवाह बहे। हे समर्थ वीर केसरी शिवाजी ! आपसे वैर होने से बीजापुरी शत्रुओं की स्त्रियों के हाथों में चूड़ियों के चिह्न ही नहीं रहे अर्थात् सब विधवा हो गईं, और आपके ही वैर के कारण आगरे और दिल्ली नगर की मुसलमानी स्त्रियों के चन्द्रमुखों पर सिंदूर की बिंदी दिखाई देती है। (मुसलमान-स्त्रियाँ सिंदूर का टीका इसलिए लगाती हैं कि वे भी हिन्दू-स्त्रियाँ ही जान पड़ें, और उनकी रक्षा हो जाय)।

विवरण—यहाँ सीधे यह न कह कर 'शिवाजी बड़े शत्रुजयी हैं' यों कहा है कि तुमसे वैर होने के कारण जंगलों में शत्रुओं के अन्तःपुर बन गये, नगरों में खून की नदियाँ बहने लगीं और स्त्रियों के हाथों से चूड़ियों के चिह्न ही मिट गये तथा मुसलमानी स्त्रियाँ हिन्दू स्त्रियों की तरह सिंदूर का टीका लगाने लगी हैं। इस प्रकार यहाँ शिवाजी की विजय का चतुरता से वर्णन है, और उनका उत्कर्ष भी प्रकट हुआ है।

उदाहरण (द्वितीय पर्यायोक्ति)—कवित्त मनहरण

साहिन के सिच्छक सिपाहिन के पातसाह
संगर मैं सिंह के से जिनके सुभाव हैं।
भूषन भनत सिव सरजा की धाक ते वै
काँपत रहत चित गहत न चाव हैं॥
अफजल की अगति, सायस्ताखाँ की अपति
बहलोल-बिपति सों डरे उमराव हैं।
पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छाँड़ि,
मक्का के ही मिस उतरत दरियाव हैं॥१७४॥

शब्दार्थ—सिच्छक = शिक्षक। समर = युद्ध। अगति = दुर्गति, दुर्दशा। अपति = अप्रतिष्ठा। मतो = निश्चय। मनसब = पद।

अर्थ—राजाओं को शिक्षा देने वाले (दंड द्वारा ठीक कर देने वाले) वीर सिपाहियों के स्वामी तथा जो रणक्षेत्र में सिंह के समान पराक्रम दिखाने वाले हैं वे (बादशाह) भी शिवाजी की धाक से काँपते रहते हैं और उनका चित्त कभी प्रसन्न नहीं रहता (सदा सशंक रहता है)। समस्त मुसलमान उमराव अफजलखाँ की दुर्दशा, शाइस्ताखाँ की अप्रतिष्ठा और बहलोलखाँ का संकट (शिवाजी ने इन तीनों की बड़ी दुर्दशा की थी) सुन कर बहुत डर गये हैं और सब पक्का इरादा कर, अपनी मनसबदारी त्याग कर और मक्का जाने का बहाना कर समुद्र पार करते हैं। (शिवाजी मक्का जाने वालों को नहीं छेड़ते थे)।

विवरण—यहाँ मक्का जाने के बहाने से मुसलमानों का प्राण बचाना दूसरी पर्यायोक्ति है, और इससे शिवाजी का उत्कर्ष भी प्रकट होता है। शत्रु उनके भय से देश छोड़ कर भाग रहे हैं।

व्याजस्तुति

अस्तुति में निन्दा कढ़ै, निन्दा में स्तुति होय।
व्याजस्तुति ताको कहत, कवि भूषन सब कोय ॥१७५॥

शब्दार्थ—कढ़ै = निकले, प्रकट हो।

अर्थ—जहाँ स्तुति में निन्दा और निन्दा में स्तुति प्रकट हो, भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ सब पंडित व्याजस्तुति मानते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पीरी पीरी हुन्नै तुम देत हो मँगाय हमें
सुबरन हम सों परखि कर लेत हौ।
एक पल ही मैं लाख रूखन सों लेत लोग,
तुम राजा ह्वै कै लाख दीबे को सचेत हौ॥
भूषत भनत महाराज सिवराज बड़े,
दानी दुनी ऊपर कहाए केहि हेत हौ?
रीझि हँसी हाथी हमैं सब कोऊ देत कहा,
रीझि हँसि हाथी एक तुमहियै देत हौ ॥१७६॥

शब्दार्थ—पीरी = पीली। हुन्नै = मुहरें, अशर्फियाँ। सुबरन = (१)

सुवर्ण, सोना (२) सु + वर्ण, सुन्दर अक्षर अर्थात् छंद। परखि = परीक्षा करके, खूब देखभाल कर। हाथी देत हैं = (१) हाथ मिलाते हैं, (२) हाथी दान करते हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि महाराज शिवाजी! पीली-पीली मुहरें मँगा कर आप हमें देते हैं पर हम से भी तो आप परख-परख कर सुवर्ण (सुन्दर अक्षर—सुन्दर छंद) लेते हैं—अर्थात् हम से ही सुवर्ण ले कर अशर्फी देने में क्या बड़ी बात है। लोग वृक्षों तक से पल भर में ही लाख (चपड़ा, जिससे मोहर करते हैं) ले लेते हैं पर आप राजा हो कर भी लाख (रुपये) देते समय सचेत हो कर देते हैं। हे महाराज, फिर आप किस लिए दुनियाँ में बड़े दानी प्रसिद्ध हो गये हैं? अर्थात् आप इस प्रसिद्धि के योग्य नहीं हैं)। प्रसन्न हो कर तथा हँस कर क्या केवल आप ही हमें हाथी (पुरस्कार में) देते हैं, प्रसन्न होने पर हँस करके तो हमें सब कोई ही हाथी देते हैं (हम से हाथ मिलाते हैं)।

विवरण—यहाँ सुबरन, लाख, हाथी आदि श्लिष्ट शब्द प्रयुक्त कर कवि ने शिवाजी के दान को प्रत्यक्ष तौर पर तुच्छ बताया है। पर वास्तविक अर्थ लेने से शिवाजी की गुण-ग्राहकता और दान-वीरता प्रकट होती है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

तू तौ रातौ दिन जग जागत रहत वेऊ,
जागत रहत रातौ दिन बन-रत हैं।
भूषन भनत तू विराजै रज-भरो वेऊ,
रज-भरे देहिन दरी मैं बिचरत हैं॥
तू तौ सूर गन को बिदारि बिहरत, सूर-
मंडलै बिदारि वेऊ सुरलोक रत हैं॥
काहे तें सिवाजी गाजी तेरोई सुजस होय,
तोसों अरिबर सरिबर सी करत हैं॥१७७॥

शब्दार्थ—वेऊ = वे भी, शत्रु भी। जागत = सावधान रहना, जागना। बन-रत = वन में अनुरक्त, लीन, वन में बसे हुए। रज = राज्यश्री तथा धूल। दरी = गुफा। विचरत = घूमते हैं। सूर = शूर। सूर-मंडल = सूर्य-मंडल। बिदारि = फाड़ कर। गाजी = धर्मवीर। सरिबर = बराबरी।

अर्थ—तुम जिस तरह रात दिन संसार में जागते रहते हो (सावधान रहते हो) उसी तरह तुम्हारे शत्रु भी वनवासी हो कर रात दिन (तुम्हारे भय के कारण) जागते रहते हैं (सोते नहीं, कहीं शिवाजी आ कर मार न डालें)। भूषण कवि कहते हैं कि तुम रज से भरे होने के कारण (राज्य-श्री से युक्त होने के कारण) शोभित हो और वे शत्रु भी रज (धूल) से भरे हुए शरीरों से पहाड़ों की गुफाओं में घूमते-फिरते हैं। तुम शूरों (शूरवीरों के) समूह को फाड़ कर (युद्ध में) विचरते हो और वे (शत्रु) भी सूर-मंडल को भेद कर स्वर्ग लोक में विहार करते हैं, (कहा जाता है कि युद्ध में मरे हुए लोग सूर्य-मंडल को भेद कर स्वर्ग को जाते हैं)। हे धर्मवीर शिवाजी ! फिर तुम्हारा ही यश (संसार में) क्यों प्रसिद्ध है ? क्योंकि तुम्हारे शत्रु भी तुम से बराबरी सी करते हैं (उनका भी वैसा ही यश होना चाहिए)।

विवरण—यहाँ प्रकट में तो शिवाजी के शत्रुओं की स्तुति की गई है, उन्हें शिवाजी के समान कहा गया है, पर वास्तव में उनकी निन्दा है और उनकी दुर्दशा का वर्णन है।

आक्षेप

पहले कहिए बात कछु, पुनि ताको प्रतिषेध।
ताहि कहत आच्छेप हैं, भूषन सुकवि सुमेध ॥१७८॥

शब्दार्थ—प्रतिषेध = निषेध। सुमेध = अच्छी मेधा (बुद्धि) वाले।

अर्थ—जहाँ पहले कुछ बात कह कर फिर उसका प्रतिषेध (निषेध) किया जाय वहाँ बुद्धिमान कवि भूषण आक्षेप अलंकार कहते हैं। (इसे उक्ताक्षेप भी कहते हैं।)

विवरण—आक्षेप का अर्थ ही 'बाधा डालना' है, अर्थात् जहाँ किसी कार्य के करने में बाधा डालने से तात्पर्य सिद्ध हो। इसमें पहले कही बात का तभी निषेध होता है, जब कि उससे कोई दूसरी बात प्राप्त हो।

उदाहरण—मालती सवैया

जाय भिरौ, न भिरे बचिहौ, भनि भूषन, भौंसिला भूप सिवा सों,
जाय दरीन दुरौ, दरिऔ तजिकै दरियाव लँघौ लघुता सों।

सीछन काज वजीरन को कढ़ै बोल यों एदिलसाहि सभा सों,
छूटि गयो तौ गयो परनालो सलाह की राह गहौ सरजा सों ॥१७९॥

शब्दार्थ—भिरौ = भिड़ो, लड़ो। दुरौ = छिपो। दरिऔ = दरी को भी, गुफा को भी। लँघौ = उल्लंघन करो, पार करो। लघुता सों = लाघवता से, शीघ्रता से। सीछन काज = शिक्षण के लिए, उपदेशार्थ। सलाह = सुलह, मेल।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि आदिलशाह की सभा से (सभासदों द्वारा) वज़ीरों के प्रति उनके उपदेशार्थ ये वचन (आदेश) निकले कि तुम्हें भौंसिला राजा शिवाजी से जा कर युद्ध करना है तो करो, परन्तु उससे युद्ध करके बचोगे नहीं अर्थात् मारे जाओगे (इस हेतु युद्ध न करो)। इसलिए या तो पहाड़ों की गुफाओं में जा कर छिपो, (परन्तु इससे अच्छा यही है कि) गुफाओं को भी छोड़ कर शीघ्रता से समुद्र पार करो (क्योंकि गुफाओं में भी तुम शिवाजी से छिप कर न बचोगे; अतः सबसे अच्छा यही उपाय है)। यदि परनाले का किला हाथ से छूट गया तो जाने दो, कोई परवाह नहीं, पर अब शिवाजी से सुलह करने का ही मार्ग अपनाओ, उनसे संधि कर लो।

विवरण—यहाँ प्रथम भिरौ, दरीन दुरौ, आदि बातें कह कर पुनः उन्हीं का निषेध किया है और इससे शिवाजी की प्रबलता तथा उत्कर्ष को सूचित किया है। अतः यहाँ प्रथम आक्षेप है।

द्वितीय आक्षेप

जेहि निषेध आभास ही, भनि भूषन सो और।
कहत सकल आच्छेप हैं, जे कविकुल सिरमौर ॥१८०॥

अर्थ—जहाँ निषेध का आभास-मात्र कहा जाय, अर्थात् जहाँ स्पष्टतया निषेध न किया जाय, पर बात इस प्रकार कही गई हो कि उससे निषेध का आभास-मात्र मिलता हो वहाँ श्रेष्ठ कवि दूसरा आक्षेप अलंकार कहते हैं। (इसे निषेधाक्षेप भी कहते हैं)।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते।

भूषन कहैं यों अवरंग सो वज़ीर, जीति
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हज़रत हम मरिबे को नाहिं डरते।
चाकर हैं उज़ुर कियो न जाय, नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥१८१॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि वज़ीर लोग औरंगज़ेब से इस प्रकार विनय करते हैं कि हम पूरब, उत्तर और पश्चिम देश के सब ज़बर्दस्त बादशाहों के किलों को भी छीन लेते और पुर्तगाल विजय करने के हेतु समुद्र को भी पार कर जाते, परन्तु (क्या करें) आप हमें शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिए भेजते हैं (जहा कि बचना कठिन है)। हज़रत! हम मरने से नहीं डरते, और हम तो आपके सेवक हैं, अतः कोई उज्र भी नहीं कर सकते, परन्तु यदि कुछ दिन और जीने पाते तो आपके बहुत से कार्य करते।

विवरण—यहाँ शिवाजी को दमन करने के लिए नियुक्त मुगल सिपहसालार स्पष्टतया शिवाजी पर चढ़ाई करने का निषेध न करता हुआ केवल उसका आभास देता है कि पीछे कुछ दिन बाद शिवाजी पर भेजा जाऊँ तो बीच में बादशाह सलामत का बहुत कुछ कार्य कर दूँगा। इस प्रकार यह निषेध स्पष्ट शब्दों में नहीं है।

विरोध

द्रव्य क्रिया गुन मैं जहाँ, उपजत काज बिरोध।
ताको कहत विरोध हैं, भूषन सुकवि सुबोध ॥१८२॥

अर्थ—जहाँ द्रव्य, क्रिया, गुण आदि के द्वारा उनके संयोग से परस्पर विरोधी कार्य उत्पन्न हो अथवा जहाँ दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ दिखाया जाय वहाँ बुद्धिमान् कवि विरोध अलंकार कहते हैं।

विवरण—विरोध अलङ्कार में विरोधी पदार्थों का वर्णन, वर्णनीय की विशेषता जताने को होता है।

उदाहरहण—मालती सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनबा नृप सारे॥
साहि-तनै तव कोप-कृसानु ते बैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे॥१८३॥

शब्दार्थ—सेत = श्वेत, सफेद। अरुन्न = अरुण; लाल, सूर्य। सपेत = सफेद। कुनबा = कुटुम्ब, कुल। कृसानु = कृशानु, अग्नि। पानिप = अभिमान, पानी। तिन ओंठ गहे = तिनका ओंठों में लेने पर, तिनका ओंठों में लेना दीनता का चिह्न है।

अर्थ—हे वीर-केसरी शिवाजी महाराज! आपके उज्ज्वल यश (यश का रंग सफेद माना गया है) से शत्रुओं के मुख काले पड़ जाते हैं अर्थात् शिवाजी की कीर्त्ति सुन कर शत्रुओं के मुखों पर स्याही छा जाती है। और आपके रक्त प्रताप (रूपी सूर्य) को देख कर समस्त शत्रु राजकुल सफेद पड़ जाते हैं अर्थात् डर से उनके मुखों की लाली उड़ जाती है। हे शिवाजी, आपकी क्रोधाग्नि से समस्त पानिप (अभिमान, ऐंठ) वाले शत्रु गल गये (ठंढे हो गये, निस्तेज हो गये) परन्तु एक बड़ा आश्चर्य यह है कि तिनका ओंठों में धारण कर लेने पर शत्रु आपकी क्रोधाग्नि से जलाये नहीं जाते। (जब शत्रु-गण ओंठों में तृण धारण करके अपनी दीनावस्था का परिचय देते हैं तब शिवाजी का क्रोध पानी हो जाता है)।

विवरण—यहाँ छन्द के प्रथम पाद में 'जस सेत' से 'बैरिन के मुँह कारे' होने का वर्णन है, इसी प्रकार द्वितीय चरण में 'अरुन्न प्रताप' से शत्रु राजाओं के श्वेत होने का वर्णन है, अतः गुण से गुण का विरोध है। अग्नि से वस्तु गलती नहीं पर जल जाती है किन्तु इसमें 'कोप कृसानु' से शत्रुओं के गलने का वर्णन है। इसी प्रकार तिनका आग में बहुत जल्दी जलता है, पर यहाँ वर्णन किया गया है कि 'तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे' यह द्रव्य का क्रिया से विरोध है। अन्य कवियों ने इस अलङ्कार को शुद्ध द्वितीय विषम माना है, 'विरोध' नहीं माना। इसमें कारण कार्य का विरोध होता है जैसा कि ऊपर के छन्द से प्रकट है।

विरोधाभास

जहँ विरोध सो जानिए, साँच विरोध न होय।
तहाँ विरोधाभास कहि, बरनत हैं सब कोय ॥१८४॥

अर्थ—जहाँ वास्तव में विरोध न हो परन्तु विरोध सा जान पड़े वहाँ सब कोई विरोधाभास अलङ्कार कहते हैं।

विवरण—वास्तव में विरोध और विरोधाभास में कोई अन्तर नहीं है। विरोधालङ्कार में भी विरोध वास्तविक नहीं होता, यदि विरोध वास्तविक होता तो उसमें अलङ्कारिता न होती, उलटा दोष होता। महाकवि भूषण, जहाँ स्पष्ट विरोध दिखाई दे वहाँ विरोधालङ्कार मानते हैं, पर जहाँ शब्द-छल से या समझने की भूल से विरोध की केवल ज़रा सी झलक दिखाई दे वहाँ विरोधाभास अलंकार मानते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

दच्छिन-नायक एक तुही भुव-भामिनी को अनुकूल ह्वै भावै।
दीनदयाल न तो सो दुनी पर म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावै।
श्री सिवराज भनै कवि भूषन तेरे सरूप को कोउ न पावै।
सूर सुवंस मैं सूर-सिरोमनि ह्वै करि तू कुल-चन्द कहावै ॥१८५॥

शब्दार्थ—दच्छिन नायक = दक्षिण देश का नायक (राजा) अथवा वह पति जिसके कई स्त्रियाँ हों और जो सबसे समान प्रेम करता हो। भामिनी = स्त्री। अनुकूल = वह पति जो एक-स्त्रीव्रत हो; अथवा मुआफ़िक। भावै = अच्छा लगता है, रुचिकर होता है। दीन = (१) गरीब; (२) मज़हब, धर्म।

अर्थ—हे दक्षिणनायक शिवाजी! पृथ्वी-रूपी स्त्री का एक तुम ही अनुकूल होने के कारण अच्छे लगते हो। तुम्हारे समान पृथ्वी पर दीनों पर कृपा करने वाला अन्य कोई पुरुष नहीं, परन्तु तुम म्लेच्छों के दीन (मज़हब) का नाश कर देते हो। भूषण कवि कहते हैं कि श्रीमान् शिवाजी तुम्हारे रूप को कोई नहीं पा सकता। तुम सूर्यवंश में श्रेष्ठ शूरवीर होने पर भी कुल के चन्द्रमा कहलाते हो।

विवरण—यहाँ छन्द के प्रथम पाद में 'दक्षिण नायक' का 'भुवभामिनी को अनुकूल ह्वै भावै' से विरोध है क्योंकि दक्षिण नायक की अनेक स्त्रियाँ

होती हैं और वह सब स्त्रियों को समान प्यार करने वाला होता है। सो शिवाजी यदि दक्षिण नायक हैं तो वे अनुकूल नायक (एक ही स्त्री से प्रेम करने वाला) कैसे हो सकते हैं ? परन्तु 'दक्षिण-नायक' का अर्थ 'दक्षिण देश का राजा' और 'अनुकूल' का अर्थ 'अनुग्राहक' होने से विरोध का परिहार हो जाता है। इसी भाँति द्वितीय चरण में 'दीनदयालु' और 'दीनहिं मारि मिटावै' में विरोध झलकता है परन्तु दीनदयालु में 'दीन' का अर्थ 'गरीब' तथा दूसरे 'दीन' का अर्थ मज़हब होने से विरोध का परिहार होता है। चतुर्थ चरण में भी इसी भाँति सूर और चन्द्र में विरोध सा लगता है, परन्तु 'कुलचन्द' का अर्थ है कुल को चमकाने वाला।

विभावना

विभावना के कोई छह भेद मानते हैं कोई चार। भूषण ने चार प्रकार की विभावना मानी है।

प्रथम विभावना

भयो काज बिन हेतु ही, बरनत हैं जेहि ठौर।
तहँ विभावना होत है, कवि भूषन सिरमौर ॥१८६॥

अर्थ—जिस स्थान पर बिना कारण के ही कार्य होना वर्णन किया जाय, वहाँ कविशिरोमणि भूषण के मतानुसार विभावना अलंकार होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

वीर बड़े बड़े मीर पठान खरो रजपूतन को गन भारो।
भूषन आय तहाँ सिवराज लयो हरि औरङ्गजेब को गारो ॥
दीन्हों कुज्वाब दिलीपति को अरु कीन्हों वजीरन को मुँह कारो।
नायो न माथहिं दक्खिननाथ न साथ में फौज न हाथ हथ्यारो ॥१८७॥

शब्दार्थ—मीर = सरदार। खरो = खड़ा। गन = गण, समूह। गारो = गर्व, घमंड। कुज्वाब = कुजवाब, मुँहतोड़ उत्तर।

अर्थ—(जिस समय शिवाजी औरंगज़ेब के दरबार में गये थे यह उस समय का वर्णन है)। जहाँ पर बड़े-बड़े शूरवीर पठान सरदार और राजपूतों का भारी समूह खड़ा था, भूषण कहते हैं कि वहाँ आ कर शिवाजी ने औरंगज़ेब का (समस्त) घमंड नष्ट कर दिया। शिवाजी ने औरंगज़ेब को कोरा मुँहतोड़

उत्तर दिया और उसके वज़ीरों के मुखों को काला कर दिया, (आतंक के कारण) उनके मुखों पर स्याही छा गई। यद्यपि दक्षिणेश्वर महाराज शिवाजी के पास न फौज ही थी और न हाथ में कोई हथियार ही था, तो भी उन्होंने औरंगज़ेब को मस्तक नहीं नवाया (प्रणाम नहीं किया, अधीनता स्वीकार नहीं की)।

विवरण—निर्भयता का हेतु फौज का साथ होना तथा शस्त्रादि का हाथ में होना है, परन्तु यहाँ शिवाजी का इनके बिना ही निर्भय एवं सदर्प होना रूप कार्य कथन किया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

साहितनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि सैन ॥१८८॥

शब्दार्थ—टेव = आदत। ऐन = ठीक, निश्चय ही।

अर्थ—शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी की निश्चय ही यह स्वाभाविक आदत है कि वे बिना (किसी पर) प्रसन्न हुए ही (उसकी) दरिद्रता दूर करते हैं, और बिना क्रोधित हुए ही शत्रु-सेना का नाश करते हैं।

विवरण—प्रसन्न होने पर सब कोई पुरस्कार देते हैं, इस तरह प्रसन्नता पुरस्कारादि का कारण कही जा सकती है, पर यहाँ प्रसन्नता रूप कारण के बिना ही शिवाजी का पुरस्कारादि से "दीनों का दारिद्र्य दूर करना" रूप कार्य का वर्णन किया गया है। ऐसे ही क्रोध रूप कारण के बिना "शत्रुओं की सेना का नाश करना" रूप कार्य का वर्णन किया गया है।

द्वितीय और तृतीय विभावना

जहाँ हेतु पूरन नहीं, उपजत है पै काज।
कै अहेतु तें और यों, द्वै विभावना साज ॥१८९॥

अर्थ—जहाँ कारण अपूर्ण होने पर भी कार्य की उत्पत्ति हो अथवा जो वास्तविक कारण न हो उससे भी कार्य की उत्पत्ति हो, इस प्रकार ये दो विभावना और होती हैं।

उदाहरण—(द्वितीय विभावना)—कवित्त मनहरण

दच्छिन को दाबि करि बैठो है सइस्तखान,
पूना माहिं दूना करि जोर करवार को।

हिन्दुवान-खंभ गढ़पति दल-थम्भ भनि,
भूषन भरैया कियो सुजस अपार को ॥
मनसबदार चौकीदारन गँजाय,
महलन मचाय महाभारत के भार को ।
तो सो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सौं,
जीत्यो जंग सरदार सौ हज़ार असवार को ॥१९०॥

शब्दार्थ—दलथंभ = सेना को थामने वाला, सेनापति । भरैया = पालक, रक्षक । गँजाय = नाश करके ।

अर्थ—शाइस्ताखाँ दक्षिण देश को अपने अधिकार में करके और अपनी तलवारों का बल दुगना करके (पहले से दुगुनी सेना बढ़ा कर) पूना में रहने लगा । भूषण कहते हैं कि हिन्दुओं के स्तंभ-स्वरूप, किलों के स्वामी, (बड़ी-बड़ी) सेनाओं का संचालन करने वाले, प्रजा के रक्षक महाराज शिवाजी ने (पूना में टिके हुए उस शाइस्ताखाँ के) मुसाहिब तथा चौकीदारों को नष्ट करके महलों में बड़ा भारी महाभारत मचा (युद्ध) कर पृथ्वी पर अपना अपार यश फैलाया । हे महाराज शिवाजी, भला आपके समान अन्य कौन राजा हो सकता है जिसने केवल दो सौ आदमी साथ ले कर एक लाख सवारों के सरदार को युद्ध में हरा दिया ।

विवरण—यहाँ शिवाजी के पास केवल 'दो सौ आदमी' रूपी कारण की अपूर्णता होने पर भी 'सौ हज़ार (एक लाख) सवारों के सेनापति को युद्ध में जीत लेना' रूप कार्य का होना कथन किया गया है, यही दूसरी विभावना है ।

उदाहरण (तीसरी विभावना)—मनहरण कवित्त

ता दिन अखिल खलभलैं खल खलक मैं'
जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं ।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत हैं ॥
छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देखि,
भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं ।

क्यों न उतपात होहिं बैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं ॥१९१॥

शब्दार्थ—अखिल = समस्त। खलभलैं = खलबला उठते हैं, घबरा जाते हैं। खल = दुष्ट (मुसलमान)। खलक = दुनिया, संसार। करखत हैं = उत्तेजित होते हैं, ताव खाते हैं। अगार = आगार, घर। दारगन = दारागण, स्त्रियाँ। परखत हैं = परीक्षा करती हैं, सँभालती हैं। बार = (१) दिन, (२) बालबच्चे, (३) बाल, केश।

अर्थ—जिस दिन धर्मवीर शिवाजी थोड़े से भी उत्तेजित हो जाते हैं उस दिन समस्त संसार के दुष्टों (मुसलमानों) में बड़ी खलबली मच जाती है। उनके नगाड़ों (की ध्वनि) को सुन कर शत्रु-स्त्रियाँ अपने घरों को छोड़-छोड़ कर ऐसी भागती हैं कि शुभ और अशुभ वार (दिन) का भी विचार नहीं करतीं। उनके बाल-बच्चे छूट गये हैं और उनके बाल खुल गये हैं, और उनके खुले हुए बालों में से गुँथे हुए लाल रत्नों को (जल्दी के कारण) गिरते हुए देख कर भूषण कवि वर्णन करते हुए प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि शत्रु-समूह में क्यों न उपद्रव हो क्योंकि वहाँ काले बादल उमड़-उमड़ कर अंगारे बरसा रहे हैं; अर्थात् शत्रु-स्त्रियों के काले केश-कलापरूपी बादलों से लाल रूपी अंगारे बरस रहे हैं।

विवरण—बादलों से जल बरसता है, अंगारे नहीं। पर यहाँ काले बादलों से लाल अंगारों का झड़ना बताया गया है, इस प्रकार जो जिसका वास्तविक कारण नहीं है उससे उस कार्य की उत्पत्ति दिखाई गई है, अतः यहाँ तीसरी विभावना है।

चतुर्थ विभावना

जहाँ प्रकट भूषन भनत, हेतु काज ते होय।
सो विभावना औरऊ, कहत सयाने लोय ॥१९२॥

अर्थ—जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति हो चतुर लोग उसे एक और विभावना (चतुर्थ) कहते हैं। अर्थात् साधारणतया कारण से कार्य होता है, पर जहाँ कार्य से कारण हो वहाँ भी एक (चौथी) विभावना होती है।

उदाहरण — दोहा

अचरज भूषन मन बढ्यो, श्री सिवराज खुमान।
तब कृपानु-ध्रुव-धूम ते, भयौ प्रताप कृसानु ॥१६३॥

अर्थ—भूषण कहते हैं कि हे आयुष्मान शिवाजी! (लोगों के) मन में यह बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि आपके कृपाण (तलवार) रूपी अचल धुएँ से प्रताप-रूपी कृशानु (अग्नि) उत्पन्न हो गया अर्थात् आपने तलवार के बल से अपना प्रताप फैलाया है। तलवार का रंग नीला माना गया है अतः वह धुएँ के समान है और प्रताप का रंग लाल, अतः वह आग है।

विवरण—अग्नि कारण होता है और धूम कार्य, पर यहाँ धूम (कार्य) से प्रताप रूप कृशानु (कारण) का उत्पन्न होना कहा गया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सिव! तेरो सुनत पुनीत नाम,
धाम-धाम सब ही को पातक कटत हैं।
तेरो जस-काज आज सरजा निहारि कवि—
मन भोज विक्रम कथा तें उचटत है॥
भूषन भनत तेरो दान संकलप जल,
अचरज सकल मही में लपटत है।
और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो,
कर कोकनद नदी-नद प्रगटत हैं॥१६४॥

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! आपके पवित्र नाम को सुन कर घर-घर के सभी लोगों के पाप कट जाते हैं। और हे वीरकेसरी, आजकल आपके यश-कार्य को देख कर कवियों का मन (प्रसिद्ध दानी) राजा भोज और (पराक्रमी) विक्रमादित्य आदि राजाओं की कथा के वर्णन (यशोगान) से हट जाता है, (कवि लोग अब आपका ही यश वर्णन करते हैं, भोज आदि राजाओं का नहीं (क्योंकि आपके कार्य उनसे बढ़ कर हैं)। भूषण कहते हैं, कि आपके दान का संकल्प-जल समस्त पृथ्वी में फैल रहा है और यह बड़ा आश्चर्य है कि और जगह तो नदी-नदों में कमल उत्पन्न होते हैं परन्तु आपके कर-कमल से दान के संकल्प के जल द्वारा नदियाँ उत्पन्न होती हैं। आप

इतना दान देते हैं, कि दान का संकल्प-जल नदियों का रूप धारण कर समस्त पृथ्वी में फैल जाता है।

विवरण—यहाँ भी 'कर कोकनद' रूपी कार्य से 'नदी-नद' रूपी कारण का उत्पन्न होना कहा गया है।

विशेषोक्ति

जहाँ हेतु समरथ भयहु, प्रगट होत नहिं काज।
तहाँ बिसेसोकति कहत, भूषन कवि सिरताज ॥१९५॥

अर्थ—जहाँ कारण के समर्थ होने पर भी कार्य की उत्पत्ति न हो, वहाँ सर्व-श्रेष्ठ कवि भूषण विशेषोक्ति अलंकार कहते हैं। (इसके पै, तो, तथापि आदि चिह्न होते हैं।)

उदाहरण—मालती सवैया

दै दस पाँच रुपैयन को जग कोऊ नरेस उदार कहायो।
कोटिन दान सिवा सरजा के सिपाहिन साहिन को बिचलायो ॥
भूषन कोउ गरीबनसों भिरि भीमहूँ ते बलवन्त गनायो।
दौलति इन्द्र समान बढ़ी पै खुमान के नेक गुमान न आयो ॥१९६॥

शब्दार्थ—बिचलायो = विचलित कर दिया। गुमान = घमंड।

अर्थ—कोई राजा दस पाँच रुपये (पुरस्कार या दान) दे कर ही संसार में दानी कहलाने लगा और कोई (राजा) गरीब लोगों से ही भिड़ कर भीमसेन से भी अधिक बलवान गिना जाने लगा, परन्तु वीर-केसरी शिवाजी के सिपाहियों तक ने करोड़ों का दान दे कर बादशाहों को भी विचलित कर दिया और चिरजीवी शिवाजी की संपत्ति देवराज इन्द्र के समान बढ़ गई, तो भी उन्हें ज़रा सा भी घमंड न हुआ।

विवरण—यहाँ 'इन्द्र के समान धन होना' अभिमान का पूर्ण कारण है फिर भी 'शिवाजी को घमंड' रूप कार्य न होना कहा गया है, अतः विशेषोक्ति है।

असम्भव

अनहूवे की बात कछु, प्रगट भई सी जानि।
तहाँ असंभव बरनिए, सोई नाम बखानि ॥१९७॥

अर्थ—जहाँ कोई अनहोनी बात प्रकट हुई-सी जान पड़े वहाँ असम्भव अलंकार होता है।

विवरण—इसके चिह्न 'कौन जाने' 'कौन जानता था' अथवा ऐसे ही भाव वाले शब्द होते हैं।

उदाहरण—दोहा

औरंग यों पछितात मैं, करतो जतन अनेक।
सिवा लेइगो दुरग सब, को जानै निसि एक ॥१६८॥

अर्थ—औरंगज़ेब इस प्रकार पश्चत्ताप करता हुआ कहता है कि यह कौन जानता था कि शिवाजी एक रात में ही समस्त किलों को विजय कर लेगा। यदि यह जानता होता तो मैं (पहले से ही) अनेकों यत्न करता।

विवरण—यहाँ समस्त किलों का एक रात में जीत लेना रूपी अनहोनी बात का शिवाजी द्वारा सम्भव होना कथन किया गया है, और वह (अनहोनी बात) "को जानै" इस पद से प्रकट होती है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

जसन के रोज यों जलूस गहि बैठो, जोऽब,
इन्द्र आवै सोऊ लागै औरँग की परजा।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी,
तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा॥
ठान्यो न सलाम मान्यो साहि को इलाम,
धूम-धाम के न मान्यो रामसिंहहू को बरजा।
जासों बैर करि भूप बचै न दिगंत ताके,
दंत तोरि तखत तरे ते आयो सरजा ॥१६६॥

शब्दार्थ—जसन = जशन, उत्सव। जलूस गहि = उत्सव में सम्मिलित होने वाले लोगों का समूह लगा कर, दरबार जमा कर। तुजुक = शान अथवा प्रबन्ध। लरजा = काँपा। ठान्यो = किया। भान्यो = खंडित किया, तोड़ा। इलाम = ऐलान, हुक्म। रामसिंह = जयपुर के महाराज जयसिंह जी के पुत्र, जब शिवाजी आगरे गये थे तब ये दिल्लीश्वर की ओर से उनकी अगवानी को आये थे।

अर्थ—(यह उस समय का वर्णन है जब कि शिवाजी मिर्जा राजा जयसिंह की सलाह से औरंगज़ेब से मिलने आये थे) उत्सव के दिन औरंगज़ेब जलूस बना कर अथवा अमीर-उमरावों के साथ अपना दरबार जमा कर ऐसी शान से बैठा था कि इन्द्र भी (यदि अपने देव-समाज के साथ) आवे तो वह भी औरंगज़ेब की प्रजा के समान (साधारण लोगों जैसा) दिखाई दे। भूषण कहते हैं कि वहाँ भी महावीर शिवाजी उसकी शान देख कर थोड़ा भी न डरा, वरन सदर्प रहा। (यहाँ तक कि) उसने औरंगज़ेब को सलाम भी न किया और बड़ी धूम-धाम के साथ बादशाह के हुक्म को भी तोड़ दिया। (बादशाह की आज्ञानुसार भरे दरबार में शिवाजी ने छोटे पदाधिकारियों में खड़ा होना स्वीकार नहीं किया)। और रामसिंह का मना करना अर्थात् रामसिंह का कहा भी न माना। जिस (पराक्रमी) बादशाह से शत्रुता करके दूर-दूर के राजा लोग भी नहीं बच सकते, उसी बादशाह के दाँत तोड़ कर शिवाजी उसके तख्त के नीचे से (पास से) सही सलामत अपने देश को चला आया।

विवरण – यहाँ शिवाजी का सबको जीतने वाले औरंगज़ेब के दाँत तोड़ना और उसके पास से चला आना रूप असंभव कार्य कथित हुआ है।

प्रथम असंगति

हेतु अनत ही होय जहँ, काज अनत ही होय।
ताहि असंगति कहत हैं, भूषन सुमति समोय ॥२००॥

शब्दार्थ—अनत = अन्यत्र, दूसरी जगह। सुमति समोय = सुबुद्धियुक्त, बुद्धिमान।

अर्थ—जहाँ कारण तो किसी दूसरी जगह हो और उसका कार्य अन्यत्र हो वहाँ बुद्धिमान लोग असंगति अलंकार कहते हैं। (इसमें कारण और कार्य एक स्थान पर नहीं होते।)

विवरण—पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार में भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने वाले विरोधी पदार्थों (जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्य) की एक स्थल में स्थिति (संसर्ग) बतलाई जाती है, असंगति में एक जगह रहने वाले कारण कार्य की भिन्न-भिन्न देशों में स्थिति कही जाती है; इस प्रकार दोनों की संगति में विरोध सा जान पड़ता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
　　ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
　　छाती दरकत है खरी अखिल खल की॥
कियो दौरि घाव उमराव अमीरन पै
　　गई कट नाक सिगरेई दिली-दल की।
सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
　　स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी ॥२०१॥

शब्दार्थ—जात नै करि = झुक जाती है। गनीम = शत्रु। दरकत = फटती है। खरी = चोखी, खूब अच्छी। सूरत = गुजरात में एक ऐतिहासिक नगर है, इसे शिवाजी ने सन् १६६४ और १६७० ई० में दो बार लूटा था। उस समय यह बड़ा भारी व्यापारी शहर था।

अर्थ—जब महाराज शिवाजी घोड़े पर सवार होते हैं तो बड़े-बड़े बलवान शत्रुओं की गरदनें झुक जाती हैं (जब शिवाजी चढ़ाई करने के लिए चलते हैं तब शत्रु गरदन झुका कर अपनी चिंता प्रकट करते हैं अथवा अधीनता स्वीकार कर अपना सिर झुका लेते हैं) और जब उनकी सेना पृथ्वी पर चलती है तो सब दुष्टों (यवनों) की छातियाँ फटने लगती हैं (वे घबराते हैं कि अब क्या करें? शिवाजी की सेना हमें मार डालेगी।) शिवाजी ने दौड़ कर घाव (चोट) तो अमीर-उमरावों पर किया पर इससे सारी दिल्ली-सेना की नाक कट गई (इज्ज़त मिट्टी में मिल गई)। शिवाजी ने सूरत नगर को जला कर बादशाह औरंगज़ेब के हृदय में दाह उत्पन्न कर दिया और उसकी कालिमा समस्त बादशाहत के मुख पर प्रकट हो गई (शिवाजी का सूरत जलाने का साहस देख कर औरंगज़ेब गुस्से में जल भुन उठा और दिल्ली की सेना उसे बचा न सकी इसी कारण सारी बादशाहत के ऊपर कलंक का टीका लग गया)।

विवरण—यहाँ प्रथम पाद में शिवाजी का घोड़े पर चढ़ना रूपी कारण अन्यत्र कथन किया गया है और शत्रुओं की गरदन झुकना रूपी कार्य अन्यत्र हुआ है। द्वितीय पाद में शिवाजी की सेना का चलना रूप कारण अन्यत्र है

और शत्रुओं की छाती फटना रूपी कार्य का कथन अन्यत्र किया है। इसी भाँति चोट अमीर-उमरावों पर की गई है, पर इनका फल अन्यत्र है और शिवाजी ने जलाया सूरत शहर को पर उससे जलन हुई बादशाह के दिल में तथा उसके जलने से कालिमा सारी बादशाहत के मुँह पर पुत गई। इस प्रकार कारण अन्यत्र है और कार्य अन्यत्र, अतः यहाँ असंगति अलंकार है।

द्वितीय असंगति

आन ठौर करनीय सो, करै और ही ठौर।
ताहि असंगति और कवि, भूषन कहत सगौर ॥२०२॥

अर्थ—जो कार्य करना चाहिये कहीं और, तथा किया जाय कहीं और, अर्थात् जिस स्थान पर करना चाहिए वहाँ न करके दूसरे स्थान पर किया जाय तो द्वितीय असंगति अलङ्कार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

भूपति सिवाजी तेरी धाक सों सिपाहिन के,
राजा पातसाहिन के मन ते अहं गली।
भौंसिला अभंग तू तौ जुरतो जहाँई जंग,
तेरी एक फते होत मानो सदा संग ली।
साहि के सपूत पुहुमी के पुरुहूत कवि,
भूषन भनत तेरी खरगऊ दंगली।
सत्रुन की सुकुमारी थहरानी सुन्दरी औ,
सत्रु के अगारन मैं राखे जन्तु जंगली ॥२०३॥

शब्दार्थ—अहं = अहंकार। गली = गला, नष्ट हो गया। असंग = कभी न हटने वाला, सदा विजयी। पुरहूत = इन्द्र। खरगऊ = तलवार भी। दंगली = (युद्ध) में ठहरने वाली, युद्ध करनेवाली, प्रबल। थहरानी = काँप उठीं।

अर्थ—महाराज शिवाजी! आपके आतंक से (शत्रु) सिपाहियों, राजाओं और बादशाहों के मन का अहंकार नष्ट हो गया। अखंडनीय (सदा विजयी) शिवाजी, आप जहाँ कहीं युद्ध करते हैं वहाँ आपकी केवल विजय ही होती है इससे ऐसा मालूम होता है मानो उसे आपने सदा साथ ही ले रखा है। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के सुपुत्र और पृथ्वी के इन्द्र श्री शिवाजी!

आपकी तलवार भी बड़ा प्रबल युद्ध करने वाली है, (उससे) बिचारी सुन्दरी कोमलांगी शत्रु-स्त्रियाँ काँप उठी हैं, और (उसने) शत्रुओं के घरों में जंगली जानवरों का निवास करवा दिया है अर्थात् शत्रु लोग शिवाजी की तलवार के भय से अपने घर छोड़ गये और वहाँ जंगली जानवर रहने लगे।

विवरण—यहाँ कवित्त के अंतिम चरण में जंगली जंतुओं का शत्रुओं के घरों में निवास करना वर्णन किया है जो उनके योग्य स्थान नहीं है; वास्तव में उनका निवास-स्थान जंगल है। अतः यहाँ दूसरी असंगति है।

तृतीय असंगति

करन लगै औरै कछू, करै औरई काज।
तहाँ असंगति होत है, कहि भूषन कविराज ॥२०४॥

अर्थ—जहाँ करना तो कोई और काम शुरू करे, और करते-करते कर डाले कोई दूसरा (उसके विरुद्ध) काम, वहाँ भी कविराज (तृतीय) असंगति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सरजा सिव के गुन नैकहु भाषि सक्यो न प्रवीनो।
उद्यत होत कछू करिबे को, करैं कछू वीर महा-रस भीनो ॥
ह्याँते गयो चकतै सुख देन को गोसलखाने गयो दुख दीनो।
जाय दिली दरगाह सुसाहि को भूषन बैरि बनाय ही लीनो ॥२०५॥

शब्दार्थ—रसभीनो = रस में लिप्त, रस में पूरित। दरगाह = तीर्थ-स्थान। दिल्ली दरगाह = दिल्ली रूपी तीर्थ-स्थान, दिल्ली-दरबार।

अर्थ—बड़े-बड़े चतुर पुरुष भी शाहजी के पुत्र शिवाजी का थोड़ा सा यश भी वर्णन नहीं कर सके (क्योंकि) वीर शिवाजी करने को तो कुछ और ही उद्यत होते हैं पर वीर रस में पगे होने के कारण कर कुछ और ही बैठते हैं। यहाँ से (दक्षिण से) तो वे चगताई प्रदेश के तुर्क तैमूर के वंशज औरंगज़ेब को प्रसन्न करने के लिए गये थे परन्तु वहाँ दिल्ली में जा कर उन्होंने उसे गुसलखाने में जा कर उलटा दुख दिया। (इस तरह) भूषण कवि कहते हैं कि दिल्ली-दरबार में जा कर बादशाह को (प्रसन्न करना तो दूर रहा) उलटा उन्होंने उसे शत्रु ही बना लिया।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब को प्रसन्न करने के हेतु दिल्ली जा कर शिवाजी ने उलटा उसे गुसलखाने में जा कर कष्ट दिया, यही तृतीय असंगति है—गये थे मित्र बनाने, बना लिया शत्रु।

विषम

कहाँ बात यह कहँ वहै, यों जहँ करत बखान।
तहाँ विषम भूषन कहत, भूषन सुकवि सुजान ॥२०६॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि "कहाँ यह और कहाँ वह" इस प्रकार का जहाँ वर्णन हो वहाँ श्रेष्ठ कवि विषम अलंकार कहते हैं।

विवरण—इसमें अनमेल वस्तुओं का सम्बन्ध होता है। अन्य साहित्य-शास्त्रियों ने विषम अलंकार के तीन या चार भेद कहे हैं, परन्तु भूषण ने 'विषम' का केवल एक भेद माना है। विषम के दूसरे भेद को (जिसमें कारण और कार्य के गुण या क्रियाओं की विषमता का वर्णन हो) उन्होंने विरोध अलंकार माना है। विषम का तीसरा भेद (जिसमें क्रिया के कर्त्ता को केवल अभीष्ट फल ही न मिले अपितु अनिष्ट की प्राप्ति हो) महाकवि भूषण ने नहीं लिखा।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

जावलि वार सिंगारपुरी औ जवारि को राम के नैरि को गाजी।
भूषन भौंसिला भूपति ते सब दूर किये करि कीरति ताजी॥
बैर कियो सिवजी सों खवासखाँ, डौंडिये सैन बिजैपुर बाजी।
बापुरो एदिलसाहि कहाँ, कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी ॥२०७॥

शब्दार्थ—जावलि = देखिए छ० ६३। बार = पार, जावली के पास एक ग्राम, इसी जगह अफ़जलखाँ ने अपना पड़ाव डाला था। सिंगारपुरी = यह नीरा नदी के दक्षिण में और सितारा से लगभग पच्चीस कोस पूर्व है। यहाँ का राजा सूर्यराव शिवाजी से सदैव दुरंगी चाल चला करता था। शिवाजी ने उसे (सन् १६६४ ई० में) अपने अधिकार में कर लिया। जवारि = (देखो छंद १७३)। राम के नैरि = रामनगर (देखो छंद १७३)। खवासखाँ = यह बीजापुर के प्रधान मन्त्री खान मुहम्मद का लड़का था और पीछे स्वयं भी मंत्री हुआ। जब बादशाह अली आदिलशाह (एदिलसाहि) मरने लगा तब उसने खवासखाँ को अपने पुत्र सिकन्दर का संरक्षक बनाया। संरक्षक बनते ही

इसने शिवाजी को चौथ देना बंद कर दिया। इसपर शिवाजी ने बीजापुर से युद्ध प्रारंभ कर दिया। दामनगीर = पल्ला कपड़ने वाला, पीछे पड़ने वाला।

अर्थ—जावली, बार, सिंगापुर तथा रामनगर और जवारि (जौहर) को विजय करने वाले हे भौंसिला राजा शिवाजी ! आपने उन प्रदेशों के समस्त राजाओं को (गद्दी से) दूर कर दिया और इस प्रकार अपनी कीर्ति को ताजा कर दिया। (ऐसे वीर) शिवाजी से बीजापुर के संरक्षक और प्रधान मंत्री खवासखाँ ने वैर किया, फलतः बीजापुर में शिवाजी की सेना की डौंडी पिट गई, शिवाजी की सेना ने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी। भला कहाँ बिचारा आदिलशाह और कहाँ दिल्ली के बादशाह से भिड़ने वाले महाराज शिवाजी ! (अर्थात् शिवाजी के मुकाबिले में आदिलशाह बेचारे की क्या गिनती, क्योंकि वे तो शाहंशाह औरंगज़ेब के मुकाबिले में लड़ने वाले हैं।)

विवरण—यहाँ आदिलशाह और शिवाजी का अयोग्य सम्बन्ध 'कहाँ' 'कहाँ' इन शब्दों द्वारा कहा है। दोनों में महदन्तर है और वह 'कहाँ' से स्पष्ट है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं सब देस बिगूँचे।
बैरिन के भगे बालक वृन्द कहै कवि भूषन दूरि पहूँचे॥
नाँघत-नाँघत घोर घने बन हारि परे यों कटे मनो कूँचे।
राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ बिकरार पहार वे ऊँचे॥२०८॥

शब्दार्थ—बिगूँचे = धर दबाये, मथ डाले, बरबाद कर दिये। कूँचे = मोटी नसें जो एड़ी से ऊपर या टखने के नीचे होती हैं।

अर्थ—वीर-केसरी शिवाजी ने परनाले के किले को ले कर (विजय कर) कर्णाटक तक समस्त देशों (कर्णाटक के हुबली आदि कई धनी शहरों) को मथ डाला। भूषण कवि कहते हैं कि शत्रुओं के बाल-बच्चे (भय के कारण) भाग कर बड़ी दूर चले गये और बड़े-बड़े घोर वनों को फाँदते-फाँदते हार कर (शिथिल हो कर) ऐसे गिर पड़े मानो उनके पैरों की नसें ही कट गई हों। कहाँ वे बेचारे सुकुमार राजकुमार और कहाँ वे बड़े ऊँचे-ऊँचे विकराल पहाड़ जिनपर शिवाजी के भय के कारण वे चढ़े थे।

विवरण—'राजकुमार कहाँ सुकुमार' और 'कहाँ बिकरार पहाड़ वे ऊँचे' यह अयोग्य सम्बन्ध कथित होने से विषम अलंकार है।

सम

जहाँ दुहूँ अनरूप को करिये उचित बखान।
सम भूषन तासों कहत, भूषन सकल सुजान॥२०९॥

अर्थ—जहाँ दो समान वस्तुओं का उचित सम्बन्ध ठीक-ठीक वर्णन किया जाय वहाँ चतुर लोग सम अलंकार कहते हैं। (यह विषमालंकार का ठीक उलटा है)।

उदाहरण—मालती सवैया

पंच हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कछु भेद न पाया।
भूषन यों कहि औरंगज़ेब उजीरन सों बेहिसाब रिसाया॥
कम्मर की न कटारी दई इसलाम नै गोसलखाना बचाया।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया॥२१०॥

शब्दार्थ—पंच हजारिन =पंचहजारी, पाँच हज़ार सेना के नायक पंचहजारी कहलाते थे। शिवाजी को, जब वे आगरा में औरंगज़ेब से मिलने गये थे, तब इन्हीं छोटे पदाधिकारियों में खड़ा किया गया था, इसी कारण वे नाराज़ हो गये।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब यह कह कर, कि मुझे इसका कुछ भेद नहीं जान पड़ा कि तुमने शिवाजी को पंचहज़ारी मनसबदारों में क्यों खड़ा किया, वज़ीरों से बहुत नाराज़ हुआ। आज इस्लाम को (इस्लाम के सेवक को) गुसलखाने ने बचा लिया—अर्थात् इस्लाम का सेवक गुसलखाने में छिप कर बच गया। यही भला था कि उसकी (शिवाजी की कमर की कटारी उसे नहीं दी गई थी (शाही कायदे के अनुसार वह रखवा ली गई थी) और उसके हाथ कोई हथियार नहीं आया, अन्यथा वह बड़ा अनर्थ करता था।

विवरण—यह उदाहरण कुछ स्पष्ट नहीं है। यही कहा जा सकता है कि यहाँ हथियार हाथ न आना और अनर्थ न होना एक दूसरे के अनुरूप हैं, और अच्छा हुआ यह कह कर उचित वर्णन किया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

कछु न भयो केतो गयो, हार्‌यो सकल सिपाह।
भली करै सिवराज सों, औरँग करै सलाह ॥२११॥

अर्थ—[वज़ीर आपस में बातें कर रहे हैं कि] कितने ही शिवाजी को जीतने गये, पर कुछ न हुआ; सारे ही सिपाही हार गये। यदि शाहनशाह औरंगजेब शिवाजी से अब भी मेल कर लें तो अच्छा हो।

विवरण—यहाँ औरंगजेब का बार-बार हारना और संधि कर लेना इन दोनों अनुरूप बातों का वर्णन है।

विचित्र

जहाँ करत हैं जतन फल, चित्त चाहि विपरीत।
भूषण ताहि विचित्र कहि, बरनत सुकवि विनीत ॥२१२॥

अर्थ—जहाँ वांछित फल की प्राप्ति के लिए उलटा प्रयत्न किया जाय वहाँ श्रेष्ठ विनयशील कवि विचित्र अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

तैं जयसिंहहिं गढ़ दिये, सिव सरजा जस हेत।
लीन्हे कैयो बरस मैं, बार न लागी देत ॥२१३॥

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी! तुमने अपनी कीर्त्ति बढ़ाने के लिए मिर्जा राजा जयसिंह को (संधि करते समय) समस्त किले दे दिये। उनको विजय करने में तुम्हें कई वर्ष लगे थे, पर देने में तुम्हें कुछ भी देर न लगी, क्योंकि तुम इतने उदार हो, कि तुम मित्रता चाहने वाले को सब कुछ दे सकते हो। औरंगजेब ने तुमसे मित्रता करनी चाही, तुमने उसे किले दे दिये, इससे तुम्हारा यश बढ़ा।

विवरण—यहाँ कीर्ति बढ़ाने के लिए किलों का देना कथन किया गया है जो कि बिलकुल उलटी बात है, क्योंकि कीर्ति किलों के जीत लेने पर बढ़ती है न कि किलों को देने से। इसी प्रकार इच्छित फल से विपरीत क्रिया का करना विचित्र अलंकार में कथित होता है। इस अलंकार के बल से भूषण ने अपने नायक शिवाजी का दबना भी उनके लिए यशप्रद बतलाया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

बेदर कल्यान दै परेभ्का आदि कोट साहि,
एदिल गँवाय है नवाय निज सीस को।
भूषन भनत भागनगरी कुतुबसाई,
दै करि गँवायो रामगिरि से गिरीस को॥
भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल दिन,
दैहू न लगाए गढ़ लेत पँचतीस को।
सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीबे,
सौ गुनी बड़ाई गढ़ दीन्हें हैं दिलीस को॥२१४॥

शब्दार्थ—बेदर = वर्त्तमान हैदराबाद शहर से ७८ मील उत्तर-पश्चिम एक कस्बा है। यह बहमनी बंशज बादशाहों की राजधानी रही। उसके बाद बीदरशाही राज्य की राजधानी रही। शिवाजी की सहायता से औरंगजेब ने बीजापुर वालों से यह किला जीत लिया था। सन् १६५७ में इसे शिवाजी ने ले लिया। कल्याण = इस नाम का सूबा कोंकण प्रदेश के उत्तरी भाग में था। पहले यह अहमदनगर के निज़ामशाही बादशाहों का था, पर सन् १६३६ ई० में बीजापुर के अधिकार में आया और सन् १६५७ ई० में शिवाजी ने इसे आदिलशाह से छीन लिया। परेभ्का = इस नाम का कोई किला या स्थान इतिहास में नहीं मिलता, हाँ एक किला परदे नाम का था जिसका अपपाठ परेभ्का जान पड़ता है। यह भी पहले अहमदनगर का था और फिर आदिलशाह के कब्जे में आ गया, जिससे शिवाजी ने छीन लिया। भागनगर = दे० छन्द ११६, (भागनेर)। रामगिरि = पैनगंगा तथा गोदावरी के बीच गोलकुंडा रियासत में रामगिरि नामक पर्वत।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शाहजी के पुत्र गढ़पति महाराज शिवाजी, अली आदिलशाह ने तुम्हें बेदर तथा कल्यान के किले दे कर सिर झुका कर अपने परेभ्का आदि किले भी गँवा दिये और कुतुबशाह भी तुम्हें भागनगर दे कर रामनगर जैसे श्रेष्ठ पर्वत को खो बैठा। तुमने (इस भाँति) पैंतीस किले जीतने में दो दिन भी नहीं लगाये थे कि वही (किले) मिर्जा राजा जयसिंह से तुमने सौ गुना यश लेने के लिए औरङ्गज़ेब बादशाह को दे दिये।

विवरण—यहाँ कीर्ति बढ़ाने रूप फल की इच्छा के लिए किलों का देना विपरीत (उलटा) प्रयत्न किया गया है।

प्रहर्षण

जहँ मन-वांछित अरथ ते, प्रापति कछु अधिकाय।
तहाँ प्रहरषन कहत हैं, भूषन जे कविराय ॥२१५॥

अर्थ—जहाँ मन-वांछित (मनचाहे) अर्थ से भी अधिक अर्थ की प्राप्ति हो वहाँ श्रेष्ठ कवि प्रहर्षण अलंकार कहते हैं।

विवरण—इसमें इच्छा की हुई वस्तु की प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए उस इच्छा से भी अधिक लाभ होता है।

उदाहरण—मनहरण-कवित्त

साहितनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी बितान छिति छोर छाइयतु है।
भूषन भनत ऐसो भूमिपति भौंसिला है,
जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है।
महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यों गनाइयतु है।
रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौंस किये हाथी पाइयतु है ॥२१६॥

शब्दार्थ—बितान = वितान, चँदोआ। छिति = क्षिति, पृथ्वी। छाइयतु है = छा जाता है। हेम = सोना।

अर्थ—शाहजी के पुत्र वीरकेसरी शिवाजी की कीर्ति से चाँदनी का चँदोआ पृथ्वी के किनारों तक छा रहा है (अर्थात् शिवाजी की चाँदनी सी शुभ्र कीर्ति पृथ्वी पर दिगंत तक छा रही है। भूषण कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी ऐसे हैं कि उनके घर का द्वार सदा भिक्षुकों से शोभित रहता है या भिक्षुकों से चाहा जाता है। इस पृथ्वी पर चिरजीवी शिवाजी ऐसे बड़े दानी हैं कि उनके दान का परिमाण (अंदाज़ा) इस प्रकार लगाया जाता है अथवा उनके दान की महिमा इस प्रकार गाई जाती है कि उनसे चाँदी लेने की इच्छा करने पर सुवर्ण मिलता है और घोड़े लेने की इच्छा करने पर हाथी प्राप्त होते हैं।

विवरण—यहाँ वांछित चाँदी और घोड़े की याचना करने पर क्रमशः सुवर्ण और हाथी का मिलना रूपी अधिक लाभ हुआ है।

विषादन

जहँ चित चाहे काज ते, उपजत काज बिरुद्ध।
ताहि विषादन कहत हैं, भूषन बुद्धि-विसुद्ध ॥२१७॥

अर्थ—जहाँ मन चाहे कार्य के विरुद्ध कार्य उत्पन्न हो वहाँ निर्मल बुद्धि वाले (कवि) विषादन अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ इच्छा किसी बात की की जाय और फल उसके विरुद्ध हो, वहाँ विषादन अलंकार होता है। विषादन प्रहर्षण का ठीक उलटा है।

उदाहरण—मालती सवैया

दारहिं दारि मुरादहिं मारि कै संगर साह सुजै बिचलायो।
कै कर मैं सब दिल्ली की दौलति औरहु देस घने अपनायो॥
बैर कियो सरजा सिव सों यह नौरँग के, न भयो मन भायो।
फौज पठाई हुती गढ़ लेन को गाँठिहुँ के गढ़ कोट गँवायो ॥२१८॥

शब्दार्थ—दारहि = दारा को, दाराशिकोह औरंगज़ेब का सबसे बड़ा भाई था। दारि = दल कर, पीस कर। मुरादहिं = मुरादबख्श औरंगज़ेब का छोटा भाई था। सन् १६५७ में बादशाह शाहजहाँ अचानक बीमार पड़ा। इस समाचार को सुनते ही उसके लड़कों—दारा, शुजा, औरंगज़ेब और मुराद—में राज्य पाने के लिए प्रबल युद्ध हुआ। सबसे बड़ा लड़का दारा राजधानी में रह कर पिता के साथ राजकाज करता था। शाहशुजा बंगाल का सूबेदार था, औरंगज़ेब दक्षिण का सूबेदार था, मुराद गुजरात का। औरंगज़ेब ने मुराद को यह आश्वासन दे कर कि राज्य मिलने पर तुम्हें दिल्ली के तख्त पर बिठाऊँगा, अपने साथ मिला लिया। औरंगज़ेब और मुराद की सम्मिलित सेना ने शाही फौज के ऊपर धावा बोल दिया। धौलपुर के समीप दोनों दलों में युद्ध हुआ। दारा हार गया और बंदी बना लिया गया। उसे दिल्ली की गलियों में घुमा कर अपमानित किया गया। अंत में औरंगज़ेब के दासों द्वारा कतल कर दिया गया। दारा को हराने के बाद औरंगज़ेब ने धोखा दे कर मुराद का भी ग्वालियर के किले में वध करा दिया। शाहशुजा

को हरा कर बंगाल की तरफ भगा दिया, जिसे पीछे अराकान की तरफ भाग कर शरण लेनी पड़ी। इसी ऐतिहासिक तथ्य पर भूषण ने यह पद लिखा है। बिचलायो = बिचलित किया, हरा दिया। कै = करके, ले के। नौरँग = औरंगज़ेब, (भूषण औरंगज़ेब को 'नौरंग' कहा करते थे) हुती = थी। गाँठिहु के = गाँठ के भी, पास के भी, अपने भी।

अर्थ—औरंगज़ेब ने दाराशिकोह का दलन कर मुरादाबख्श को मार कर शाहशुजा को युद्ध में भगा दिया। इस प्रकार दिल्ली की समस्त दौलत अपने हाथ में करके अन्य बहुत से देशों को भी अपने राज्य में मिला लिया (अधिकार में कर लिया)। तब उसने शिवाजी से शत्रुता की, पर वहाँ उसकी इच्छित बात न हुई, उसकी मनकामना पूर्ण न हुई। उसने दक्षिण देश के किले लेने के लिए अपनी सेना भेजी परन्तु उलटे वह अपनी गाँठ के किले भी गँवा बैठा।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब दक्षिण देश के 'गढ़' विजय करना चाहता था, वह न हो कर 'गाँठ के गढ़-कोट गँवाना' रूप विपरीत कार्य हुआ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

महाराज शिवराज तव, बैरी तजि रस रुद्र।
बचिबे को सागर तिरे, बूड़े सोक समुद्र ॥२१९॥

शब्दार्थ—रस रुद्र = रौद्र रस, यह नौ रसों में से एक रस है, यहाँ वीर भाव तथा युद्ध के बाने से तात्पर्य है।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी! आपके शत्रु युद्ध का बाना (या वीर-भाव) त्याग कर अपनी रक्षा के लिए समुद्र पार करने लगे (परन्तु तो भी वे) शोक-सागर में डूब गये (वे बड़ी चिन्ता में पड़ गये कि देश, धन, जन, गँवा-कर क्या करें? किधर जायँ?)

विवरण—यहाँ शिवाजी के शत्रुओं को समुद्र पार करने से 'रक्षा' वांछित थी; परन्तु वह न हो कर शोक-सागर में डूबना रूप विपरीत कार्य हुआ।

अधिक

जहाँ बड़े आधार तें, बरनत बढ़ि आधेय।
ताहि अधिक भूषन कहत, जान सुग्रन्थ प्रमेय ॥२२०॥

शब्दार्थ—आधार=जो दूसरी वस्तु को अपने में रक्खे। आधेय=जो वस्तु दूसरी वस्तु में रक्खी जाय। प्रमेय=जो प्रमाण का विषय हो सके, प्रामाणिक।

अर्थ—जहाँ बड़े आधार से भी आधेय को बढ़ा कर वर्णन किया जाय वहाँ प्रामाणिक श्रेष्ठ ग्रन्थों के ज्ञाता अधिकालंकार कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा तव हाथ को, नहिं बखान करि जात।
जाको बासी सुजस सब त्रिभुवन मैं न समात ॥२२१॥

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी! आपके उस हाथ का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिसमें रहने वाला यश (हाथ से ही यश पैदा होता है, दान दे कर, अथवा शस्त्र-ग्रहण द्वारा देश विजय कर) समस्त त्रैलोक्य में भी नहीं समाता।

विवरण—यहाँ शिवाजी का हाथ आधार है और त्रिभुवन में न समाने वाला यश आधेय है। हाथ त्रिभुवन का एक अंश ही है परन्तु उसमें रहने वाला यश त्रिभुवन से भी बड़ा है। अतः अधिक अलङ्कार है। अथवा यदि त्रिभुवन को आधार मानें तो भी आधेय यश उसमें न समाने के कारण उससे भी बड़ा है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्बय से पील देत नाहीं अकुलात हैं।
भूषन भनत महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है।
सरजा सवाई कासों करि कविताई तव,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खंड महि-
मंडल की कहा ब्रहमंड ना समात है ॥२२२॥

शब्दार्थ—सलील=सलिल, जल, मदजल। सलील सील=जल वाले, अथवा मदजल से पूर्ण। डील=शरीर। पब्बय=पर्वत। पील=फील, हाथी। टंक=चार माशे का तोल। सातों दीप=पुराणानुसार पृथ्वी के साथ बड़े और

मुख्य विभाग—जंबू, प्लक्ष, कुश, क्रौंच, शाक, शाल्मलि और पुष्कर। नवखंड =पृथ्वी के नौ भाग—भरतखंड, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हिरण्य, रम्य, हरि और कुरु। ब्रह्मंड=ब्रह्मांड, चौदहों भुवनों का मंडल, समस्त संसार।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी महाराज जल से पूर्ण नील मेघ के समान रंगवाले अथवा स्वाभाविक मदजल से पूर्ण मदमस्त तथा बादलों के समान नीले रंगवाले और पर्वत के समान (बड़े-बड़े) शरीर वाले हाथी (दान) देने में नहीं अकुलाते (अर्थात् शिवाजी बड़े दानी हैं ; वे बड़े-बड़े हाथी दान करते हुए भी नहीं हिचकते, सहर्ष दे डालते हैं) और वे इतना बड़ा सुवर्ण का ढेर देते हैं जो कि सुमेरु पर्वत के समान दिखाई पड़ता है। हे सरजा शिवाजी ! कौन कवि कविता करके आपके उस हाथ की बड़ाई का वर्णन कर सकता है (अर्थात् सब कवि आपके उस हाथ के यश के वर्णन में असमर्थ हैं) जिसका टंक भर यश पृथिवी के नवखंड और सातों द्वीपों की क्या कहें ब्रह्मांड (चौदह भुवनों) में भी नहीं समाता।

विवरण—यहाँ आधार ब्रह्मांड एवं पृथ्वी की अपेक्षा आधेय "टंक भर यश" वस्तुतः न्यून होने पर भी 'ना समात' इस पद से बड़ा कथन किया गया है।

अन्योन्य

अन्योन्या उपकार जहँ, यह बरनन ठहराय।
ताहि अन्योन्या कहत हैं, अलंकार कविराय ॥२२३॥

अर्थ—जहाँ आपस में एक दूसरे का उपकार करना (अथवा एक दूसरे से छविमान होना) कथित हो वहाँ श्रेष्ठ कवि अन्योन्य अलंकार कहते हैं।

विवरण—इसमें एक ही क्रिया द्वारा दो वस्तुओं का परस्पर उपकार करना कहा जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

तो कर सों छिति छाजत दान है दानहु सों अति तो कर छाजै।
तैंही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै॥
भूषन तोहि सों राज बिराजत राज सों तू सिवराज बिराजै।
तो बल सों गढ़ कोट गजैं अरु तू गढ़ कोटन के बल गाजै ॥२२४॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि तुम्हारे (शिवाजी के) हाथ से ही पृथ्वी पर दान शोभा पाता है और दान से ही तुम्हारा हाथ अत्यधिक शोभित होता है। गुणवान पुरुषों की प्रशंसा तुम्हें ही फबती है अथवा तू ही गुणियों की बड़ाई करता है, और तुम्हारी ही बड़ाई करने से सब गुणी शोभा पाते हैं। तुमसे ही राज्य की शोभा है और राज्य होने से ही तुम्हारी शोभा है। तुम्हारे बल से (सहायता पा कर) समस्त किले गर्जन करते हैं (अर्थात् तुम्हारे बल से सबल एवं दृढ़ होने से वे किसी शत्रु की परवाह नहीं करते) और तुम भी किलों का बल पा कर गर्जन करते हो !

विवरण—यहाँ कर से दान का और दान से कर का, गुणियों की बड़ाई से शिवाजी का और शिवाजी की कीर्ति से गुणियों का, राज्य से शिवाजी का और शिवाजी से राज्य का और अन्तिम चरण में शिवाजी से गढ़ों का और गढ़ों से शिवाजी का आपस में एक दूसरे का शोभित होना रूप उपकार कथित हुआ है।

विशेष

बरनत हैं आधेय को, जहँ बिनही आधार।
ताहि विशेष बखानहीं, भूषन कवि सरदार ॥२२५॥

अर्थ—जहाँ किसी आधार के बिना ही आधेय (की स्थिति) को कहा जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि विशेष अलंकार कहते हैं।

विवरण—साधारणतया यह कहा जाता है कि जहाँ किसी विशेष (आश्चर्यात्मक) अर्थ का वर्णन हो वहाँ विशेष अलंकार होता है। कइयों ने इसके तीन भेद कहे हैं। भूषण ने दो भेदों के उदाहरण दिये हैं, एक जहाँ बिना आधार के ही आधेय की स्थिति कही जाय, दूसरा जहाँ एक वस्तु की स्थिति का एक समय में अनेक स्थानों में वर्णन हो।

उदाहरण (प्रथम प्रकार का विशेष)—दोहा

सिव सरजा सों जंग जुरि, चंदावत रजवंत।
राव अमर गो अमरपुर, समर रही रज तंत ॥२२६॥

शब्दार्थ—जंग जुरि = युद्ध करके। रजवंत = राज्यश्री वाले, वीरता वाले। रज तंत = रज + तत्व, रजोगुण का सार, वीरता।

अर्थ—महाराज शिवाजी से युद्ध करके शूरवीर राव अमरसिंह चंदावत

अमरपुर चला गया (स्वर्गवासी हो गया) परन्तु उसकी वीरता युद्धस्थल में रह गई।

विवरण—यहाँ राव अमरसिंह चंदावत रूप आधार के बिना ही रजतंत (वीरता) रूप आधेय की स्थिति युद्धस्थल में कथन की गई है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिवाजी खुमान सलहेरि मैं दिलीस-दल,
कीन्हो कतलाम करबाल गहि कर मैं।
सुभट सराहे चंदावत कछवाहे,
मुगलौ पठान ढाहे फरकत परे फर मैं।
भूषन भनत भौंसिला के भट उदभट,
जीति घर आये धाक फैली घर घर मैं।
मारु के करैया अरि अमरपुरै गे तऊ,
अजौं मारु-मारु सोर होत है समर मैं ॥२२७॥

शब्दार्थ—सराहे = प्रशंसित। ढाहे = गिरा दिये। फर = बिछावन (यहाँ युद्धस्थल)। मारु के करैया = मारो-मारो शब्द या मार-काट करने वाले, वीर।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि खुमान राजा शिवाजी ने हाथ में तलवार ले कर सलहेरि के मैदान में दिल्ली के बादशाह की सेना में कत्लेआम मचा दिया। बड़े-बड़े प्रशंसनीय वीर चंदावत तथा कछवाहे राजपूत और मुगल तथा पठान उन्होंने मार कर गिरा दिये। वे युद्धस्थल में पड़े-पड़े फड़कने लगे। भौंसिला राजा शिवाजी के प्रचंड वीर विजय प्राप्त करके अपने घरों को आ गये और (शत्रुओं के घर-घर में उनका रोब छा गया। यद्यपि मार-काट करने वाले शत्रु वीर लड़ कर स्वर्ग चले चये परन्तु उनका 'मारो, मारो' का शोर अब भी रणस्थल में गूँज रहा है।

विवरण—यहाँ 'मारु कै करैया' रूप आधार के बिना ही 'मारु मारु शोर' रूप आधेय की स्थिति कथन की गई है।

दूसरे प्रकार के विशेष का उदाहरण—मनहरण कवित्त

कोट गढ़ दै कै माल मुलुक मैं बीजापुरी,
गोलकुंडा वारो पीछे ही को सरकतु है।

भूषन भनत भौंसिला भुवाल भुजबल,
रेवा ही के पार अवरंग हरकतु है।
पेसकसैं भेजत इरान फिरगान पति,
उनहू से उर याकी धाक धरकतु है।
साहि-तनै सिवाजी खुमान या जहान पर,
कौन पातसाह के न हिए खरकतु है॥२२८॥

शब्दार्थ—सरकतु = सरकता है, खिसकता है। हरकतु है = रोक देता है। पेसकसैं = पेशकश, भेंट। धरकतु = धड़कती है।

अर्थ—बीजापुर और गोलकुंडा के बादशाह (शिवाजी को) अपने किले दे कर देश और वैभव में पीछे ही को सरकते जाते हैं, उनके देश की सीमा और वैभव कम होता जाता है। भूषण कवि कहते हैं भौंसिला राजा शिवाजी का बाहुबल औरंगज़ेब को नर्मदा नदी के दूसरी ओर ही रोक देता है अर्थात् शिवाजी की प्रबलता के कारण औरंगज़ेब भी नर्मदा के पार दक्षिण में नहीं आ पाता। ईरान और बिलायत के शासक भी शिवाजी को भेंट भेजते हैं और उनके हृदय भी शिवाजी की धाक से धड़कते रहते हैं। शाहजी के पुत्र चिरजीवी शिवाजी महाराज इस दुनिया में किस बादशाह के हृदय में नहीं खटकते—अर्थात् सबके हृदय में खटकते हैं।

विवरण—यहाँ एक समय में ही शिवाजी (की धाक) का सब के हृदयों में चढ़ा रहना कहा गया है। कई प्रतियों में यह पद पर्याय का उदाहरण दिया गया है। परन्तु पर्याय में क्रमशः एक वस्तु के अनेक आश्रय वर्णित होते हैं अथवा क्रम-पूर्वक अनेक वस्तुओं का एक आश्रय वर्णित होता है, पर 'विशेष' में एक ही समय में एक पदार्थ की अनेक स्थलों पर स्थिति वर्णन की जाती है, जैसे उपरिलिखित पद में की गई है।

व्याघात

और काज करता जहाँ, करे औरई काज।
ताहि कहत व्याघात हैं, भूषन कवि-सिरताज॥२२९॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य कार्य का करने वाला कोई दूसरा ही कार्य (विरुद्ध कार्य) करने लगे वहाँ श्रेष्ठ कवि व्याघात अलंकार कहते हैं।

(व्याघात का अर्थ विरुद्ध है।)

उदाहरण—मालती सवैया

ब्रह्म रचै पुरुषोतम पोसत संकर सृष्टि सँहारनहारे।
तू हरि को अवतार सिवा नृप काज सँवारे सबै हरि वारे॥
भूषन यों अवनी जवनी कहैं कोऊ कहै सरजा सो हहारे।
तू सबको प्रतिपालनहार बिचारे भतारु न मारु हमारे॥२३०॥

शब्दार्थ—पुरुषोतम = विष्णु। सँवारै = पूर्ण किये। हहारै = विनती, अथवा हाय-हाय!

अर्थ—ब्रह्मा पृथ्वी की रचना करते हैं, विष्णु भगवान उसका पालन करते हैं और महादेव सृष्टि का संहार करने वाले हैं। हे महाराज शिवाजी! तुम तो विष्णु के अवतार हो, तुमने विष्णु के सब काम पूरे किये हैं अर्थात् जगत में तुमने पालन-पोषण का कार्य अपने ऊपर लिया है। भूषण कवि कहते हैं कि (इसीलिए) पृथिवी पर सब मुसलमानियाँ इस प्रकार कहती हैं कि कोई शिवाजी से विनती करके कहे (अथवा हाय-हाय, कोई शिवाजी से जा कर कहे) कि तुम तो सबका पालन पोषण करने वाले हो, अतएव हमारे पति बिचारों को मत मारो।

विवरण—यहाँ शिवाजी को जगत के प्रतिपालक विष्णु का अवतार कह कर उनका यवनों को मारना रूप विरुद्ध कार्य कथन किया गया है जो 'तू सबको प्रतिपालनहार बिचारे भतार न मारु हमारे' इस पद से प्रकट होता है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

कसत मैं बार-बार वैसोई बलंद होत,
वैसोई सरस-रूप समर भरत है।
भूषन भनत महाराज सिव राजमनि,
सघन सदाई जस फूलन धरत है॥
बरछी कृपान गोली तीर केते मान,
जोरावर गोला बान तिनहू को निदरत है।
तेरो करबाल भयो जगत को ढाल, अब
सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है॥२३१॥

शब्दार्थ—कसत = कर्षित, खींचते, कसते हुए। रूप भरत है = रूप धारण करता है, वेश बनाता है। केते मान = कितने परिमाण में, किस गिनती में। हाल = आजकल, इस समय।

अर्थ—(यहाँ शिवाजी की तलवार को ढाल का रूप दिया गया है जो संसार की रक्षक मानी गई है) भूषण कवि कहते हैं कि हे राजाओं में श्रेष्ठ महाराजा शिवाजी ! आपकी कृपाण युद्ध में बार-बार खींच कर चलाये जाने पर (हिन्दुओं की रक्षा करती हुई) उसी भाँति ऊँची उठती है और वैसी ही सुन्दर शोभा को धारण करती है (जैसी कि ढाल)। यह आपकी कृपाण बड़ी दृढ़ है और सदा ही यशरूपी पुष्पों को अत्यधिक धारण करने वाली है (ढाल में भी लोहे के फूल लगे रहते हैं और उनसे यह दृढ़ होती है)। यह बड़े-बड़े ज़ोरदार गोलों और बाणों को भी लज्जित कर देती है, फिर भला इसके सामने बर्छी, तलवार, तीर और गोलियों की क्या गिनती है, वे तो इसके सामने कुछ नहीं कर सकतीं—अर्थात् गोला बारूद आदि से युक्त मुसलमानों की सेना से भी आपकी तलवार हिंदुओं की रक्षा कर गोला बारूद आदि सामग्री को लज्जित कर देती है, उसकी व्यर्थता सिद्ध कर देती है। ऐसी यह आपकी करवाल (कृपाण) समस्त संसार के लिए ढाल स्वरूप है (रक्षक है) परन्तु अब वही म्लेच्छों का अन्त करती है।

विवरण—यहाँ करवाल-रूपी ढाल का कार्य रक्षा करना था परन्तु उसका म्लेच्छों को मारना रूप विरुद्ध कार्य कथन किया गया है।

गुम्फ (*कारणमाला*)

पूरब पूरब हेतु कै, उत्तर उत्तर हेतु।
या विधि धारा बरनिए, गुम्फ कहावत नेतु ॥२३२॥

शब्दार्थ—धारा = क्रम। गुम्फ = गुच्छा, धारा। नेतु = निश्चय ही।

अर्थ—पहले कही गई वस्तु को पीछे कही गई वस्तु का, अथवा पीछे कही गई वस्तु को पहले कही गई वस्तु का कारण बना कर एक धारा की तरह वर्णन करना गुम्फ अलंकार कहाता है। इसे कारणमाला भी कहते हैं।

विवरण—इसमें पूर्वकथित वस्तु उत्तरकथित वस्तु का कारण धारा (माला) के रूप में होती है। अथवा उत्तरकथित वस्तु पूर्वकथित वस्तु का

कारण धारा (माला) के रूप में होती है। इस प्रकार इसके दो भेद हुए। एक जिसमें पूर्व कथित पदार्थ उत्तरोत्तरकथित पदार्थों के कारण हों या जो पहले कार्य हों वे आगे हेतु होते चले जायँ। दूसरा जिसमें उत्तरोत्तर कथित पदार्थ पूर्व कथित पदार्थों के कारण हों, अर्थात् जो पहले हेतु हों वे आगे कार्य होते जायँ।

उदाहरण—मालती सवैया

संकर की किरपा सरजा पर जोर बढ़ी कवि भूषन गाई।
ता किरपा सों सुबुद्धि बढ़ी भुव भौंसिला साहितनै की सवाई॥
राज सुबुद्धि सों दान बढ्यो अरु दान सों पुन्य समूह सदाई।
पुन्य सों बाढ्यो सिवाजी खुमान खुमान सों बाढ़ी जहान भलाई॥२३३॥

शब्दार्थ—जोर बढ़ी = जोर से बढ़ी, खूब बढ़ी। गाई = गाता है, कहता है। सवाई = सवा गुनी, ज्यादा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी पर शिवजी महाराज की कृपा ज़ोर से बढ़ी और उस कृपा से पृथ्वी पर शाहजी के पुत्र भौंसिला राजा शिवाजी की बुद्धि भी सवाई बढ़ गई। इस प्रकार उन्नत सुबुद्धि द्वारा उनका दान खूब बढ़ा अर्थात् शिवाजी अधिकाधिक दान देने लगे और उनके दान से सदा पुण्य-समूह की वृद्धि होने लगी। इस पुण्योदय से चिरजीवी शिवाजी की वृद्धि हुई और उनकी उन्नति से समस्त संसार की भलाई बढ़ी।

विवरण—यहाँ पूर्वकथित शंकर की कृपा शिवाजी की सुबुद्धि का कारण और सुबुद्धि दान का कारण है, दान पुण्य का कारण है, पुण्य शिवाजी की उन्नति का कारण है और शिवाजी की उन्नति संसार भर की भलाई का कारण कही गई है। इस प्रकार पूर्वकथित वस्तु उत्तरकथित वस्तु का कारण होती गई है। अतः प्रथम प्रकार का गुम्फ है।

उदाहरण (द्वितीय कारणमाला)—दोहा

सुजस दान अरु दान धन, धन उपजै किरवान।
सो जग मैं जाहिर करी, सरजा सिवा खुमान॥२३४॥

अर्थ—श्रेष्ठ यश दान से मिलता है और दान धन से होता है। धन तलवार से प्राप्त होता है (अर्थात् तलवार से देश विजय करने पर धन की

प्राप्ति होती है) और उस (सब बातों के मूल कारण) तलवार को वीरकेसरी चिरजीवी शिवाजी ने ही संसार में प्रसिद्ध किया है।

विवरण—यहाँ यश का कारण दान, दान का धन, धन का तलवार और तलवार का कारण छत्रपति शिवाजी शृंखला-विधान से वर्णित हैं। और जो पहले कारण है वह आगे कार्य होता चला गया है, अतः यह कारणमाला का दूसरा भेद है।

एकावली

प्रथम बरनि जहँ छोड़िये, जहाँ अरथ की पाँति।
बरनत एकावलि अहै, कवि भूषन यहि भाँति ॥२३५॥

अर्थ—जहाँ पहले कुछ वर्णन करके उसे छोड़ दिया जाय (और फिर आगे वर्णन किया जाय) परन्तु अर्थ की शृंखला न टूटे (ज्यों की त्यों रहे) वहाँ भूषण कवि एकावली अलङ्कार कहते हैं।

विवरण—एकावली भी कारण-माला की तरह मालारूप में गुँथी होती है; परन्तु कारणमाला में कारण-कार्य का सम्बन्ध होता है, एकावली में नहीं होता।

उदाहरण—हरिगीतिका छंद

तिहुँ भुवन मैं भूषन भनैं नरलोक पुन्य सुसाज मैं।
नरलोक मैं तीरथ लसैं महि तीरथों की समाज मैं॥
महि मैं बड़ी महिमा भली महिमै महारजलाज मैं।
रज-लाज राजत आजु है महराज श्री सिवराज मैं ॥२३६॥

शब्दार्थ—तिहुँ भुवन = त्रिभुवन। सुसाज = सुसामग्री, वैभव। तीरथों की समाज में = तीर्थसमूह में। महिमै = महिमा ही, कीर्ति ही। रजलाज = लज्जायुक्त राज्यश्री।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि त्रिभुवन में पुण्य और सुन्दर सामग्री संयुक्त मनुष्यलोक श्रेष्ठ है और इस मनुष्यलोक में तीर्थ शोभित होते हैं और तीर्थों में पृथिवी (महाराष्ट्रभूमि) अधिक शोभायमान है। उस पृथिवी (महाराष्ट्र भूमि) में महिमा बड़ी है और महिमा में लज्जाशील राजलक्ष्मी श्रेष्ठ है। वही लज्जाशील राजलक्ष्मी आज महाराज शिवाजी में शोभित है। अथवा

महिमा रजपूती की लाज (वीरता) में शोभित है। और वह वीरता आज शिवराज में शोभित है।

विवरण—यहाँ उत्तरोत्तर पृथक् पृथक् वस्तुओं का वर्णन किया गया है, और उत्तरोत्तर एक एक विशेषता स्थापित की गई है, अर्थ की शृंखला भी नहीं टूटी, अतः एकावली अलङ्कार है।

मालादीपक एवं सार

दीपक एकावलि मिले, मालादीपक होय।
उत्तर उत्तर उतकरष, सार कहत हैं सोय ॥२३७॥

शब्दार्थ—उतकरष = उत्कर्ष, श्रेष्ठता, आधिक्य।

अर्थ—जहाँ दीपक और एकावली अलंकार मिलें वहाँ 'मालादीपक' और जहाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष (या अपकर्ष) का वर्णन किया जाय वहाँ 'सार' अलंकार होता है।

विवरण—उपरिलिखित दोहे में दो अलंकारों के एक साथ लक्षण दिये गये हैं, प्रथम 'मालादीपक' का, दूसरा 'सार' का। मालादीपक में पूर्व-कथित वस्तु उत्तरोत्तरकथित वस्तु के उत्कर्ष का कारण होती है और सार में उत्तरोत्तर उत्कर्ष वा अपकर्ष का ही कथन होता है।

मालादीपक

उदाहरण—कवित्त-मनहरण

मन कवि भूषन को सिव की भगति जीत्यो,
सिव की भगति जीती साधुजन सेवा ने।
साधुजन जीते या कठिन कलिकाल कलि-
काल महाबीर महाराज महिमेवा ने॥
जगत में जीते महाबीर महाराजन तें,
महाराज बावनहू पातसाह लेवा ने।
पातसाह बावनौ दिली के पातसाह दिल्ली-
पति पातसाहै जीत्यो हिन्दुपति सेवा ने ॥२३८॥

शब्दार्थ—महिमेवा = महिमावान, कीर्तिशाली।

अर्थ—भूषण कवि का मन शिव (शंकर) की भक्ति ने जीत लिया है

अर्थात् उनका मन शिवजी की भक्ति में लीन हो गया है और शिवजी की भक्ति को साधुओं की सेवा ने विजय कर लिया। समस्त साधुओं को घोर कलियुग ने जीत लिया (अर्थात् कलियुग में कोई सच्चा साधु नहीं मिलता) और इस घोर कलियुग को वीर महिमावान् राजाओं ने विजय कर लिया है। इन समस्त महावीर महाराजाओं को बादशाहत लेने का दावा रखने वाले बावन प्रधान राजाओं ने (सम्भव है कि भारतवर्ष में उस समय बावन प्रधान नरपति हों) अपने अधीन कर लिया है। इन बावन बादशाहों को दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब ने अपने अधीन किया और औरंगज़ेब को महाराज शिवाजी ने जीत लिया।

विवरण—यहाँ 'जीत्यो' क्रियापद की बार-बार आवृत्ति होने से दीपक है तथा शृंखलाबद्ध कथन होने से एकावली भी है। दोनों मिल कर मालादीपक बने हैं।

सार

उदाहरण—मालती सवैया

आदि बड़ी रचना है बिरंचि की जामैं रह्यो रचि जीव जड़ो है।
ता रचना महँ जीव बड़ो अति काहे तें ता उर ज्ञान गड़ो है॥
जीवन मैं नर लोग बड़ो कबि भूषन भाषत पैज अड़ो है।
है नर लोग में राजा बड़ो सब राजन मैं सिवराज बड़ो है॥२३९॥

अर्थ—सर्वप्रथम ब्रह्मा की सृष्टि बहुत बड़ी है, जिसमें कि जड़-चेतन (चराचर) की रचना की गई है। और इस रचना में सबसे बड़ा जीव है क्योंकि उसमें ज्ञान विद्यमान है। इस समस्त जीवों में पैज (प्रतिज्ञा) में दृढ़ होने के कारण, प्रतिज्ञा पूरी करने के कारण, मनुष्य-जीव श्रेष्ठ है। मनुष्यों में राजा बड़ा है और समस्त राजाओं में महाराज शिवाजी श्रेष्ठ हैं।

विवरण—यहाँ सृष्टि, जीव, मनुष्य, राजा और शिवाजी का उत्तरोत्तर उत्कर्ष 'बड़ो है' इस शब्द द्वारा वर्णन किया गया है। अतः यहाँ 'सार' अलंकार है। यह 'सार' अलंकार कहीं-कहीं उत्तरोत्तर अपकर्ष में भी माना गया है, किन्तु प्रायः 'सार' उत्कर्ष में ही होता है।

पूर्वोक्त 'कारणमाला' 'एकावली' और 'सार' में शृंखला विधान तो समान

होता है किन्तु 'कारणमाला' में कारण-कार्य का, एकावली में विशेष्य-विशेषण का और 'सार' में उत्तरोत्तर उत्कर्ष का सम्बन्ध होता है। तीनों में यही भेद है।

यथासंख्य

क्रम सों कहि तिन के अरथ, क्रम सों बहुरि मिलाय।
यथासंख्य ताको कहैं, भूषन जे कविराय ॥२४०॥

अर्थ—क्रम से पहले जिन पदार्थों का वर्णन हो, फिर उनके सम्बन्ध की बातें जहाँ उसी क्रम से वर्णन की जायँ, वहाँ श्रेष्ठ कवि यथासंख्य अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जेई चहौ तेई गहौ सरजा सिवाजी देस,
संके दल दुवन के जे वै बड़े उर के।
भूषन भनत भौंसिला सों अब सनमुख,
कोऊ ना लरैया है धरैया धीर धुर के॥
अफजल खान, रुस्तमै जमान, फत्तेखान,
कूटे, लूटे, जूटे ए उजीर बिजैपुर के।
अमर सुजान, मोहकम, बहलोलखान,
खाँड़े, छाँड़े, डाँड़े उमराव दिलीसुर के ॥२४१॥

शब्दार्थ—दुवन = शत्रु। बड़े उर के = विशाल हृदय के, बड़े दिल (साहस) वाले। धरैया धीर-धुर के = धैर्य की धुरी को धारण करने वाले, बड़े धैर्यवान। रुस्तमे जमान = इसका वास्तविक नाम 'रनदौला' था, 'रुस्तमे जमान' इसकी उपाधि थी। यह बीजापुर का सेनापति था और बीजापुर की ओर से दक्षिण पश्चिम भाग का सूबेदार था। अफज़लखाँ की मृत्यु के बाद बीजापुर की ओर से अफज़लखाँ के पुत्र फज़लखाँ को साथ ले कर इसने मराठों पर चढ़ाई की। परनाले के निकट इसकी शिवाजी से मुठभेड़ हुई। इसमें इसे बुरी तरह से हार कर कृष्णा नदी की ओर भागना पड़ा। यह घटना सन् १६५६ की है। फत्तेखान = फतेखाँ, यह जंजीरा के सीदियों का सरदार था। सन् १६७२ ई० में जंजीरा के किले में शिवाजी से लड़ा था, परन्तु कई बार परास्त होने पर अन्त में शिवाजी से मिल जाने की बातचीत कर रहा था, इसी

बीच इसके तीन साथियों ने इसे मार डाला। कूटे = कूटा, मारा। जूटे = जुट गये, मेल किया, संधि की। मोहकमसिंह = यह अमरसिंह चंदावत का लड़का था। सलहेरि के युद्ध में इसे मराठों ने कैद कर लिया था, पर बाद में छोड़ दिया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सरजा राजा शिवाजी ने जिस देश को लेना चाहा वही ले लिया, इस कारण शत्रुओं की जो बड़ी-बड़ी साहसी सेनाएँ थीं वह भी डर गईं। और धैर्य की धुरी को धारण करने वालों अर्थात् बड़े-बड़े धैर्यवानों में से अब शिवाजी के सम्मुख लड़ने वाला कोई नहीं रहा। अफ़ज़लखाँ, रुस्तमे जमाँखाँ और फतेखाँ आदि बीजापुर के वजीरों को शिवाजी ने कूटा, लूटा और मिला लिया अर्थात् अफ़ज़लखाँ को शिवाजी ने (कूटा) मारा, रुस्तमे जमाँखाँ को लूट लिया और फतेखाँ की शिवाजी से संधि हो गई। दिल्लीश्वर के उमराव चतुर अमरसिंह मोहकमसिंह तथा बहलोल-खाँ को कतल कर दिया, छोड़ दिया और दंडित किया अर्थात् अमरसिंह (चंदावत) को शिवाजी ने कतल कर दिया, मोहकमसिंह को पकड़ कर छोड़ दिया और बहलोलखाँ को दंड दिया।

विवरण—यहाँ पूर्वकथित अफ़ज़लखाँ, रुस्तमे जमाँखाँ और फतेखाँ का क्रमशः कूटे, लूटे और जूटे के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया है, और अमरसिंह, मोहकमसिंह और बहलोलखाँ के लिए क्रमशः खाँडे, छाँडे, और डाँडे कहा गया है, अतः यथासंख्य अलङ्कार है।

पर्याय

एक अनेकन में रहै, एकहि मैं कि अनेक
ताहि कहत परयाय हैं, भूषन सुकवि विवेक ॥२४२॥

अर्थ—जहाँ एक (वस्तु) का (क्रमशः) अनेक (वस्तुओं) में अथवा अनेकों का एक में होना वर्णित हो वहाँ ज्ञानी कवि पर्याय अलङ्कार कहते हैं।

विवरण—इस लक्षण से पर्याय के दो भेद होते हैं—जहाँ एक वस्तु का क्रमशः अनेक वस्तुओं में रहने का वर्णन हो वहाँ प्रथम पर्याय और जहाँ अनेक वस्तुओं का एक में रहने का वर्णन हो वहाँ द्वितीय पर्याय।

उदाहरण (प्रथम पर्याय)—दोहा

जीत रही औरंग मैं, सबै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू को अब रही, सिव सरजा कर माँड़ि ॥२४३॥

शब्दार्थ—छत्रपति = राजा। माँडि = मंडित, शोभित।

अर्थ—समस्त छत्रपतियों (राजाओं) को छोड़ कर विजय (लक्ष्मी) औरंगज़ेब के पास रही थी; परन्तु वह अब उसे भी त्याग कर महाराज शिवाजी को सुशोभित कर रही है, अथवा महाराज शिवाजी के हाथ को सुशोभित कर रही है।

विवरण—यहाँ एक 'विजय' का राजाओं में, औरंगज़ेब में, और शिवाजी के क्रमशः होना कथन किया गया है। एक 'विजय' का अनेक में वर्णन होने से प्रथम पर्याय है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण (दूसरा पर्याय)

अगर के धूप धूम उठत जहाँई तहाँ।
उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं।
जहाँई कलावंत अलापैं मधुर स्वर,
तहाँई भूत-प्रेत अब करत विलाप हैं।
भूषन सिवाजी सरजा के बैर बैरिन के,
डेरन मैं परे मनो काहू के सराप हैं।
बाजत हे जिन महलन में मृदंग तहाँ,
गाजत मतंग सिंह बाघ दीह दाप हैं ॥२४४॥

शब्दार्थ—बगूरे—बगूले, बवंडर। अमाप = बेमाप, बेहद। कलावंत = गायक। अलापैं = गाते थे। मतंग = हाथी।

अर्थ—जहाँ पहले शत्रुओं के महलों एवं शिवरों में अगर की धूप जलने के कारण सुगन्धित धुआँ उठा करता था अब वहाँ (शिवाजी से शत्रुता होने के कारण महलों के उजाड़ हो जाने से) धूल के बड़े-बड़े बगूले उठते हैं। और जहाँ कलावंत (गायक) लोग सुन्दर मधुर स्वर से अलापते थे, अब वहाँ भूत-प्रेत रोते और चिल्लाते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि ऐसा मालूम होता है, मानो शिवाजी की शत्रुता के कारण शत्रुओं के उन डेरों पर किसी का

शाप पड़ गया है, अर्थात् किसी के शाप से वे नष्ट हो गये हैं, (क्योंकि) जिन महलों में पहले गम्भीर ध्वनि से मृदङ्ग गूँजा करते थे, अब वहाँ बड़े-बड़े भयंकर सिंह, बाघ और हाथी घोर गर्जना करते हैं, अर्थात् शत्रुओं के डेरे अब जंगल बन गये हैं।

विवरण—यहाँ एक महल में क्रमशः अनेक पदार्थों—धूप, धूम और बगूरे आदि—का होना वर्णन किया गया है, अतः दूसरा पर्याय है।

परिवृत्ति

एक बात को दै जहाँ, आन बात को लेत।
ताहि कहत परिवृत्ति हैं, भूषन सुकवि सचेत ॥२४५॥

अर्थ—जहाँ एक वस्तु को दे कर बदले में कोई दूसरी वस्तु ली जाय वहाँ श्रेष्ठ सावधान कवि परिवृत्ति अलंकार कहते हैं।

विवरण—परिवृत्ति का अर्थ है अदला-बदला अर्थात् एक वस्तु ले कर उसके बदले में दूसरी वस्तु देना।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दच्छिन-धरन धीर-धरन खुमान गढ़
लेत गढ़धरन सो धरम दुवारु दै।
साहि नरनाह को सपूत महाबाहु लेत,
मुलुक महान छीनि साहिन को मारु दै॥
संगर में सरजा सिवाजी अरि सैनन को,
सारु हरि लेत हिंदुवान सिर सारु दै।
भूषन भुसिल जय जस को पहारु लेत,
हरजू को हारु हर गन को अहारु दै॥२४६॥

शब्दार्थ—दच्छिन धरन = दक्षिण को धारण करने वाले, शिवाजी। गढ़धरन = गढ़ों को धारण करने वाले, राजा। धरमदुवारु = धर्मराज का दरवाजा, यमपुरी का दरवाजा। मारु दै = मार दे कर, मार कर। सारु = बड़ाई। हारु = हार (मुंडमाला)। हरगन = शिवाजी के गन, भूत-प्रेत आदि। अहारु = भोजन।

अर्थ—दक्षिणाधीश, धैर्यशाली, चिरजीवी शिवाजी महाराज किलेदारों

को यमपुरी का दरवाज़ा दे कर (यमपुरी पहुँचा कर—मार कर) उनसे किले ले लेते हैं। महाराज शाहजी के सुपुत्र महाबाहु (पराक्रमी) शिवाजी बादशाहों को मृत्यु दे कर उनसे बड़े-बड़े देश छीन लेते हैं। युद्ध में वीर-केसरी शिवाजी हिंदुओं के सिर बड़ाई दे कर (उनको विजयी कहलवाकर) शत्रु-सेना के सार (तेज) को हर लेते हैं। भूषण कहते हैं कि श्री महादेवजी को मुंडमाला तथा उनके गणों (भूत-प्रेत आदि) को खूब भोजन दे कर भौंसिला राजा शिवाजी विजय के यश के पहाड़ लेते हैं अर्थात् शिवाजी शत्रुओं के सिर काट कर विजय की बड़ाई लेते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी द्वारा गढ़पालों को धर्मद्वार दे कर किले लेने, शाहों को मृत्यु दे कर उनका मुल्क लेने, हिन्दुओं को बड़ाई दे कर शत्रु-सेना का तेज हर लेने और महादेव को मुण्डमाला तथा उनके गणों को आहार दे कर विजय लेने में वस्तु-विनिमय दिखाया गया है, अतः परिवृत्ति अलङ्कार है।

परिसंख्या

अनत बरजि कछु वस्तु जहँ, बरनत एकहि ठौर।
तेहि परिसंख्या कहत हैं, भूषन कवि दिलदौर ॥२४७॥

शब्दार्थ—दिलदौर = उदार हृदय, रसिक।

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु को अन्य स्थान से निषेध कर किसी एक विशेष स्थान पर स्थापित किया जाय वहाँ रसिक कवि परिसंख्या अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अति मतवारे जहाँ दुरदै निहारियतु,
तुरगन ही मैं चंचलाई परकीति है।
भूषन भनत जहाँ पर लगैं बानन मैं,
कोक पच्छिनहि माहिं बिछुरन रीति है॥
गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त ही के,
लोक बँधे जहाँ एक सरजा की गुन प्रीति है।
कंप कदली मैं, बारि-बुन्द बदली मैं,
सिवराज अदली के राज मैं यों राजनीति है ॥२४८॥

शब्दार्थ—दुरदै = द्विरद, हाथी। परकीति = प्रकृति, स्वभाव। कोक =

चक्रवाक। बारिबुन्द = पानी की बूँद, आँसू। अदली = आदिल, न्यायशील।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि न्यायशील महाराज शिवाजी की राजनीति (शासन-व्यवस्था) ऐसी (श्रेष्ठ) है कि समस्त राज्य में केवल हाथी ही बड़े मदमस्त दिखाई पड़ते हैं, कोई मनुष्य मतवाला (शराब आदि नशे की चीज़ें पी कर मत्त होने वाला) नहीं दिखाई देता; चंचलता केवल घोड़ों की प्रकृति (स्वभाव) में ही पाई जाती है, और किसी में नहीं; वहाँ पर (पंख) केवल वाणों में ही लगते हैं, अन्यथा कोई किसी का पर (शत्रु) नहीं लगता, नहीं होता; बिछुड़ने की रीति केवल चक्रवाक पक्षियों में ही पाई जाती है और कोई अपने प्रियजन से नहीं बिछुड़ता। समस्त राज्य में केवल गुणी पुरुष ही अपने गुणों से दूसरों के चित्तों को चुराने वाले हैं और कोई मनुष्य चोर नहीं दिखाई देता; वहाँ केवल शिवाजी की प्रेम-रूप रस्सी का बंधन है जिससे प्रजा बँधी है और किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं है; यदि कंप है तो केवल केले के वृक्षों में ही है, कोई मनुष्य भय से नहीं काँपता; जल की बूँदें केवल बादलों में ही हैं, किसी मनुष्य एवं स्त्री के नेत्रों में वे नहीं हैं अर्थात् कोई मनुष्य दुखी हो कर रोता नहीं है—शिवाजी के राज्य में सब सुखी हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के राज्य में मत्तता, चंचलता, बिछुड़ना, चोरी, बंधन, कम्प, वारि-बुंद आदि का अन्य स्थानों में निषेध करके क्रमशः हाथी, घोड़े, कोक पक्षी, गुणी, प्रेमपाश, केले और बादल में ही होना कथन किया गया है, अतः परिसंख्या अलंकार है।

विकल्प

कै वह कै यह कीजिए, जहँ कहनावति होय।
ताहि विकल्प बखानहीं, भूषन कवि सब कोय ॥२४९॥

अर्थ—जहाँ 'या तो यह करो या वह करो' इस प्रकार का कथन हो वहाँ सब कवि विकल्प अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त बनाए।
बाँधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चितौरहि धाए॥

जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बोलाए।
भूषन गाय फिरौ महि मैं बनिहै चित चाह सिवाहि रिझाए ॥२५०॥

शब्दार्थ—मोरँग = कूच बिहार के पश्चिम और पूर्निया के उत्तर का एक राज्य, यह हिमालय की तराई में है। सिरीनगरै = श्रीनगर (गढ़वाल)। बाँधव = रीवाँ। अमेरि = आमेर, जयपुर। बनिहै चित चाह = मन की इच्छा पूर्ण होगी।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि कवित्त बना कर मोरँग जाओ, या कुमाऊँ जाओ या श्रीनगर जाओ अथवा रीवाँ जाओ, या आमेर जाओ या जोधपुर अथवा चित्तौड़ को दौड़ो और चाहे कुतुबशाह के पास (गोलकुंडा) या बीजापुर के बादशाह आदिलशाह के पास जाओ, अथवा निमंत्रित हो कर दिल्लीश्वर के पास ही क्यों न चले जाओ, या सारी पृथिवी पर गाते फिरो किन्तु तुम्हारे मन की अभिलाषा शिवाजी को रिझाने पर ही पूरी होगी।

विवरण—यहाँ "मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊँ" आदि कथन करके विकल्प प्रकट किया है। परन्तु अन्त में भूषण ने शिवाजी के पास जाने की निश्चयात्मक बात कह दी है। अतः यहाँ अलङ्कार में त्रुटि आ गई है।

उदाहरण—मालती सवैया

देसन देसन नारि नरेसन भूषन यों सिख देहिं दया सों।
मंगन ह्वै करि, दंत गहौ तिन, कंत तुम्हैं हैं अनन्त महा सों॥
कोट गहौ कि गहौ बन ओट कि फौज की जोट सजौ प्रभुता सों।
और करो किन कोटिक राह सलाह बिना बचिहौ न सिवा सों ॥२५१॥

शब्दार्थ—सिख = शिक्षा, उपदेश। दंत गहौ तिन = दाँतों में तिनका पकड़ो अर्थात् दीनता प्रकट करो। अनन्त महा = अनेकों बड़ी-बड़ी। कोट गहौ = किले का आश्रय लो, किले में बैठो। जोट = झुण्ड, समूह। प्रभुता सों = वैभव के साथ, समारोह से।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि देश-देश के राजाओं को उनकी स्त्रियाँ विकल हो कर (इस प्रकार) सीख देती हैं कि हे पतिदेव तुम्हें बड़ी-बड़ी सौगन्ध है कि तुम भिक्षुक बन कर शिवाजी के सम्मुख मुख में तृण धारण कर लो (अर्थात् शिवाजी के सम्मुख दीन भाव प्रकट करो); क्योंकि तुम चाहे किलों

का आश्रय लो, या वनों की आड़ में जा छिपो अथवा प्रभुता से—गौरव से—फौजों के झुण्ड इकट्ठे करो और चाहे अन्य करोड़ों ही उपाय क्यों न करो परंतु बिना शिवाजी से मेल किये (संधि किये) तुम्हारा बचाव नहीं है।

विवरण—यहाँ 'कोट गहौ कि गहौ बन ओट कि फौज की जोट सजौ' इस पद से विकल्प प्रकट होता है। यहाँ भी अन्त में निश्चित पथ बता कर भूषण ने अलङ्कार में त्रुटि दिखाई है।

समाधि

और हेतु मिलि कै जहाँ, होत सुगम अति काज।
ताहि समाधि बखानहीं, भूषन जे कविराज ॥२५२॥

अर्थ—जहाँ अन्य कारण के मिलने से कार्य में अत्यधिक सुगमता हो जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि समाधि अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

बैर कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैठो।
यों ही मलिच्छहि छाँड़ैं नहीं सरजा मन तापर रोस मैं पैठो ॥
भूषन क्यों अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो।
बीछू के घाव धुक्योई धरक्क ह्वै तौ लगि धाय धरा धरि बैठो ॥२५३॥

शब्दार्थ—बाह्यो = चलाया, वार किया। कठैठो = कठोर। अठपाव = (अष्टपाद) उपद्रव, शरारत। उमैठो = मरोड़। धुक्योई = गिरा ही था। धरक्क = धड़क, धक से।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी तो वैर करना चाहते ही थे (अर्थात् अफजलखाँ के पास वे मेल करने गये थे, यह तो बहाना ही था, वास्तव में वे लड़ना ही चाहते थे) कि इतने में शत्रु (अफजलखाँ) ने अपनी कठोर तलवार का वार उनपर कर दिया। वीर-केसरी शिवाजी यों ही म्लेच्छों को नहीं छोड़ते तिस पर (अब तो) उनका मन क्रोध से भर गया था। भूषण कहते हैं कि भला अफजलखाँ फिर कैसे बचता, उसने तो शरारत कर के सिंह का पाँव मरोड़ दिया (अर्थात् उसने शिवाजी पर तलवार चला कर गुस्ताखी की)। बीछू के घाव से अफजलखाँ काँप कर गिरा ही था कि इतने में राजा शिवाजी दौड़ कर उसे पृथिवी पर दबा कर बैठ गये।

विवरण—शिवाजी अफ़जलखाँ से शत्रुता रखना एवं उसे मारना चाहते ही थे कि अचानक उसका शिवाजी पर तलवार का वार करना रूप कारण और मिल गया, जिससे शिवाजी का क्रोध और बढ़ गया तथा अफ़जल-खाँ की मृत्यु का कार्य सुगम हो गया। इस प्रकार यहाँ समाधि अलंकार हुआ।

प्रथम समुच्चय

एक बार ही जहँ भयो, बहु काजन को बंध।
ताहि समुच्चय कहत हैं, भूषन जे मतिबंध ॥२५४॥

शब्दार्थ—बंध = ग्रंथि, गुम्फ, योग। मतिबंध = बुद्धिमान्।

अर्थ—जहाँ बहुत से कार्यों का गुम्फ (गठन) एक समय में वर्णन किया जाय वहाँ बुद्धिमान् लोग प्रथम समुच्चय अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

माँगि पठाये सिवा कछु देस वजीर अजानन बोल गहे ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यों भूषन जो दिन दोय लगे ना॥
धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आय गो खानखवास के फेना।
भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाहि की सेना ॥२५५॥

शब्दार्थ—अजानन = अज्ञानियों ने, अथवा (अज + आनन) बकरे के समान मुखवाले (मुसलमानों का दाढ़ीदार मुँह बकरे के मुख के समान दिखाई देता है)। बोल = बात। गहे ना = ग्रहण नहीं किया, माना नहीं। खानखवास = खवासखाँ। फेना = झाग। भै = भय से। भरकी = भड़क गई। करकी = टूट गई, छिन्न भिन्न हो गई। धरकी = धड़कने लगी, काँपने लगी। दरकी = फट गई, टूट गई। दिल = मन, साहस, हिम्मत।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने कुछ देश आदिलशाह से माँग भेजे परन्तु उसके मूर्ख अथवा (दाढ़ियों के कारण) बकरे के समान मुख वाले वज़ीरों ने इस बात पर ध्यान न दिया। तब शिवाजी ने धावा बोल कर परनाले के किले को ले लिया, यहाँ तक कि उसको विजय करने में उनको दो दिन भी न लगे। इस विजय के आतंक से समस्त बीजापुर खाक हो गया और खवासखाँ के मुख में बेहोशी के कारण झाग आ गई। आदिलशाह की समस्त सेना भय के कारण भड़क गई, छिन्न-भिन्न हो गई, दहल गई और

उसका दिल (साहस) टूट गया

विवरण—यहाँ अन्तिम चरण में "भै भरकी, करकी, धरकी, दरकी दिल एदिलसाहि की सेना" में कई कार्यों का एक समय में ही होना कथन किया गया है अतः प्रथम समुच्चय है। 'समुच्चय' के इस प्रथम भेद में गुण क्रिया आदि कार्यों का एक साथ होना वर्णित होता है, और पूर्वोक्त 'कारक दीपक' में केवल क्रियाओं का पूर्वापर क्रम से वर्णन होता है, इस समुच्चय में क्रम नहीं होता।

द्वितीय समुच्चय

वस्तु अनेकन को जहाँ, बरनत एकहि ठौर।
दुतिय समुच्चय ताहि को कहि भूषन कवि मौर ॥२५६॥

अर्थ—जहाँ बहुत सी वस्तुएँ एक ही स्थान पर वर्णित हों वहाँ श्रेष्ठ कवि द्वितीय समुच्चय अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

सुन्दरता गुरुता प्रभुता भनि भूषन होत है आदर जामैं।
सज्जनता औ दयालुता दीनता कोमलता झलकै परजा मैं।
दान कृपानहु को करिबो करिबो अभै दीनन को बर जामैं।
साहन सों रन टेक बिवेक इते गुन एक सिवा सरजा मैं ॥२५७॥

शब्दार्थ—दान कृपानहु को करिबो = तलवार का दान देना अर्थात् युद्ध करना। अभै = निर्भय। रन टेक = युद्ध करने की प्रतिज्ञा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी में सुन्दरता, बड़प्पन और प्रभुता आदि गुण, जिनसे कि आदर प्राप्त होता है, तथा प्रजा के प्रति सज्जनता, दयालुता, नम्रता, एवं कोमलता आदि झलकती हैं। और तलवार का दान देना अर्थात् युद्ध करना तथा दीनों को अभय या वरदान देना तथा बादशाहों से युद्ध करने का प्राण और विचार, अकेले शिवाजी में इतने गुण विद्यमान हैं।

विवरण—यहाँ केवल एक शिवाजी में ही सुन्दरता, बड़प्पन प्रभुता, सज्जनता, नम्रता आदि गुण तथा दान देना आदि अनेक क्रिदाओं का होना कथन किया गया है। पूर्वोक्त पर्याय अलंकार के द्वितीय भेद में अनेक वस्तुओं

का क्रम-पूर्वक एक आश्रय होता है और इस द्वितीय समुच्चय में अनेक वस्तुओं का एक आश्रय अवश्य होता है किन्तु वस्तुओं में कोई क्रम नहीं होता।

प्रत्यनीक

जहँ जोरावर सत्रु के, पच्छी पै कर जोर॥
प्रत्यनीक तासों कहैं, भूषन बुद्धि अमोर॥२५८॥

शब्दार्थ—पच्छी = पक्ष वाला, सम्बन्धी।

अर्थ—जहाँ बलवान शत्रु पर बस न चलने पर उसके पक्षवालों पर ज़ोर (ज़ुल्म) किया जाय वहाँ पर श्रेष्ठबुद्धि मनुष्य प्रत्यनीक अलंकार कहते हैं।

विवरण—जहाँ शत्रु पक्ष वालों से वैर अथवा मित्र पक्ष वालों से प्रेम कथन किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है। प्रत्यनीक का अर्थ ही 'सम्बन्धी के प्रति' है।

उदाहरण—अरसात सवैया*

लाज धरौ सिवजू सों लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
भूषन ह्याँ गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय कै॥
हिन्दुन के पति सों न बिसात सतावत हिंदु गरीबन पाय कै।
लीजै कलंक न दिल्ली के बालम आलम आलमगीर कहाय कै॥२५९॥

शब्दार्थ—लाज धरौ = लज्जा धारण करो, अपनी मान मर्यादा का खयाल करो, कुछ शर्म करो। पठाय कै = भेज कर। रिसाय कै = क्रोधित हो कर। हिंदुन के पति = शिवाजी। बिसात = बस चलता। आलम = आलिम, इल्म वाला, विद्वान्, पंडित। बालम = प्रिय, पति। आलमगीर = संसार-विजयी, औरंगज़ेब की पदवी।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे आलमगीर, तुम्हें यदि कुछ शर्म हो तो सैयद, शेख और पठानों (प्रमुख सरदारों) को भेज कर शिवाजी से लड़ो। इधर दक्षिण में जब तुम अपने कुछ किले हार गये तो गुस्से हो कर (झुँझला-कर) तुमने वहाँ (मथुरा और काशी आदि पवित्र स्थानों में) देवालय क्यों

* इसमें पहले सात भगण (ऽ।।) और अन्त में एक रगण (ऽ।ऽ) होता है।

तोड़ दिये ? हिन्दूपति शिवाजी से तुम्हारा कुछ बस नहीं चलता तो बेचारे हिंदुओं को गरीब देख कर क्यों कष्ट देते हो ? (इसमें भला, कोई बहादुरी प्रकट होती है ?) हे दिल्लीपति, विद्वान और आलमगीर कहला कर तुम्हें (ऐसे अनुचित कार्य करके) अपने नाम पर कलंक नहीं लगाना चाहिए।

विवरण—यहाँ गढ़ हार जाने पर मठों पर जा कर अपना ज़ोर दिखाने तथा हिंदूपति पर वश न चलने पर गरीब हिंदुओं पर अत्याचार करने का वर्णन किया गया है, अतः प्रत्यनीक अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

गौर गरबीले अरबीले राठवर गह्यो
लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरष तें।
कोट के कँगूरन मैं गोलंदाज़, तीरंदाज,
राखे हैं लगाय गोली तीरन बरषतें॥
कै कै सावधान किरवान कसि कम्मरन,
सुभट अमान चहुँ ओरन करषतें।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवा तैं चढ़ो,
राति के सहारे ते अराति अमरषतें॥२६०॥

शब्दार्थ—गौर = छन्द १३३ के शब्दार्थ में देखो। गरबीले = गर्व वाले, अभिमानी। अरबीले = अड़नेवाले, हठीले। राठवर = राठौर, यहाँ उदयभानु (छन्द ६६ देखो) से तात्पर्य है। लोहगढ़ = जुनेर के दक्षिण में इद्रायणी की घाटी के पश्चिम ओर पहाड़ पर यह किला है। जयसिंह ने जब शिवाजी की सन्धि औरंगज़ेब से कराई थी, तब यह किला भी शिवाजी ने औरंगज़ेब को दे दिया था। पीछे १६७० में सिंहगढ़-विजय के अनन्तर शिवाजी के सेनापति मोरोपंत ने इसे विजय कर मराठा राज्य में मिलाया था। हरषतें = हर्षित होते हुए, खुशी-खुशी। कँगूरन = कँगूरे, किले की दीवार पर छोटी-छोटी चोटियाँ सी बनी होती हैं, वे ही कँगूरे कहलाते हैं, बुर्ज। गोली तीरन बरषतें = गोली और तीरों की वर्षा करते हुए। कम्मरन = कमर में। अमान = अनगिनत। करषतें = उत्तेजित करते हुए। तैं = तू (शिवाजी)। राति के सहारे = रात्रि के अंधकार में। अराति = शत्रु। अमरष = अमर्ष, क्रोध।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अभिमानी गौड़ क्षत्रियों एवं हठी राठौड़ों ने हिम्मत से और खुशी होते हुए जिन लोहगढ और सिंहगढ़ के किलों को लिया था और जिन किलों के कँगूरों पर उन्होंने गोलंदाज और तीरंदाज गोली और तीर बरसाते हुए खड़े कर रक्खे थे, हे शिवाजी तुम शत्रु पर क्रोध करके (शत्रु के नाश की इच्छा से) कमर में तलवार कसे हुए अनेक वीरों को चारों ओर से बढ़ावा देते हुए (या बटोरते हुए) और उन्हें सावधान करके रात का सहारा (रात के अंधकार का सहारा) पा कर उन किलों पर चढ़ गये।

विवरण—यहाँ अलंकार स्पष्ट नहीं है। इसमें प्रत्यनीक अलंकार इस प्रकार घटाया जा सकता है कि शिवाजी को चढ़ाई करनी चाहिए थी दिल्ली पर, उन्होंने चढ़ाई की औरंगज़ेब के पक्षपाती हिन्दू राजाओं पर, पर भूषण का यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता।

अर्थापत्ति (काव्यार्थापत्ति)

वह कीन्ह्यो तो यह कहा, यों कहनावति होय।
अर्थापत्ति बखानहीं, तहाँ सयाने लोय ॥२६१॥

शब्दार्थ—अर्थापति = अर्थ + आपत्ति = अर्थ की आपत्ति, अर्थ का आ पड़ना। लोय = लोग।

अर्थ—'जब वह कर डाला तो यह क्या चीज है?' जहाँ इस प्रकार का वर्णन हो वहाँ चतुर लोग अर्थापत्ति अलंकार कहते हैं।

विवरण—इस अलंकार द्वारा काव्य में न कहे हुए अर्थ की सिद्धि होती है, एवं इसमें दुष्कर कार्य की सिद्धि के द्वारा सहज कार्य की सुगम-सिद्धि का वर्णन होता है। इस अलंकार में यही दिखाया जाता है कि जब इतनी बड़ी बात हो गई तो सुगम बात के होने में क्या सन्देह है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

समय मैं साहन की सुन्दरी सिखावैं ऐसे,
सरजा सों बैर जनि करौ महाबली है।
पेसकसैं फेजत बिलायती पुरुतगाल,
सुनि कै सहमि जात करनाट-थली है॥

भूषन भनत गढ़-कोट माल-मुलुक दै,
सिवा सों सलाह राखिये तौ बात भली है।
जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई,
दिल्ली दलमली तो तिहारी कहा चली है ॥२६२॥

शब्दार्थ—सयन = शयन, सोते समय। पेसकसैं = भेंट, नज़र। करनाट-थली = करनाटक देश। अखंड = अखंडनीय (औरंगज़ेब)। दलमली = पीस डाली, रौंद डाली।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि (शत्रु) स्त्रियाँ शयन के समय अपने पति शाहों को (दक्षिण के सुलतानों को) इस प्रकार समझाती हैं कि आप सरजा शिवाजी से शत्रुता न करो क्योंकि वह बड़ा बलवान है। उसे पुर्तगाल एवं अन्य विलायतों (विदेशों) के बादशाह भी नज़रें भेजते हैं और उसका नाम सुन कर सारा कर्नाटक देश भय से सहम जाता है। अतः आप किले, माल-असबाब एवं कुछ देश आदि दे कर उससे सन्धि ही रखें तो अच्छी बात है, इसमें आपका कल्याण है। सब सुलतान डर कर जिसे खिराज देते हैं, उसी अखंडनीय (अदमनीय) औरंगज़ेब की दिल्ली को जब (शिवाजी ने) रौंद डाला तो भला तुम्हारी उसके सामने क्या चलेगी?

विवरण—जिस शिवाजी ने औरंगज़ेब को जीत लिया उनका अन्य (गोलकुंडा, बीजापुर और अहमदनगर आदि रियासतों के) बादशाहों को जीतना क्या कठिन है। यही अर्थापत्ति अलङ्कार है।

काव्यलिंग

है दिढ़ाइबे जोग जो, ताको करत दिढ़ाव।
काव्यलिंग तासों कहैं, भूषन जे कविराव ॥२६३॥

शब्दार्थ—दिढ़ाइबे = दृढ़ करने, समर्थन करने।

अर्थ—जो वस्तु समर्थन करने योग्य हो उसका जहाँ (ज्ञापक हेतु द्वारा) समर्थन किया जाय, वहाँ कविराज काव्यलिंग अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मनहर दंडक

साइति लै लीजिए बिलाइति को सर कीजै।
बलख बिलायति को बंदी अरि डावरे।

भूषन भनत कीजै उत्तरी भुवाल बस,
पूरब के लीजिए रसाल गज छावरे ॥
दच्छिन के नाथ के सिपाहिन सों बैर करि,
अवरंग साहिजू कहाइए न बावरे ।
कैसे सिवराज मानु देत अवरंगै गढ़,
गाढ़े गढ़पति गढ़ लीन्हे और रावरे ॥२६४॥

शब्दार्थ—साइति = मुहूर्त्त । सर = विजय । बलख = तुर्किस्तान का एक शहर । डावरे = लड़के, बच्चे (मारवाड़ी भाषा) । रसाल = सुन्दर । गज-छावरे = गज-शावक, हाथी के बच्चे । दच्छिन के नाथ = शिवाजी । मानु = सम्मान । गाढ़े = गाढा, मज़बूत, दृढ़ ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब बादशाह ! चाहे तुम मुहूर्त निकलवा कर विलायत को विजय कर लो और बलख आदि विदेशों के शत्रुओं के बच्चों को बन्दी बना लो, चाहे तुम उत्तर के (समस्त) राजाओं को अपने अधीन कर लो, और पूर्व दिशा के सुन्दर-सुन्दर हाथियों के बच्चों को भी (उनके स्वामी राजाओं से भेंट रूप में) ले लो, अथवा जीत लो, परन्तु हे औरंगजेब बादशाह, दक्षिणाधीश राजा शिवाजी के वीर सिपाहियों से शत्रुता कर के तुम पागल न कहलाओ । क्योंकि जिस (शिवाजी) ने तुम्हारे बड़े-बड़े गढ़पतियों के दृढ़ किले भी विजय कर लिये वह भला कैसे तुम्हें सम्मान और किले देगा ।

विवरण—यहाँ औरंगजेब को शिवाजी से न लड़ने की सलाह दी गई है और इसका समर्थन कवित्त के अन्तिम चरण में 'गढ़ लीन्हे और रावरे' से किया है ।

अर्थान्तरन्यास

कह्यो अरथ जहँ ही लियो, और अरथ उल्लेख ।
सो अर्थान्तरन्यास है, कहि सामान्य बिसेख ॥२६५॥

शब्दार्थ—सामान्य = साधारण । बिसेख = विशेष । अर्थान्तरन्यास = अन्य अर्थ की स्थापना करना ।

अर्थ—कथितार्थ के समर्थन के लिए जहाँ अन्य अर्थ का उल्लेख किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है। इसमें सामान्य बात का समर्थन विशेष बात से होता है और विशेष बात का समर्थन सामान्य बात से।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाँधि,
बारिध को लंक रघुनंदन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम से लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी बिराट मैं बड़ाई है॥
भूषन भनत है गुसलखाने मैं खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभौ महाराज सिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है॥२६६॥

शब्दार्थ—साहिबी = वैभव, प्रतिष्ठा, इज़्ज़त। अवरंग साहिबी = औरंगजेब का बड़प्पन, इज़्ज़त। हथ्याय = हस्तगत कर, जबर्दस्ती हाथ में ले कर। हरि लाई = छीन ली। हिम्मतै = हिम्मत ही।

अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने बिना किसी चतुरंगिणी सेना की सहायता के, केवल बन्दरों को साथ ले कर समुद्र का पुल बाँध लंका को जला दिया (लंका को हनुमान जी ने जलाया था और वह भी लंका की चढ़ाई से पूर्व; अतः जलाने से यहाँ नष्ट करने का तात्पर्य समझना चाहिए)। अकेले अर्जुन ने भी द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह जैसे महाबली लाखों वीरों को जीत कर विराट नगर में कीर्ति प्राप्ति की। भूषण कवि कहते हैं कि हे चिरजीवी शिवाजी महाराज, यदि तुम गुसलखाने में औरंगज़ेब का प्रभुत्व (प्रतिष्ठा) हर कर ले आये—औरंगज़ेब का मान-मर्दन कर साफ निकल आये—तो क्या आश्चर्य हो गया, क्योंकि वीरों की तो सदा हिम्मत ही हथियार होती आई है

विवरण—यहाँ छंद के प्रथम तीन चरणों में कही गई विशेष बातों की चौथे चरण के "बीरन की हिम्मतै हथियार होत आई है" इस सामान्य वाक्य से पुष्टि की गई है, अतः अर्थान्तरन्यास है।

उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सरजा समरत्थ करी करनी धरनी पर नीकी।
भूलिगे भोज से विक्रम से औ भई बलि बेनु की कीरति फीकी।
भूषन भिच्छुक भूप भये भलि भीख लै केवल भौंसिला ही की।
नैसुक रीझि धनेस करै लखि ऐसियै रीति सदा सिवजी की ॥२६७॥

शब्दार्थ—बलि = राजा बलि, जिसे वामन ने छला था। बेनु = चक्रवर्ती राजा वेणु, जिसकी जंघाओं के मथने से निषाद और पृथु की उत्पत्ति हुई। भलि भीख ले = भली भिक्षा ले कर, खूब भिक्षा ले कर। नैसुक = थोड़ा सा। धनेस = कुबेर।

अर्थ—शाहजी के पुत्र सब प्रकार से समर्थ वीर केसरी महाराज शिवाजी ने धरनी (पृथ्वी) पर ऐसे ऐसे उत्तम कार्य किये हैं कि उनके सम्मुख लोग राजा भोज और विक्रमादित्य आदि प्रतापी राजाओं के नाम भूल गये हैं और बलि तथा वेणु जैसे महादानी राजाओं का यश भी फीका पड़ गया है। भिक्षुक लोग केवल भौंसिला राजा शिवाजी से ही अत्यधिक भिक्षा ले कर राजा बन गये हैं। शिवाजी का सदा ऐसा ही ढंग देखा गया है कि किसी पर थोड़ा सा ही खुश होने पर उसे कुबेर के समान धनपति कर देते हैं।

विवरण—यहाँ पहले शिवाजी की प्रशंसा में विशेष-विशेष बातें कही गई हैं, पुनः अन्तिम चरण में 'लखि ऐसियै रीति सदा सिवजी की' इस साधारण बात द्वारा उसका समर्थन किया गया है। यह उदाहरण ठीक नहीं है। यदि यहाँ शिवाजी की बातों का यह कह कर समर्थन किया जाता कि बड़े लोग थोड़े में ही प्रसन्न हो कर बड़ा-बड़ा दान कर देते हैं, तो उदाहरण ठीक बैठता।

प्रौढोक्ति

जहाँ उतकरष अहेत को, बरनत हैं करि हेत।
प्रौढ़ोकति तासों कहत, भूषन कवि-विरदेत ॥२६८॥

शब्दार्थ—अहेत = अहेतु, कारण का अभाव। विरदेत = नामी।

अर्थ—जहाँ उत्कर्ष के अहेतु को हेतु कह कर वर्णन किया जाय, अर्थात् जो उत्कर्ष का कारण न हो-उसे कारण मान कर वर्णन किया जाय, वहाँ प्रसिद्ध कवि प्रौढौक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

मानसर-बासी हंस बंस न समान होत,
चन्दन सो घस्यो घनसारऊ घरीक है॥
नारद की सारद की हाँसी मैं कहाँ की आभ,
सरद की सुरसरी को न पुंडरीक है।
भूषन भनत छक्यो छीरधि मैं थाह लेत,
फेन लपटानो ऐरावत को करी कहै ?
कयलास-ईस, ईस-सीस रजनीस वहौ,
अवनीस सिव के न जस को सरीक है॥२६९॥

शब्दार्थ—मानसर = मानसरोवर। घनसारऊ = कपूर भी। घरीक = घड़ी एक। सारद = शारदा, सरस्वती। आभ = प्रकाश। सुरसरी = गंगा। पुंडरीक = श्वेत कमल। छक्यो = मस्त, थकित। छीरधि = क्षीर सागर, दूध का समुद्र। कयलास-ईस = कैलाश के स्वामी, शिवजी। रजनीस = चन्द्रमा। सरीक = शरीक, हिस्सेदार, बराबर।

अर्थ—मानसरोवर में रहने वाला हंस-समूह (उज्ज्वलता में शिवाजी के यश की) समता नहीं कर सकता, चन्दन में घिसा हुआ कपूर भी घड़ी भर ही (शिवाजी के यश के सम्मुख) ठहर सकता है। नारद और सरस्वती की हँसी में भी वह आभा कहाँ और शरद् ऋतु की सुरसरी (गंगाजी) में (शरद् ऋतु में नदियाँ निर्मल होती हैं) पैदा हुआ श्वेत कमल भी शुभ्रता में उसके बराबर नहीं है। भूषण कवि कहते हैं कि क्षीर समुद्र की थाह लेने में थके हुए (अर्थात् दूध के सागर में बहुत नहाये हुए) और उसकी (सफेद) फेन को लिपटाए हुए ऐरावत (इन्द्र के सफेद हाथी) को भी (शिवाजी के यश के समान) कौन कह सकता है ? (शुभ्र) कैलाश के स्वामी महादेव, और उन महादेव के सिर पर रहने वाला वह निशानाथ चन्द्रमा भी पृथ्वीपति शिवाजी के यश की बराबरी नहीं कर सकता।

विवरण—मानसर-वासी होने से हंस कुछ अधिक सफेद नहीं हो जाते, इसी प्रकार चन्दन के संग से कपूर, नारद और शारदा की होने से हँसी और शरद् ऋतु की गंगा में पैदा होने से श्वेत कमल, और सागर की फेन लिपट

जाने से ऐरावत और कैलास-वासी होने से शिव और शिव के सिर पर होने से चन्द्रमा अधिक उज्ज्वल नहीं होते, पर यहाँ उन्हें ही उत्कर्ष का कारण माना गया है, अतः यहाँ प्रौढ़ोक्ति अलंकार है।

सम्भावना

"जु यों होय तो होय इमि," जहँ सम्भावन होय।
ताहि कहत सम्भावना, कवि भूषन सब कोय ॥२७०॥

अर्थ—'यदि ऐसा हो तो ऐसा हो जाता' जहाँ इस प्रकार की संभावना पाई जाय वहाँ सब कवि संभावना अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

लोमस की ऐसी आयु होय कौनहू उपाय,
तापर कवच जो करनवारो धरिए।
ताहू पर हूजिए सहसबाहु ता पर,
सहस गुनो साहस जो भीमहुँ ते करिए॥
भूषन कहैं यों अवरंगजू सों उमराव,
नाहक कहो तौ जाय दच्छिन मैं मरिए।
चलै न कछू इलाज भेजियत बे ही काज,
ऐसे होय साज तौ सिवा सों जाय लरिए ॥२७१॥

शब्दार्थ—लोमस = लोमश, एक ऋषि, जो बड़ी लम्बी आयु वाले माने जाते हैं। अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, लोमश तथा मार्कण्डेय ये सात दीर्घजीवी माने जाते हैं। कवच करनवारो = राजा कर्णवाला अभेद्य कवच। भीमहु ते = भीम से भी। सहसबाहु = सहस्रबाहु कार्त्तवीर्य, यह एक पराक्रमी राजा था।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब से उसके उमराव इस प्रकार निवेदन करते हैं यदि किसी उपाय से लोमश के समान (दीर्घ) आयु हो जाय, और उसके बाद कर्ण वाला (अभेद्य) कवच धारण कर लें और उसपर सहस्रबाहु की तरह सहस्र भुजाएँ हो जायँ, फिर भीमसेन में जितना साहस था उससे भी हज़ारगुणा साहस हममें हो जाय—यदि ऐसा साज हो जाय—तब तो हम जा कर शिवाजी से लड़ें, अन्यथा वहाँ जाना व्यर्थ है। कहें

तो हम नाहक दक्षिण में जा कर मरें, क्योंकि हमारा वहाँ कुछ बस तो चलता नहीं, व्यर्थ ही आप हमें वहाँ भेजते हैं।

विवरण—यदि हम लोमश ऋषि के समान दीर्घजीवी हों और कर्ण का कवच धारण कर लें, सहस्रभुज के समान हमारी सहस्र भुजाएँ हो जायँ तथा भीमसेन से अधिक साहसी हों तब तो हम शिवाजी से युद्ध कर सकते है। इस कथन द्वारा 'यदि ऐसा हो तब ऐसा हो सकता है' इस भाव को सूचित किया गया है, जो कि संभावना अलंकार में अभीष्ट है।

मिथ्याध्यवसित

झूठ अरथ की सिद्धि को, झूठो बरनत आन।
मिथ्याध्यवसित कहत हैं, भूषन सुकवि सुजान ॥२७२॥

शब्दार्थ—मिथ्याध्यवसित = (झूठ) का निश्चय।

अर्थ—किसी मिथ्या को सिद्ध करने के लिए जहाँ अन्य मिथ्या (झूठ) बात कही जाय वहाँ चतुर कवि मिथ्याध्यवसित अलंकार कहते हैं।

विवरण—यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी मिथ्या बात की सिद्धि के लिए दूसरी मिथ्या बात इसलिए कही जाती है कि वह दूसरी झूठी बात सिद्ध की जाने वाली झूठी बात की वास्तविकता को प्रकट कर दे।

उदाहरण—दोहा

पग रन मैं चल यों लसैं, ज्यों अंगद पद ऐन।
ध्रुव सो भुव सो मेरु सो, सिव सरजा को बैन ॥२७३॥

शब्दार्थ—चल = चलायमान, अस्थिर। ऐन = ठीक।

अर्थ—शिवाजी के पैर युद्ध-भूमि में ठीक उसी प्रकार चलायमान हैं जिस प्रकार (रावण की सभा में) अंगद का पैर था और उनका वचन भी ध्रुवतारा, पृथिवी (हिंदू पृथ्वी को स्थिर मानते हैं) और मेरु पर्वत के समान चलायमान है।

विवरण—यहाँ युद्ध में शिवाजी के पैरों की अस्थिरता तथा उनके वचनों की अस्थिरता कवि ने कही है, जो कि मिथ्या है। इस मिथ्या की पुष्टि के लिए उपमा अंगद के पैर, ध्रुव, पृथ्वी और मेरु से दी है जो कि जगत् में अपनी स्थिरता के लिए प्रसिद्ध हैं, इस तरह अपने पूर्व कथन की पुष्टि के लिए

एक और मिथ्या बात कही है। अतः तात्पर्य यह निकलता है कि जिस तरह अंगद के पैर स्थिर थे, जिस तरह ध्रुव, पृथ्वी और मेरु स्थिर हैं, उसी तरह शिवाजी रण में स्थिर हैं और वचन के पक्के हैं।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

मेरु सम छोटो पन, सागर सो छोटो मन
धनद को धन ऐसो छोटो जग जाहि को।
सूरज सो सीरो तेज, चाँदनी सी कारी कित्ति,
अमिय सो कटु लागै दरसन ताहि को।
कुलिस सो कोमल कृपान अरि भंजिबे को;
भूषन भनत भारी भूप भौंसिलाहि को।
भुव सम चल पद सदा महि-मंडल मैं,
धुव सो चपल धुव बल सिव साहि को ॥२७४॥

शब्दार्थ—पन = प्रण। धनद = कुबेर। सीरो = ठंढा। कित्ति—कीर्ति। अमिय = अमृत। कुलिस = कुलिश, वज्र। भंजिबे = मारने।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि संसार में शिवाजी का प्रण मेरु पर्वत के समान छोटा, मन समुद्र के समान संकुचित और धन कुबेर के समान अल्प है। उनका तेज सूर्य के समान शीतल, कीर्ति चाँदनी के समान काली और दर्शन अमृत के तुल्य कड़वा लगता है। शत्रुओं का नाश करने के लिए भौंसिला महाराज शिवाजी की जो तलवार है वह वज्र के समान कोमल है, महि-मंडल में उनके पैर पृथ्वी के समान सदा चलायमान हैं (काव्य-परम्परा में पृथ्वी अचल है) और उनका अचल बल ध्रुव तारे के समान चंचल है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के प्रण की लघुता, मन की छुटाई, धन का थोड़ापन, तेज की शीतलता, कीर्ति की श्यामता, दर्शन की कटुता, तलवार की कोमलता, पैरों और बल की चंचलता आदि झूठी बातों को सच्चा सिद्ध करने के लिए क्रमशः मेरु, समुद्र, कुबेर के धन, सूर्य, चाँदनी, अमृत, वज्र, पृथ्वी तथा ध्रुव-नक्षत्र की उपमा दी है, जो क्रमशः अपनी महत्ता, विशालता, अधिकता, ताप, शुभ्रता, मधुरता, कठोरता, तथा स्थिरता के लिए प्रसिद्ध हैं।

इस तरह एक मिथ्या को दूसरी मिथ्या बात से पुष्ट करने पर उसका अर्थ दूसरा ही हो जाता है।

उल्लास

एकही के गुन दोष ते, औरै को गुन दोस।
बरनत हैं उल्लास सो, सकल सुकवि मति पोस ॥२७५॥

शब्दार्थ—मतिपोस = मति पुष्ट, विशाल बुद्धि, श्रेष्ट बुद्धि वाले।

अर्थ—जहाँ एक वस्तु के गुण या दोष से दूसरी वस्तु में भी गुण या दोष होना वर्णन किया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि उल्लास अलंकार कहते हैं।

विवरण—उल्लास शब्द का अर्थ 'प्रबल सम्बन्ध' है। इस के चार भेद हैं। एक के गुण से दूसरे में दोष का होना, या दोष से गुण का होना अथवा गुण से गुण का होना, या दोष से दोष का होना।

उदाहरण—(गुण से दोष)—मालती सवैया

काज मही सिवराज बली हिंदुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै।
भूषन भू निरम्लेच्छ करी चहै, म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै ॥
हिंदु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोई टूटै ॥
चंद अलोक तै लोक सुखी यही कोक अभागे को सोक न छूटै ॥२७६॥

शब्दार्थ—ऊटै = मनसूबे बाँधता है, उमंग में आता है। जूटै = जुटता है, ठानता है। टूटै = टूटता है, आ गिरता है। अलोक = आलोक, प्रकाश, (चाँदनी)। लोक = दुनियाँ।

अर्थ—महाबली शिवाजी पृथिवी पर हिन्दुओं का काम बढ़ाने के लिए हृदय में मनसूबे बाँधते अथवा पृथिवी पर हिंदुओं की उन्नति के लिए शिवाजी हृदय में उत्साहित होते हैं। कई प्रतियो में 'काज' के स्थान पर 'राज' पाठ है जो अधिक उपयुक्त लगता है; उसका अर्थ इस प्रकार होगा, कि महाबली शिवाजी पृथिवी पर हिन्दुओं का राज्य बढ़ाने के मनसूबे बाँधते हैं। भूषण कहते हैं कि वे पृथिवी को म्लेच्छों से रहित करना चाहते हैं (अतः) म्लेच्छों को मारने के लिए ही वे युद्ध में जुटते हैं—युद्ध ठानते हैं। युद्ध में हिन्दुओं को बचाते बचाते भी अमरसिंह चंदावत-सा कोई हिन्दू बीच में आ ही टूटता है, बीच में आ कर मारा ही जाता है। यद्यपि चन्द्रमा के प्रकाश से समस्त संसार के प्राणी

सुखी रहते हैं परन्तु अभागे चक्रवाक का शोक नहीं मिटता (अर्थात् शिवाजी रूपी चन्द्र की कीर्ति रूपी प्रकाश से सब हिंदू प्रजा प्रसन्न है परन्तु किसी किसी अमरसिंह चंदावत रूपी चक्रवाक को उससे कष्ट ही होता है। (अमरसिंह चंदावत मुसलमानों का साथी होने से शिवाजी का विरोधी था।)

विवरण—यहाँ शिवाजी का हिंदू राज्य स्थापन के हेतु युद्ध करना एवं हिंदुओं को बचाना रूप गुण से चंदावत अमरसिंह का मारा जाना रूप दोष होना कथन किया गया है; और इसी प्रकार (शिवाजी के यशरूपी) चंद्र के प्रकाश से संसार के सुखी होने (रूप) गुण से (अमरसिंहरूपी) चक्रवाक का दुखी होना (रूप) दोष प्रकट किया गया है।

दूसरा उदाहरण—(दोष से गुण)—कवित्त मनहरण

देस दहपट्ट कीने लूटिकै खजाने लीने,
बचै न गढ़ोई काहू गढ़ सिरताज के।
तोरादार सकल तिहारे मनसबदार,
डाँड़े जिनके सुभाय जंग दै मिजाज के॥
भूषन भनत बादसाह को यों लोग सब,
बचन सिखावत सलाह की इलाज के।
डाबरे की बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै बैरु,
रावरे के बैर होत काज सिवराज के॥२७७॥

शब्दार्थ—दहपट्ट = बरबाद, नष्टभ्रष्ट। गढ़ सिरताज = गढ़ श्रेष्ठ। तोरादार = मनसबदार, वे सरदार जिनके पैरों में सोने के तोड़े (कड़े) पड़े हों, इन्हें ताजीमी भी कहते हैं अथवा बंदूकधारी। जंग दै = युद्ध करके। मिजाज के = अभिमानी। डाबरे = बालक।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सब लोग बादशाह औरंगजेब को मेल करने के उपाय का उपदेश करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि शिवाजी ने समस्त देशों को उजाड़ कर बरबाद कर दिया और सारे खज़ाने लूट लिये और किसी भी श्रेष्ठ गढ़ (प्रसिद्ध गढ़) का गढ़पति नहीं बचा। बड़े अभिमानी स्वभाव वाले जितने भी आपके तोड़ेदार तथा मनसबदार सरदार हैं, उन सबको उसने युद्ध करके दंडित कर दिया है। अतः आप बालक-बुद्धि हो कर तथा बावले हो

कर उससे वैर न करो क्योंकि आपके इस भाँति उससे वैर करने पर उसका काम बनता है।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब के वैर करने रूप दोष से शिवाजी के 'काम बनना' रूप गुण का प्रकट होना कथन किया गया है।

तीसरा उदाहरण (गुण से गुण)—दोहा

नृप सभान में आपनी, होन बड़ाई काज।
साहितनै सिवराज के, करत कबित कविराज ॥२७८॥

अर्थ—राजसभाओं में अपनी बड़ाई होने के लिए बड़े बड़े श्रेष्ठ कवि महाराज शिवाजी (की प्रशंसा एवं गुणों) के कवित्त बनाते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के प्रशंसामय कवित्त बनाने रूप गुण से कवियों के राजसभाओं में मान होने रूप गुण का प्रकट होना कथन किया गया है।

चौथा उदाहरण (दोष से दोष)—दोहा

सिव सरजा के बैर को, यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै, कूटे गये वजीर ॥२७९॥

अर्थ—हे जगद्विजयी औरंगज़ेब बादशाह! शिवाजी से शत्रुता करने का यह फल हुआ कि तुम्हारे हाथ से (कब्जे से) सारे किले छूट गये और तुम्हारे वज़ीर भी पीटे गये।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब के शिवाजी से शत्रुता करने रूप दोष से किलों के हाथ से जाने एवं वज़ीरों के पिटने रूप दोष का प्रकट होना कथन किया गया है।

पाँचवाँ उदाहरण (दोष से दोष)—कवित्त मनहरण

दौलत दिली की पाय कहाए आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।
भूषन भनत लरि लरि सरजा सों जग,
निपट अभंग गढ़ कोट सब हारे तैं॥
सुधर्‌यो न एकौ काज भेजि भेजि बेही काज,
बड़े बड़े बेइलाज उमराव मारे तैं।

मेरे कहे मेर करु, सिवाजी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं ॥२८०॥

शब्दार्थ—बब्बर = बाबर। अकब्बर = अकबर। बिरद = यश, नेकनामी। तैं = तूने। बिसारे = भुला दिये। अभंग = अखंड, सुदृढ़। गैर करि = बेजा करके, अनुचित करके, पराया बना कर। नैर = नगर, शहर।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब! दिल्ली के समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त करके तू आलमगीर नाम से तो प्रसिद्ध हो गया, परंतु तूने (अपने पुरखा) बाबर और अकबर की कीर्ति को भुला दिया (अर्थात् हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक-सा समझने के कारण उनकी जो प्रसिद्धि थी, उसे तूने भुला दिया)। शिवाजी से लड़ लड़ कर अपने समस्त सर्वथा अभेद्य (सुदृढ़) किले भी तूने खो दिये हैं। तेरा एक भी काम नहीं बना, तूने बेबस (निरुपाय) बड़े-बड़े उमरावों को उसी काम के लिए (शिवाजी को विजय करने के लिए) भेज कर मरवा डाला अथवा बेकाज ही (व्यर्थ ही) बड़े-बड़े निरुपाय उमरावों को भेज कर मरवा डाला। मेरी सम्मति से तो तू अब भी शिवाजी से मेल (संधि) कर ले। उससे शत्रुता पैदा करके और अनुचित कार्रवाई करके या उसे पराया बना कर तूने अपने शहर व्यर्थ ही उजड़वा दिये।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब के शिवाजी से शत्रुता करने रूप दोष से नगरों के उजड़ने रूप दोष का कथन किया गया है।

अवज्ञा

औरे के गुन दोस तें, होत न जहँ गुन दोस।
तहाँ अवज्ञा होत है, भनि भूषन मतिपोस ॥२८१॥

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु के गुण-दोष (सम्बन्ध) से अन्य वस्तु में गुण-दोष न हो वहाँ उन्नत-बुद्धि भूषण अवज्ञा अलंकार कहते हैं।

विवरण—यह 'उल्लास' का ठीक उलटा है। इसमें एक बात के गुण-दोष से दूसरी वस्तु का गुण वा दोष न प्राप्त करना दिखाया जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

औरन के अनबाढ़े कहा अरु बाढ़े कहा नहि होत चहा है।
औरन के अनरीझे कहा अरु रीझे कहा न मिटावत हा है॥

भूषन श्री सिवराजहि माँगिए एक दुनी बिच दानि महा है।
मंगन औरन के दरबार गए तौ कहा न गए तौ कहा है ॥२८२॥

शब्दार्थ—बाढ़ै = बढ़ने पर, उन्नत होने पर। चहा = इच्छित बात, इच्छा। हा = दुःख-बोधक शब्द, 'हाय हाय', कष्ट।

अर्थ—अन्य लोगों के न बढ़ने से और बढ़ने से क्या लाभ, जब कि उनसे याचकों की इच्छा पूरी नहीं होती। अन्य लोगों के अप्रसन्न होने से या प्रसन्न होने से ही क्या हुआ जब कि वे उनकी "हा हा" को नहीं मिटा सकते—उनके कष्ट दूर नहीं कर सकने। भूषण कवि कहते हैं कि इसलिए केवल एक शिवाजी से ही माँगना चाहिए क्योंकि दुनियाँ में वे ही एक बड़े दानी हैं। माँगने के लिए अन्य राजाओं के दरबार में गये तो क्या और न गये तो क्या! (अर्थात् अन्य स्थानों पर जाने से थोड़ा-बहुत चाहे मिल भी जाय पर याचकों की इच्छा-पूर्ति नहीं होती।)

विवरण—यहाँ यह दिखाया गया है कि शिवाजी के अतिरिक्त अन्य राजाओं की उन्नति का और अवनति का, अथवा उनकी प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता का कवियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अतः अवज्ञा अलङ्कार है।

अनुज्ञा

जहाँ सरस गुन देखि कै, करै दोस की हौस।
तहाँ अनुज्ञा होत है, भूषन कवि यहि रौस ॥२८३॥

शब्दार्थ—यहि रौस = इसी रविश से, इसी ढंग से, इसी क्रम से।

अर्थ—जहाँ सुन्दर गुण देख कर दोष की इच्छा की जाय अर्थात् जहाँ विशेष गुण की लालसा से दोष वाली वस्तु की भी इच्छा की जाय वहाँ भूषण कवि अनुज्ञा अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु,
महादानि साहितनै गरिब-नेवाज के।
भूषन जवाहिर जलूस जरबाफ-जोति,
देखि-देखि सरजा की सुकवि-समाज के॥

तप करि-करि कमलापति सो माँगत यों,
लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के,
बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,
भिखारी हमैं कीजै महाराज सिवराज के ॥२८४॥

शब्दार्थ—जरबाफ = ज़रदोज़, कलाबत्तू से कढ़ा हुआ रेशमी कपड़ा। कमलापति = लक्ष्मीपति, विष्णु।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि आजकल महादानी, दीन-प्रतिपालक, शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी के संसार-प्रसिद्ध दान की महिमा का बखान सुन कर और सवारी के समय वीर-केसरी शिवाजी की कविमंडली के (उनके द्वारा पहने हुए) जवाहरात और कलाबत्तू के काम वाले रेशमी कपड़ों की उज्ज्वल चमक-दमक को देख कर लोग तपस्या कर कर के कमलापति विष्णु भगवान से ऐसी अभिलाषा कर (वरदान) माँगते हैं कि हमें आप न तो जहाजो व्यापारी बनाइए (जो बहुत कमा कर लाते हैं) और न किसी बड़े भारी राज्य के राजा ही बनाइये, वरन् हमें तो केवल महाराज शिवाजी के भिक्षुक ही बनाइए (जिससे कि हमें मनचाहा दान मिले)।

विवरण—यहाँ शिवाजी के अत्याधिक दान (गुण) को देख कर भिखारी के नीच पद की अभिलाषा की गई है, अतः अनुज्ञा है।

लेश

जहँ बरनत गुन दोष कै, कहै दोष गुन रूप।
भूषन ताको लेस कहि, गावत सुकवि अनूप ॥२८५॥

अर्थ—जहाँ गुण को दोष रूप से और दोष को गुण रूप से वर्णन किया जाय, वहाँ श्रेष्ठ कवि लेश अलंकार कहते हैं।

उदाहरण (गुण को दोष)—दोहा

उदैभानु राठौर बर, धर धीरज, गढ़ ऐंड़।
प्रगटै फल तकौ लह्यौ, परिगौ सुर-पुर पैंड़ ॥२८६॥

शब्दार्थ—ऐंड = ऐंठ। परिगौ = पड़ गया। पैंड़ = रास्ता।

अर्थ—वीर श्रेष्ठ उदयभानु राठौड़ ने धैर्य, गढ़ और अपनी ऐंठ को धारण करके उनका प्रत्यक्ष ही फल पा लिया कि वह स्वर्ग के मार्ग में पड़ गया,

अर्थात् वह मारा गया।

विवरण—यहाँ उदयभानु के धैर्य, गढ़ और ऐंड़ धारण करने रूप गुणों को उसकी मृत्यु का कारण कह कर उनका दोष रूप से वर्णन किया गया है।

उदाहरण (दोष को गुण)—दोहा

कोऊ बचत न सामुहें, सरजा सों रन साजि।
भली करी प्रिय! समर ते, जिय लै आये भाजि ॥२८७॥

अर्थ—(शत्रु-स्त्रियाँ अपने पतियों से कहती हैं कि) हे प्रियतम, आपने अच्छा किया जो युद्ध से अपने प्राण (सही सलामत) ले कर दौड़ आये; क्योंकि शिवाजी के सामने युद्ध करके कोई (शत्रु) उनसे बच नहीं सकता (अवश्य मारा जाता है)।

विवरण—यहाँ युद्ध से भाग आने रूप दोष को गुण रूप में कथन किया गया है। पूर्वोक्त 'उल्लास' अलंकार में एक का गुण वा दोष दूसरे को प्राप्त होता है पर यहाँ 'लेश' में किसी के दोष को गुण या गुण को दोष रूप से कल्पित किया जाता है।

तद्गुण

जहाँ आपनो रंग तजि, गहै और को रंग।
ताको तद्गुन कहत हैं, भूषन बुद्धि उतंग ॥२८८॥

शब्दार्थ—बुद्धि उतंग—उत्तंगबुद्धि, प्रौढ़ बुद्धि।

अर्थ—जहाँ (कोई पदार्थ) अपना रंग त्याग कर दूसरे (पदार्थ) का रंग ग्रहण करे, वहाँ प्रौढ़बुद्धि मनुष्य तद्गुण अलंकार कहते हैं, अर्थात् जहाँ अपना गुण (विशेषता) छोड़ कर दूसरी वस्तु के गुण का ग्रहण किया जाना वर्णन किया जाय वहाँ तद्गुण अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पंपा मानसर आदि अगन तलाब लागे,
जाहि के पारन मैं अकथयुत गथ के।
भूषन यों साज्यो राजगढ़ सिवराज रहे,
देव चक्र चाहि कै बनाए राजपथ के ॥

बिन अवलम्ब कलिकानि आसमान मैं ह्वै ,
होत बिसराम जहाँ इन्दु औ उद्‌थ के ।
महत उतंग मनि जोतिन के संग आनि,
कैयो रंग चकहा गहत रबि-रथ के ॥२८९॥

शब्दार्थ--पंपा = किष्किन्धा का एक बड़ा तालाब, इसी के तट पर शबरी ने रामचन्द्र जी का स्वागत किया था और इसी के पश्चिम में ऋष्यमूक पर्वत था, जहाँ श्री रामचन्द्र जी की सुग्रीव से भेंट हुई थी । अगन = अगणित, अनेक । पारन = पत्तों, बगलों । अकथ = अकथनीय । गथ = गाथा, कहानी, ऐतिहासिक बातें । चक = चकित । चाहि कै = देख कर । राजपथ = सदर सड़क । कलिकानि = कलक, रंज, बेचैनी, घबराहट । उदथ = उदय होने वाला, सूर्य । मनि-ज्योतिन = मणियों का प्रकाश, चमक । चकहा = पहिया, चक्र ।

अर्थ—जिस (रायगढ़) के इस ओर और उस ओर, दोनों पाखों में, पंपा, मानसरोवर आदि अगणित इतिहास-प्रसिद्ध अकथनीय गाथा-युक्त तालाब लगे हैं (अर्थात् चित्रित हैं) अथवा अकथनीय गाथायुक्त, पम्पासर, मानसरोवर आदि जैसे तालाब जिस रायगढ़ में सुशोभित हैं, भूषण कवि कहते हैं कि महाराज शिवाजी ने जिस रायगढ़ को ऐसा सजाया है कि देवता भी उसमें बनाये गये राजपथ (मुख्य सड़क) को देख कर चकित हो गये और आकाश में कोई आश्रय न पाने के कारण परेशान—बेचैन--हो कर जहाँ पर सूर्य और चन्द्रमा भी विश्राम लेते हैं, उसी रायगढ़ की अत्यन्त ऊँची (अत्यधिक ऊँचे महलों में) जड़ी हुई रंगबिरंगी मणियों की आभा के मेल से सूर्य के रथ के पहिए कई प्रकार के रंग धारण करते हैं अर्थात् उन ऊँची जड़ी रंग-बिरंगी मणियों की कान्ति सूर्य के रथ पर पड़ती है, और उसके पहिए रंग-बिरंगे हो जाते हैं ।

विवरण—यहाँ सूर्य के रथ के चक्र ने अपना रंग त्याग कर रायगढ़ के ऊँचे महलों पर जड़ी हुई मणियों की ज्योतियों का रंग ग्रहण किया है अतः तद्गुण अलंकार है ।

पूर्वरूप

प्रथम रूप मिटि जात जहँ, फिर वैसोई होय।
भूषन पूरबरूप सो, कहत सयाने लोय ॥२९०॥

अर्थ—जहाँ पहले रूप का नाश (लोप) हो जाता है और फिर वैसा ही रूप हो जाता है, अर्थात् जहाँ प्रथम मिट गये हुए रूप की पुनः प्राप्ति हो वहाँ चतुर लोग पूर्वरूप अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु ब्यास के अंग सुहानी॥
भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी,
पुन्य-चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥२९१॥

अर्थ—जो वाणी (सरस्वती) श्रीब्रह्माजी के मुख से निकलने के कारण तीनों लोकों में अत्यन्त पवित्र मानी गई; फिर (मर्यादा पुरुषोत्तम) श्रीरामचन्द्र जी और (धर्मराज) युधिष्ठिर के चरित्र वर्णन करने में जो वाल्मीकि और महर्षि व्यास के अंगों (मुखों) में सुशोभित हुई, भूषण कहते हैं कि उस पवित्र सरस्वती को कलियुग के कवियों ने (विषयी) राजाओं का यश वर्णन करके नष्ट एवं अपवित्र कर दिया था। वही अब वीर-केसरी शिवाजी के पुण्य-चरित्र रूपी सरोवर में स्नान करके फिर पवित्र हो गई है।

विवरण—अत्यन्त पवित्र सरस्वती को कलियुग के कवियों ने विषयी राजाओं के गुणगान का साधन बना कर कलुषित और नष्ट कर दिया था। वही अब शिवाजी के यश-रूपी तालाब में स्नान कर पुनः पवित्र हो गई, अतः पूर्वरूप अलङ्कार है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

यों सिर पै छहरावत छार हैं जाते उठै असमान बगूरे।
भूषन भूधरऊ धरकैं जिनकै धुनि धक्कन यों बल रूरे॥
ते सरजा सिवराज दिए कविराजन को गजराज गरूरे।
सुंडन सों पहिले जिन सोखि कै फेरि महामद सों नद पूरे ॥२९२॥

शब्दार्थ—छहरावत = छितराते, फैलाते, उड़ाते। छार = खाक,

धूल । भूधरऊ = पहाड़ भी । घरकैं = काँपते हैं, हिल जाते हैं । रूरे = श्रेष्ठ । बली, महाबली । गरूरे = गरूर वाले, मतवाले । सोखि कै = चूस कर, पी कर । पूरे = भर दिये ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जो मदमस्त हाथी सिर पर इस प्रकार (इतनी अधिक) धूल डालते हैं कि जिससे आसमान में बवंडर उठने लग जाते हैं (हाथी का यह स्वभाव है कि वह अपनी सूँड में धूल ले कर अपनी पीठ और मस्तक पर डाला करता है), भूषण कहते हैं कि जो हाथी इतने बलशाली हैं कि उनकी गर्जना और टक्करों से पहाड़ तक डोल जाते हैं, हिल जाते हैं, और जिन्होंने सूँडों से पहले बड़े नदों को सुखा कर फिर अपनी प्रबल मद की धारा से पूर्ण कर दिया, वे मदमस्त गजराज वीर-केसरी शिवाजी ने कविराजों को दिये ।

विवरण—यहाँ पहले हाथियों द्वारा नदों का सुखाया जाना और फिर अपने मद-जल से पूर्ण कर नदों को पूर्व अवस्था में पहुँचा देना वर्णित है, अतः पूर्वरूप अलंकार है ।

तीसरा उदाहरण—मालती सवैया

श्री सरजा सलहेरि के युद्ध घने उमरावन के घर घाले ।
कुम्भ चँदावत सैद पठान कबंधन धावत भूधर हाले ॥
भूषन यों सिवराज की धाक भए पियरे अरुने रँग वाले ।
लोहै कटे लपटे अति लोहु भए मुँह मीरन के पुनि लाले ॥२९३॥

शब्दार्थ—घाले = नष्ट कर दिये । कबंध = सिर रहित धड़ ; युद्ध में वीर गण जब बड़े जोश में आ कर लड़ते हैं तब उनके रक्त में इतनी उष्णता आ जाती है कि सिर कट जाने पर भी उनके हाथ कुछ देर तक पहले की तरह तलवार चलाते रहते हैं । कई बार इसी उष्णता के कारण धड़ पृथ्वी पर गिर कर भी उठ कर कुछ दूर तक दौड़ते हैं, और उष्णता के कम होते ही गिर पड़ते हैं । हाले = हिल गये । अरुने = लाल । लोहै = लोहे से, तलवार से ।

अर्थ—वीर केसरी श्री शिवाजी ने सलहेरे के युद्ध में अनेकों (शत्रु) उमराओं के घरों को नष्ट कर दिया (अर्थात् उन्हें मार कर उनके घरों को बरबाद कर दिया) । वहाँ युद्ध-क्षेत्र में कुम्भावत, चन्द्रावत आदि क्षत्रिय वीरों

और सैयद पठान आदि मुसलमानों के कबंधों के दौड़ने से पहाड़ भी हिल गये। भूषण कहते हैं कि इस प्रकार शिवाजी की धाक से अमीरों के लाल रंगवाले मुख पीले पड़ गये परन्तु शीघ्र ही तलवारों से कटने से और अत्यधिक लोहू में लथपथ होने से वे फिर लाल हो गये।

विवरण—मुसलमानों के लाल रंग वाले मुख भय से पीले हो गये थे अतः उनकी लालिमा चली गई थी, वही लोहूलुहान होने से फिर आ गई, अतः यहाँ पूर्वरूप अलंकार है!

चौथा उदाहरण—मालती सवैया

यों कवि भूषन भाषत है यक तो पहिलै कलिकाल की सैली।
तापर हिन्दुन की सब राह सु नौरँगसाह करी अति मैली॥
साहितनै सिव के डर सों तुरकौ गहि बारिधि की गति पैली।
बेद पुरानन की चरचा अरचा द्विज-देवन की फिर फैली॥२९४॥

शब्दार्थ—सैली = शैली, रीति, परिपाटी। बारिधि = समुद्र। पैली = दूसरा तट, परले पार, उस पार।

अर्थ—भूषण कवि इस प्रकार कहते हैं कि प्रथम तो कलियुग की ही ऐसी शैली (परिपाटी) है (कि उसमें कोई धर्म-कर्म नहीं रहता), तिस पर औरंगज़ेब बादशाह ने हिन्दुओं के सब धर्म-मार्गों को और भी अपवित्र कर डाला। परन्तु अब शिवाजी के भय से तुर्कों ने समुद्र के उस पार का रास्ता पकड़ लिया (अर्थात् सारे मुसलमान समुद्र पार भाग गये) और अब वेद-पुराणों की चर्चा (स्वाध्याय तथा कथा) और देवताओं तथा ब्राह्मणों की पूजा फिर से चारों ओर फैल गई।

विवरण—यहाँ वेद-पुराण की चर्चा तथा देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा आदि हिन्दुओं के धार्मिक कृत्यों का कालिकाल के आने तथा औरंगज़ेब के अत्याचारों से लोप हो जाना और शिवाजी द्वारा फिर उनका प्रचलित होना कथन किया गया है।

अतद्गुण

जहँ संगति तें और को, गुन कछूक नहिं लेत।
ताहि अतद्गुन कहत हैं, भूषन सुकवि सचेत॥२९५॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य वस्तु की संगति होने पर भी उसके गुणों का ग्रहण न करना वर्णन किया जाता है अर्थात् जहाँ एक वस्तु का दूसरी के साथ संसर्ग होता है, फिर भी वह वस्तु दूसरी वस्तु के गुण नहीं ग्रहण करती, वहाँ सावधान श्रेष्ठ कवि अतद्गुण अलंकार कहते हैं। यह तद्गुण का ठीक उलटा है, इसमें भी गुण का अभिप्राय रूप रंग स्वभाव गंध आदि है।

उदाहरण—मालती सवैया

दीनदयाल दुनी प्रतिपालक जे करता निरम्लेच्छ मही के।
भूषन भूधर उद्धरिबो सुने और जिते गुन ते सिवजी के॥
या कलि मैं अवतार लियो उत तेई सुभाव सिवाजी बली के।
आय धरयो हरि तें नररूप पै काज करै सिगरै हरि ही के॥२९६॥

शब्दार्थ—निरम्लेच्छ = म्लेच्छों से रहित, मुसलमानों से रहित। भूधर उद्धरिबौ = पहाड़ का उद्धार करना, विष्णुपक्ष में गोवर्द्धन धारण करना, शिवाजी पक्ष में पहाड़ी किलों का उद्धार करना।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि दीनों पर दयालु होना, दुनियाँ का पालक होना, पृथ्वी को म्लेच्छों से रहित करने वाला होना और पहाड़ का उद्धार करना आदि जितने भी विष्णु भगवान के गुण सुने जाते हैं वे सब शिवाजी में मौजूद हैं। यद्यपि बली शिवाजी ने इस घोर कलियुग में अवतार धारण किया है तब भी उनका स्वभाव वैसा ही (विष्णु भगवान के समान ही) है। (अवतार होने के कारण) शिवाजी ने विष्णु भगवान से अब मनुष्य का रूप धारण किया है, परन्तु वे विष्णु भगवान के ही सब काम करते हैं।

विवरण—शिवाजी ने यद्यपि नर-रूप धारण किया है तब भी उनपर नर-गुणों का प्रभाव नहीं पड़ा, अतः अतद्गुण अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिवाजी खुमान तेरो खग्ग बढ़े मान बढ़े,
मानस लौं बदलत कुरुष उछाह तें।
भूषन भनत क्यों न जाहिर जहान होय,
प्यार पाय तो से ही दिपत नरनाह तें॥

परताप फेटो रहो सुजस लपेटो रहो,
बरतन खरो नर पानिप अथाह तें।
रंगरंग रिपुन के रकत सों रंगो रहै,
रातो दिन रातो पै न रातो होत स्याह तें ॥२९७॥

शब्दार्थ—कुरुष=कुरुख, क्रोध। मानस लौं=मन की भाँति। दिपत=दीप्त, प्रकाशित, तेजस्वी। नरनाह=नरनाथ, राजा। फेटो=चक्कर, प्रभाव। रंग रंग=भाँति भाँति के। रातो=रात, संलग्न, लाल।

अर्थ—हे चिरजीवी शिवाजी, आपकी तलवार बढ़े और मान बढ़े, वह तलवार मन की तरह क्रोध और उत्साह से बदलती रहती है—(क्रोध करके किसी को मार देती है और उत्साह से किसी की रक्षा करती है)। भूषण कहते हैं कि आप जैसे तेजस्वी नरेश का प्रेम पा कर वह तलवार संसार में प्रसिद्ध क्यों न हो (अवश्य ही होनी चाहिये क्योंकि) प्रताप इस तलवार की फेंट में है—चक्कर में है, वश में है, सुयश इस तलवार से लिपटा रहता है, और मनुष्यों के अथाह पानिप (कान्ति, आब और जल) का यह खरा बरतन है, अर्थात् बड़े-बड़े वीरों के पानिप को पी कर (ऐंठ को नष्ट कर) भी यह भरी नहीं। यद्यपि यह तलवार रंग रंग के शत्रुओं के खून से रँगी रहती है और रातदिन इसी कार्य में (खून बहाने में) लगी रहती है फिर भी स्वयं काली से लाल नहीं होती।

विवरण—तलवार रातदिन लाल रक्त में डूबे रहने पर भी काली से लाल नहीं होती, अतः अतद्गुण अलंकार है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

सिव सरजा की जगत मैं, राजत कीरति नौल।
अरि-तिय-दृग-अंजन हरै, तऊ धौल की धौल ॥२९८॥

शब्दार्थ—नौल=नई, उज्ज्वल। धौल=धवल, सफेद।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी की उज्ज्वल कीर्ति संसार में सदा शोभायमान है। यद्यपि वह उज्ज्वल कीर्ति शत्रु-स्त्रियों के नेत्रों के कज्जल को हर लेती है (पति की मृत्यु सुनते ही उनकी आँखों में लगा अञ्जन अश्रु-जल प्रवाह के कारण धुल जाता है, अथवा विधवा स्त्रियाँ कज्जल नहीं लगातीं)

तो भी यह सफेद ही है; काली नहीं हुई।

विवरण—यहाँ 'कीर्ति' का शत्रु-स्त्रियों के नेत्रों से कज्जल को हर लेने पर भी उज्ज्वल बना रहना कथन किया गया है, और उसका काले रंग को ग्रहण न करना दिखाया गया है।

अनुगुण

जहाँ और के संग ते, बढ़ै आपनो रंग।
ता कहँ अनुगुन कहत हैं, भूषन बुद्धि उतंग ॥२९९॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य वस्तु के संग से अपना रंग बढ़े वहाँ उन्नत-बुद्धि लोग अनुगुण अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ दूसरों की संगति से किसी के स्वाभाविक गुणों का अधिक विकसित होना वर्णन किया जाय वहां अनुगुण अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सरजा सिवा के सनमुख आय,
कोऊ बचि जाय न गनीम भुज-बल-मैं ॥
भूषन भनत भौंसिला की दिलदौर सुनि,
धाक ही मरत म्लेच्छ औरँग के दल मैं।
रातौ दिन रोवत रहत जवनी हैं सोक,
परोई रहत दिल्ली आगरे सकल मैं ॥
कज्जल कलित अँसुवान के उमंग संग,
दूनो होत रोज रंग जमुना के जल मैं ॥३००॥

शब्दार्थ—गनीम = शत्रु। भुज-बल-मैं = भुजबलमय, प्रबल। दिलदौर = दिल के इरादे, मनसूबे। कज्जल-कलित = कज्जल से युक्त, काजल-मिले। उमंग = उभाड़, प्रवाह।

अर्थ—शाहजी के पुत्र सरजा राजा शिवाजी के सम्मुख आ कर कोई भी पराक्रमी शत्रु बच कर नहीं जाता। भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब की सेना के मुसलमान तो शिवाजी के मनसूबों को सुन कर उनके आतंक से ही मर जाते हैं। मुसलमानियाँ रात-दिन रोती रहती हैं, समस्त आगरे और दिल्ली में हर समय शोक ही छाया रहता है। मुसलमानियों के नेत्रों के कज्जल-मिले

आँसुओं की झड़ी के साथ यमुना जी का जल दिन-प्रतिदिन रंग में दुगुना होता जाता है, दुगुनी श्यामता धारण करता है

विवरण—यहाँ कज्जलयुक्त अश्रुजल मिलने से यमुना के स्वाभाविक श्याम जल का और अधिक काला होना कथन किया गया है।

मीलित

सदृस वस्तु मैं मिलि जहाँ, भेद न नेक लखाय।
ताको मीलित कहत हैं, भूषन जे कविराय ॥३०१॥

अर्थ—जहाँ सदृश वस्तु में मिल जाने से कोई वस्तु स्पष्ट लक्षित न हो अर्थात् समान रूप रंग वाली वस्तुएँ ऐसी मिल जायँ कि उनमें थोड़ा भी भेद न मालूम दे, वहाँ श्रेष्ठ कवि मीलित अलंकार कहते हैं।

विवरण - मीलित में भिन्न वस्तु होते हुए भी समान धर्म (रूप, रस, गंध) वाली वस्तु में वह मिल जाती है। तद्गुण में ऐसा नहीं होता, उसमें एक वस्तु अपना प्रथम गुण त्याग कर दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण करती है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु,
इन्द्र को अनुज हेरै दुगध-नदीस को ॥
भूषन भनत सुर-सरिता को हंस हेरै,
विधि हेरै हंस को, चकोर रजनीस को ॥
साहितनै सिवराज करनी करी है तैं जु,
होत है अचम्भो देव कोटियो तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने निज,
गिरि को गिरीस हेरैं, गिरिजा गिरीस को ॥३०२॥

शब्दार्थ--हेरत = ढूँढता है। गज-इन्द्र = गजेन्द्र, ऐरावत। इन्द्र को अनुज = इन्द्र का छोटा भाई, वामन, विष्णु। दुगध-नदीस = क्षीर सागर। सुरसरिता = गंगाजी। विधि = ब्रह्मा। रजनीस = चन्द्रमा। करनी = काम। हिराने = खो गये। गिरीस = महादेव।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी, तुमने यह जो (त्रिभुवन को अपने श्वेत यश से छा देने का अद्भुत) काम किया है; उससे

तैंतीसों करोड़ देवताओं को आश्चर्य होता है। तुम्हारी श्वेतकीर्ति में (सब श्वेत वस्तुओं के खो जाने से—मिल जाने से, इन्द्र अपने गजराज ऐरावत को ढूँढता फिरता है और इन्द्र का छोटा भाई विष्णु क्षीर-सागर को तलाश कर रहा है; हंस गंगा को खोज रहे हैं, तथा ब्रह्मा (अपने वाहन) हंस को और चकोर चाँद को ढूँढ रहा है; ऐसे ही महादेव अपने पहाड़ (कैलाश) को ढूँढ रहे हैं और पार्वती महादेवजी की खोज कर रही हैं, परन्तु वे खोजते हुए भी उनको नहीं पाते।

विवरण—शिवाजी की श्वेत कीर्ति में मिल जाने से ऐरावत, क्षीरसागर, गंगाजी, हंस, चन्द्रमा, कैलास और महेश आदि पहचाने नहीं जाते, अतः मीलित अलंकार है।

उन्मीलित

सदृस वस्तु मैं मिलत पुनि, जानत कौनेहु हेत।
उनमीलित तासों कहत, भूषन सुकवि सचेत ॥३०३॥

अर्थ—जहाँ कोई वस्तु पहले सदृश वस्तु में मिल जाय और फिर किसी कारण द्वारा किसी प्रकार पहचानी जाय, वहाँ सचेत सुकवि उन्मीलित अलंकार कहते हैं।

उदाहरण – दोहा

सिव सरजा तब सुजस मैं, मिले धौल छवि तूल।
बोल बास तें जानिए, हंस चमेली फूल ॥३०४॥

शब्दार्थ—छवि = शोभा। तूल = तुल्य, समान।

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी ! तुम्हारे उज्ज्वल यश में समान श्वेत कान्ति वाले (अर्थात् सफेद ही रंग वाले) हंस और चमेली के पुष्प बिलकुल मिल गये हैं, परन्तु वे केवल बोली से (हंस) और सुगंधि से (चमेली के फूल) जाने जाते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के (श्वेत) यश में छिपे हुए हंस और चमेली के फूल का भेद क्रमशः उनकी बोली और गंध के द्वारा जाना गया है; अतः उन्मीलित अलंकार है।

सामान्य

भिन्न रूप जहँ सदृस तें, भेद न जान्यो जाय।
ताहि कहत सामान्य हैं, भूषन कवि समुदाय ॥३०५॥

अर्थ—भिन्न वस्तु होने पर भी सादृश्य के कारण जहाँ भेद न जाना जाय वहाँ समस्त कवि सामान्य अलंकार कहते हैं।

विवरण—पूर्वोक्त मीलित अलंकार में एक वस्तु का गुण (धर्म) दूसरी वस्तु में दूध-पानी की भाँति मिल जाता है, अतः मिलने वाली वस्तु का आकार ही लुप्त हो जाता है, और यहाँ केवल गुण-सादृश्य से भेद-मात्र का तिरोधान (लोप) होता है, किन्तु दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रतीत होते रहते हैं, दोनों के आधार रहते हैं। यही दोनों अलंकारों में भिन्नता है।

उदाहरण—मालती सवैया

पावस की एक राति भली सु महाबली सिंह सिवा गमके तें।
म्लेच्छ हजारन ही कटिगे दस ही मरहट्टन के झमके तें।
भूषन हालि उठे गढ़-भूमि पठान कबंधन के धमके तें।
मीरन के अवसान गये मिलि धोपनि सों चपला चमके तें ॥३०६॥

शब्दार्थ—पावस = वर्षा ऋतु। गमके तें = गूँज से, उत्साहपूर्वक हुङ्कारने पर। कटिगे = कट गये। झमके तें = लड़ाई में, हथियारों के चमकने और खनकने से। धमके तें = धमक से, ज़ोर-ज़ोर से चलने पर जो पैरों का शब्द होता है उसे 'धमक' कहते हैं। अवसान = औसान, सुध-बुध, होश-हवास। धोपनि = तलवारें।

अर्थ—वर्षा ऋतु की एक सुन्दर रात को महाबली वीर शिवाजी के उत्साह-पूर्वक हुङ्कार मारने पर और केवल दस ही मराठों के हथियारों के चमकने और खनकने से हज़ारों म्लेच्छ (मुसलमान) कट गये। भूषण कवि कहते हैं कि (इस भाँति म्लेच्छों के कट जाने पर) पठानों के कबंधों के दौड़ने की धमक से किले की पृथ्वी तक हिलने लगी और तलवारों के साथ मिल कर बिजली के चमकने से सारे अमीर-उमरावों के होश-हवास उड़ गये। वे यह न जान सके कि ये तलवारें चमक रही हैं अथवा बिजली, अर्थात् इधर तलवार चमकती थी उधर वर्षाऋतु होने के कारण बिजली चमकती थी।

अमीर लोग इन दोनों में भेद न कर पाते थे।

विवरण—यहाँ कहा गया है कि मीरों को तलवारों के चमकने और बिजली के दमकने में भेद न जान पड़ता था, इस प्रकार सामान्य अलंकार हुआ। भूषण का यह उदाहरण बहुत स्पष्ट नहीं है। इसका उदाहरण इस प्रकार ठीक होता है—"भरत राम एक अनुहारी। सहसा लखि न सकैं नर नारी॥" अर्थात् राम और भरत का एक रूप होने से वे सहसा पहचाने नहीं जाते।

विशेषक

भिन्न रूप सादृश्य मैं, लहिए कछू बिसेख।
ताहि विशेषक कहत हैं, भूषन सुमति उलेख॥३०७॥

अर्थ—जहाँ दो भिन्न वस्तुओं में रूप सादृश्य होने पर भी किसी विशेषता को पा कर भिन्नता लक्षित हो जाय वहाँ विशेषक अलंकार होता है।

विवरण—पूर्वोक्त उन्मीलित में एक का गुण दूसरे में 'मीलित' की भाँति विलीन हो जाने पर किसी कारण से पृथक्ता जानी जाती है और यहाँ दोनों वस्तुओं कि स्थिति 'सामान्य' की भाँति भिन्न-भिन्न रहती है केवल पहले उनके भेद का तिरोधान होता है और फिर किसी कारण से उनमें पृथक्ता जानी जाती है। यही दोनों में भेद है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अहमदनगर के थान किरवान लै कै,
नवसेरीखान ते खुमान भिर्यो बल तें।
प्यादन सों प्यादे पखरैतन सों पखरैत,
बखतरवारे बखतरवारे हल तें॥
भूषन भनत एते मान घमसान भयो,
जान्यो न परत कौन आयो कौन दल तें।
सम वेष ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके,
बीर जाने हाँके देत, मीर जाने चल तें॥३०८॥

शब्दार्थ—अहमदनगर=निजामशाही बादशाहों की राजधानी थी। यह राज्य १४८६ से १६३७ ई० तक रहा। इसका विस्तार उत्तर में खानदेश से

दक्षिण में नीरा नदी तक और पश्चिम से समुद्र पूर्व में बराड़ तथा बीदर तक था। इसकी राजधानी अहमदनगर भीमा नदी पर समुद्र से साठ कोस पूर्व हट कर है। १६३७ ई० में शाहजहाँ ने इसे विजय किया। यहीं सन् १६५७ में शिवाजी का नौशेरीखाँ के साथ युद्ध हुआ था। थान = स्थान। नवसेरी-खान = नौशेरी खाँ, छंद० १०२ में "खान दौरा" देखिए। भिरयो बल तें = जोर से भिड़ गये। पखरैत = पाखर वाले, झूले वाले, वे शूरवीर सवार जिनके हाथी-घोड़ों पर झूलें पड़ी हुई थीं। बखतर-वारे = कवच वाले। एते मान = इस परिमाण का, ऐसा ज़बरदस्त।

अर्थ – चिरजीवी शिवाजी तलवार ले कर अहमदनगर के स्थान पर नौशेरी खाँ से बड़े ज़ोर के साथ भिड़ गये। पैदल सिपाही पैदल सिपाहियों से, पखरैत पखरैतों से (सवार सवारों से), कवचधारी कवचधारियों से हल्ले के साथ जुट गये। भूषण कवि कहते हैं कि इतना अधिक घमासान युद्ध हुआ कि इसमें यह मालूम नहीं पड़ता था कि किस सेना से कौन योद्धा आया है, क्योंकि उन सबके ही वेश समान थे। वहाँ महाराज शिवाजी के बाँके वीर हुङ्कार मारते हुए या खदेड़ते हुए और मीर लोग भागते हुए पहचाने जाते थे (अर्थात् ललकार देने वाले शिवाजी के वीर सैनिक थे और भागने वाले मुसलमान थे)।

विवरण—शिवाजी और नौशेरीखाँ की सेनाएँ सम वेश होने से परस्पर मिल गई थीं पर हुङ्कारने से शिवाजी के वीरों का पता चल जाता था और भागने से मीर लोग पहचाने जाते थे।

पिहित

पर के मन की जान गति, ताको देत जनाय।
कछू क्रिया करि कहत हैं, पिहित ताहि कविराय ॥३०९॥

अर्थ—दूसरे के मन की बात को जान कर जहाँ किसी क्रिया द्वारा उस पर प्रकट किया जाय वहाँ कवि लोग पिहित अलंकार कहते हैं, अर्थात् आकार अथवा चेष्टा को देख कर जहाँ किसी के मन की बात जान ली जाय और फिर कुछ ऐसी क्रिया की जाय जिससे यह लक्षित हो जाय कि क्रिया करने वाले ने बात जान ली है, वहाँ पिहित अलंकार होता है।

उदाहरण—दोहा

गैर मिसल ठाढ़ौ सिवा, अन्तरजामी नाम।
प्रकट करी रिस, साह को, सरजा करि न सलाम ॥३१०॥

शब्दार्थ—गैर मिसल = अनुचित स्थान पर। रिस = क्रोध।

अर्थ—अन्तर्यामी नाम वाले शिवाजी अनुचित स्थान पर खड़े किये गये (किन्तु अंतर्यामी होने के कारण शिवाजी ने बादशाह के इस नीच भाव को ताड़ लिया) इस पर बादशाद को सलाम न करके उस वीर केसरी ने अपना क्रोध प्रकट कर दिया।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब को सलाम न करके शिवाजी ने यह बतला दिया कि अनुचित स्थान पर खड़ा कराने का भाव मैं समझ गया हूँ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

आनि मिल्यो अरि यों गह्यो, चखन चकत्ता चाव।
साहितनै सरजा सिवा, दियो मुच्छ पर ताव ॥३११॥

शब्दार्थ—चखन = चक्षु, नेत्र। चाव = आनन्द।

अर्थ—'शत्रु आ कर मिला' यह देख कर, औरंगजेब के नेत्रों में प्रसन्नता झलकने लगी। परन्तु शाहजी के पुत्र शिवाजी ने (उसकी इस प्रसन्नता को जान कर) अपनी मूछों पर ताव दिया (अर्थात् मूछों पर ताव दे कर सूचित किया कि मैं तेरी चाल में नहीं आने का)।

विवरण—यहाँ शिवाजी ने औरंगज़ेब के मन की प्रसन्नता का ज्ञान मूछों पर ताव दे कर उसे जताया है।

प्रश्नोत्तर

कोऊ बूझै बात कछु, कोऊ उत्तर देत।
प्रश्नोत्तर ताको कहत, भूषन सुकवि सचेत ॥३१२॥

अर्थ—जब कोई कुछ बात पूछे और कोई उसका उत्तर दे, तब श्रेष्ठ कवि प्रश्नोत्तर अलंकार कहते हैं। अर्थात् एक व्यक्ति प्रश्न करे और दूसरा उसका उत्तर दे, इस प्रकार प्रश्नोत्तर के रूप में किसी बात का जहाँ वर्णन किया जाय वहाँ प्रश्नोत्तर अलंकार होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

लोगन सों भनि भूषन यों कहै खान खवास कहा सिख दैहौ।
आवत देसन लेत सिवा सरजै मिलिहौ भिरिहौ कि भगैहौ॥
एदिल की सभा बोल उठी यों सलाह करोऽब कहाँ भजि जैहौ।
लीन्हो कहा लरिकै अफजल्ल कहा लरिकै तुमहू अब लैहौ॥३१३॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सभा में खवासखाँ लोगों से कहने लगा कि सरजा राजा शिवाजी देशों के देश लेता हुआ आ रहा है; बोलो तुम क्या सलाह देते हो? उससे मेल करोगे, लड़ोगे, अथवा भाग जाओगे? (खवासखाँ की बातें सुन कर) आदिलशाह की सभा के आदमी इस प्रकार बोल उठे कि अब मेल ही कर लो (यही अच्छा है) भला भाग कर कहाँ जाअंगे? और उससे लड़ कर अफजलखाँ ने क्या पाया? और तुम भी अब लड़ कर क्या ले लोगे?

विवरण—यहाँ पहले खवासखाँ ने प्रश्न किया, फिर सभा ने उत्तर दिया। इस प्रश्नोत्तर के रूप में कवि ने एदिलशाह का सभा के निर्णय का वर्णन किया है, अतः प्रश्नोत्तर अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

को दाता, को रन चढ़ो, को जग पालनहार?
कवि भूषन उत्तर दियो, सिव नृप हरि अवतार॥३१४॥

अर्थ—दाता कौन है, कौन लड़ाई पर चढ़ता है, और कौन संसार को पालने वाला है। भूषण कवि उत्तर देते हैं, शिव, राजा और विष्णु का अवतार—अर्थात् दाता शिव है, लड़ाई पर राजा चढ़ते हैं; और संसार का पालन विष्णु का अवतार करता है।

अथवा दाता कौन है, किसने युद्ध के लिए चढ़ाई की है, और संसार का पालन कौन करता है, भूषण इन सब प्रश्नों का (एक) उत्तर देते हैं। विष्णु के अवतार महाराज शिवाजी—अर्थात् शिवाजी ही दानी हैं, वही युद्ध के लिए चढ़ाई करते हैं, और वही संसार को पालने वाले हैं।

तीसरा उदाहरण—छप्पय

कौन करै बस वस्तु कौन इहि लोक बड़ो अति?
को साहस को सिंधु कौन रज-लाज धरै मति॥

को चकवा को सुखद, बसै को सकल सुमन महि ?
अष्टसिद्धि नव-निद्धि देत, माँगे को सो कहि ॥
जग बूझत उत्तर देत इमि, कवि भूषन कवि-कुल-सचिव।
'दच्छिन नरेस सरजा सुभट साहिनंद मकरंद सिव' ॥३१५॥

शब्दार्थ—दच्छिन = दक्षिण, चतुर। रज-लाज = रजपूती लाज। सचिव = मन्त्री।

अर्थ—दुनियाँ के लोग पूछते हैं कि सब वस्तुओं को कौन वश में करता है, इस संसार में कौन बड़ा है, साहस का समुद्र कौन है, और राजपूती लाज का किसको विचार है, चक्रवर्ती अथवा चकवे को सुख देने वाला कौन है. सब सुमनों (सहृदयों सज्जनों के मनों) में कौन बसता है, याचकों को माँगने पर अष्टसिद्धि और नवनिधि कौन देता है ? कविकुल के मंत्री (प्रतिनिधि) भूषण कवि इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर देते हैं कि इन कामों के करने वाले दक्षिणाधीश, वीर केसरी, शाहजी के पुत्र और माल मकरन्द के पौत्र शिवाजी हैं, अर्थात् शिवाजी ही सब वस्तुओं को वश में करने वाले हैं, वे ही संसार में सबसे बड़े हैं, वे ही साहस के समुद्र हैं, उन्हें ही राजपूती लाज का विचार है, वे ही चक्रवर्त्ती को सुख देने वाले है, अथवा सूर्यकुल के होने से चकवा-चकवी को सुख देने वाले हैं, वे ही सब सज्जनों के मन में बसते हैं और वे ही अष्टसिद्धि और नवनिधि देते हैं।

पद संख्या ३१४ की तरह इस पद के भी अन्तिम पंक्ति के शब्दों को अलग-अलग कर इन सब प्रश्नों का दूसरा उत्तर भी दिया जाता है।

१. वस्तुओं को कौन वश में करता है ?—दक्षिण (चतुर) २. संसार में कौन कौन बड़े हैं ?—नरेश। ३. साहस समुद्र (अत्यन्त साहसी) कौन है ?—सरजा (सिंह)। ४. रजपूती की लाज को कौन मस्तक में धारण करता है ?—सुभट। ५. (चकवा) चक्रवर्ती को कौन सुख देता है ?—साहिपुत्र (ज्येष्ठ पुत्र)। ६. सब सुमनों (पुष्पों) में कौन बसता है ?—मकरन्द (पुष्परस)। ७. अष्टसिद्धि और नवनिधि देने वाला कौन है ?—शिव।

व्याजोक्ति

आन हेतु सों आपनो, जहाँ छिपावै रूप।
व्याज उकति तासों कहत, भूषन सुकवि अनूप ॥३१६

अर्थ—जहाँ किसी अन्य हेतु (बहाने) से अपना रूप या हाल प्रकट हो जाने पर छिपाया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि व्याजोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं।
भूषन ते बिन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस बिदेस गए हैं॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं।
देत रिसाय कै उत्तर यों हमही दुनियाँ ते उदास भए हैं ॥३१७॥

शब्दार्थ—जितेक = जितने भी। दच्छिन-जेय सिसोदिया = दक्षिण जीतने वाले सिसौदिया-वंशज शिवाजी। हाल ठए हैं = हालत की है।

अर्थ—जितने भी बादशाहों के अमीर उमराव थे, उन सब को सरजा राजा शिवाजी ने लूट लिया। भूषण कवि कहते हैं कि वे सब निर्धन हो कर फकीर बन कर देश-विदेश में भटकने लगे। उनकी ऐसी हालत देख कर लोग उनसे पूछने लगे कि 'क्या दक्षिण को जीतने वाले सिसौदिया-वंशज शिवाजी ने तुम्हारी यह हालत की है ?' इस बात को सुन कर क्रोधित हो कर वे कहते हैं कि हम स्वयं ही संसार से विरक्त हो गये हैं (शिवाजी के भय से हमारी यह हालत नहीं हुई)।

विवरण—यहाँ अपने फकीर होने का असली भेद खुल जाने पर उसे वैराग्य के बहाने से छिपाया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सिवा बैर औरँग बदन, लगी रहै नित आहि।
कवि भूषन बूझे सदा, कहै देत दुख साहि ॥३१८॥

शब्दार्थ—बदन = मुँह। आहि = आह। साहि = बादशाहत।

अर्थ—शिवाजी से शत्रुता होने के कारण औरंगज़ेब के मुख से सदा 'आह' निकलती रहती है। भूषण कवि कहते हैं कि पूछने पर वह कहता है कि बादशाहत का कार्य-भार दुख देता है, अतः आह निकलती है।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब ने अपनी 'आह' के असली कारण के प्रकट होने पर उसको राज्य-झंझट कह कर छिपाया है।

लोकोक्ति एवं छेकोक्ति

कहनावति जो लोक की, लोक उकति सो जान।
जहाँ कहत उपमान ह्वै, छेक उकति तेहि मान ॥३१६॥

शब्दार्थ—लोकोक्ति = लोक में प्रचलित कहावत।

अर्थ—जहाँ (काव्य में) लोकोक्ति आये वहाँ लोकोक्ति अलङ्कार होता है और जहाँ इसी लोकोक्ति को उपमान-वाक्य की भाँति (पहले कही हुई बात के लिए) कहा जाय वहाँ छेकोक्ति अलंकार माना जाता है।

लोकोक्ति का उदाहरण—दोहा

सिव सरजा की सुधि करौ, भली न कीन्ही पीव।
सूबा ह्वै दच्छिन चले, धरे जात कित जीव ॥३२०॥

अर्थ—(यहाँ शत्रु-स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों से कहती हैं कि) हे प्रियतम! सरजा राजा शिवाजी को तो याद करो (वह कितना प्रबल है); आप जो दक्षिण के सूबेदार बन कर जाते हैं, यह आपने अच्छा नहीं किया। भला अपने प्राण कहाँ रखे जाते हैं—अर्थात् दक्षिण जाने पर आपके प्राण नहीं बचेंगे।

विवरण—यहां "धरै जात कित जीव" यह कहावत कथन की गई है; पर यह उदाहरण अच्छा नहीं, क्योंकि यह कोई अच्छी प्रसिद्ध लोकोक्ति नहीं है।

छेकोक्ति

उदाहरण—दोहा

जे सोहात सिवराज को, ते कबित्त रसमूल।
जे परमेश्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल ॥३२१॥

अर्थ—भगवान पर जो पुष्प चढ़ते हैं वे ही श्रेष्ठ माने जाते हैं, ऐसे ही शिवाजी को जो कवित्त अच्छे लगते हैं वे ही वास्तव में अत्यन्त रसीले हैं, (अन्य नहीं)

विवरण—यहां भी 'जे परमेश्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल' यह लोकोक्ति कही गई है और यह पूर्व कथित 'जे सोहात शिवराज को ते कवित्त रसमूल' के उपमान रूप में कही गई है अतः यहाँ छेकोक्ति है।

दूसरा उदाहरण—किरीट सवैया*

औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्याँते सिधावै सोऊ बिनु कप्पर।
दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयन्द को झप्पर॥
सासताखाँ सँग वे हठि हारे जे साहब सातएँ ठीक भुवप्पर।
ये अब सूबहु आवैं सिवा पर काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर॥३२२॥

शब्दार्थ—सिधावे = जावे। बिनु कप्पर = बिना कपड़े, नंगा। भार = बोझा, उत्तरदायित्व, काम। छागो = बकरा। झप्पर = थप्पड़, तमाचा। भुवप्पर = भूमि पर। साहब सातएँ ठीक भुवप्पर = जो लोग ठीक सातवें आसमान पर थे, बहुत अभिमानी थे। काल्हि = कल। कलींदा = तरबूज़। खप्पर = भिक्षा माँगने का पात्र।

अर्थ—यदि औरंगज़ेब स्वयं दक्षिण पर चढ़ाई करके आवे तो उसे भी यहाँ से बिना कपड़े के ही अर्थात् अपना सब कुछ गँवा कर लौटना पड़ेगा। तिस पर उसने बहादुरखाँ को युद्ध (चढ़ाई) का भार दे कर दक्षिण में लड़ने भेज दिया, भला बकरा हाथी को चपेट कैसे सह सकता है! (अर्थात् शिवाजी के हमले को बहादुरखाँ कैसे सह सकता है!) शाइस्ताखाँ के साथ-साथ वे भी हठ करके हार गये जो कि सातवें आसमान पर थे अर्थात् बड़े अभिमानी थे। अब ये सूबेदार (बहादुरखाँ) शिवाजी पर चढ़ाई करने आये हैं। (भला ये शिवाजी का क्या कर सकेंगे?) यह तो वही बात हुई कि 'कल का जोगी और कलींदे का खप्पर' अर्थात् कल ही योगी हुए और तरबूज़ का खप्पर ले लिया! अर्थात् जिस तरह ऐसे योगी से योग नहीं सधता वैसे ही जिसका शाइस्ताखाँ और महावतखाँ जैसे पुराने अनुभवी योद्धा कुछ न बिगाड़ सके, उसका ये नये सूबेदार क्या कर सकेंगे!

विवरण—यहाँ भी 'काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर' यह कहावत उपमान वाक्य रूप से और साभिप्राय कथन की कई है अतः छेकोक्ति है। लोकोक्ति और छेकोक्ति में यह भेद है कि लोकोक्ति में केवल 'कहावत' का कथन मात्र होता है और छेकोक्ति में 'कहावत' साभिप्राय एक उपमान वाक्य के रूप में कथित होती है।

*इस सवैये में आठ भगण (ऽ।।) होते हैं।

वक्रोक्ति

जहाँ श्लेष सों काकु सों, अरथ लगावे और।
वक्र उकति ताको कहत, भूषन कवि सिरमौर ॥३२३॥

शब्दार्थ—काकु = कंठध्वनि विशेष, जिसमें शब्दों का दूसरा अभिप्राय लिया जाय।

अर्थ—जहाँ श्लिष्ट शब्द होने के कारण या काकु (कण्ठध्वनि) से कथन का अर्थ कुछ और ही लगाया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि वक्रोक्ति अलंकार कहते हैं।

विवरण—श्लेष वक्रोक्ति में श्लिष्ट शब्द होते हैं, जिनके अर्थ के हेर-फेर से वक्रोक्ति होती है। परन्तु काकु-वक्रोक्ति में कंठध्वनि के कारण अर्थ में हेर-फेर होता है, और कंठध्वनि कान का विषय होने के कारण यह शुद्ध शब्दालंकार है। कई प्रमुख अलंकार-शास्त्रियों ने 'काकु-वक्रोक्ति' को शब्दालंकारों में लिखा है। किन्तु भूषण एवं अन्य कई कवियों ने इसका अर्थालङ्कारों में ही वर्णन किया है।

श्लेष से वक्रोक्ति का उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै तेरे बैरि बैरिन को कौतुक सों,
बूझत फिरत कहौ काहे रहेत चिहौ ?
सरजा कै डर हम आए इतै भाजि, तब,
सिंह सो डराय याहू ठौर ते उकचिहौ ॥
भूषन भनत, वै कहैं कि हम सिवा कहैं,
तुम चतुराई सों कहत बात रचिहौ ॥
सिव जापै रूठैं तौ निपट कठिनाई तुम,
बैर त्रिपुरारि के त्रिलोक मैं न बचिहौ ॥३२४॥

शब्दार्थ—तचि = संतप्त, दुखी, व्याकुल। उकचि = उठ भागना, अलग होना। त्रिपुरारि = महादेव, त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु। यह राक्षस राजा बलि का पुत्र था। तीनों लोकों में इसने अपना निवास स्थान बनाया हुआ था। इसलिए किसी को पता ही न चलता था कि वह किस समय किस लोक में है। शिवजी ने एक साथ तीन बाण छोड़ कर इसे मारा था।

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र शिवाजी ! तुम्हारे साथ वैर करने के कारण शत्रुओं को (व्याकुल देख कर लोग) आश्चर्य से (अथवा दिल्लगी के लिए) पूछते हैं कि तुम ऐसे व्याकुल क्यों हो ? (वे इसका उत्तर देते हैं कि) हम 'सरजा' के भय से इधर को भाग कर चले आये हैं। (सरजा से उनका अर्थ शिवाजी था, पर श्लेष से सरजा का अर्थ 'सिंह' मान वे कहने लगे कि) सिंह के भय से तो तुम अब इस स्थान से भी उठ भागोगे। भूषण कवि कहते हैं कि इस बात पर शत्रु लोग कहते हैं कि हम तो शिव (शिवाजी) की बात कहते हैं (सिंह नहीं), तुम तो चतुराई से और ही बात बना कर कहते हो। इसपर उन्होंने फिर कहा कि शिवजी जिस पर नाराज हो जायँ उसे तो बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। त्रिपुरारि (महादेव) से शत्रुता करके तो तुम त्रिलोक में भी न बच पाओगे।

विवरण—यहाँ 'सरजा' और 'शिव' इन दोनों श्लिष्ट शब्दों से वक्ता के अभिप्रेत अर्थ को न ले कर अपितु क्रमशः 'सिंह' और 'महादेव' अर्थ ले कर शत्रुओं की हँसी उड़ाई गई है अतः वक्रोक्ति अलंकार है।

काकु से वक्रोक्ति का उदाहरण—कवित्त मनहरण

सासताखाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि ,
बेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है ,
भूषन भनत जौ लौं भेजौ उत औरै तिन ,
वे ही काज बरजोर कटक कटायो है।
जोई सूबेदार जात सिवाजी सों हारि तासों ,
अवरँगसाहि इमि कहै मन भायो है।
मुलुक लुटायो तौ लुटायो, कहा भयो, तन ,
आपनो बचायो महाकाज करि आयो है ॥३२५॥

अर्थ—(औरंगज़ेब ने) पहले पहल शाइस्ताखाँ को दक्षिण में भेजा, परन्तु उसने वहाँ जा कर (कुछ नहीं किया, उलटा) अपने पुत्र (अब्दुल फतेहखाँ) के साथ-साथ अपना हाथ गँवा दिया (शाइस्ताखाँ का अँगूठा शिवाजी ने काट डाला था)। भूषण कवि कहते हैं कि जब तक और (कटक) सेना (शाइस्ताखाँ की मदद को) भेजी गई तब उसने उधर दक्षिण में

सारी प्रबल सेना व्यर्थ ही कटवा डाली। जो भी सूबेदार शिवाजी से हार कर औरंगज़ेब के पास जाता है, उससे वह इस तरह मनभाई बात कहता है कि यदि समस्त देश लुटा दिया तो उस लुटाने से क्या हुआ ? (अर्थात् कुछ नहीं हुआ) तुमने अपने शरीर को बचा लिया यही बहुत बड़ा काम तुम कर आये हो।

विवरण—यहाँ शिवाजी से परास्त एवं लूटे गये सूबेदारों के प्रति औरंगज़ेब ने यह कहा है 'यदि देश को लुटा दिया वा हार गये तो क्या हुआ ? तुम अपना शरीर तो सही सलामत ले आये यही बड़ा काम किया'। किन्तु इस का तात्पर्य बिलकुल उलटा है। 'काकु' से यही कथन है कि तुम्हें लज्जा नहीं आई कि प्राण बचाने के लिए हार कर चले आये।

दूसरा उदाहरण—दोहा

करि मुहीम आए कहत, हजरत मनसब दैन।
सिव सरजा सों जंग जुरि, ऐहैं बचिकै हैं न ॥३२६॥

शब्दार्थ—मुहीम = चढ़ाई, युद्ध। हज़रत = श्रीमान (औरंगज़ेब) मनसब = उच्च पद।

अर्थ—युद्ध करके आने के बाद श्रीमान मनसब देने को कहते हैं। पर वीर-केसरी शिवाजी से युद्ध करके बच कर आयेंगे तब न !

विवरण—यहाँ युद्ध करके आने के बाद 'हजरत मनसब देने को कहते है' इसका काकु से यही तात्पर्य होता है कि 'हजरत मनसब देना नहीं चाहते' क्योंकि शिवाजी से युद्ध करके वापिस जीवित लौटना असंभव है, तब मनसब कैसा ?

स्वभावोक्ति

साँचो तैसौ बरनिए, जैसो जाति स्वभाव।
ताहि सुभावोकति कहत, भूषन जे कविराव ॥३२७॥

अर्थ—जैसा जिसका जातीय स्वभाव हो उसका जहाँ वैसा ही ठीक-ठीक वर्णन किया जाय वहाँ कविराज स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दान समै देखि द्विज मेरहू कुबेरहू की,
संपति लुटाइबे को हियो ललकत है।

साहि के सपूत सिवसाहि के बदन पर,
सिव की कथान मैं सनेह झलकत है॥
भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सों लरिबे कौ चरचा चलत आनि,
सरजा दृगन के उछाह छलकत है॥३२८॥

शब्दार्थ—ललकत है = लालायित होता है, उमंग से भर जाता है। बलकत है = खौल उठता है, जोश में आ जाता है।

अर्थ—दान देने के समय ब्राह्मण को देख कर सुमेरु पर्वत तथा कुबेर की दौलत को भी लुटाने के लिए शिवाजी का हृदय लालायित हो उठता है, उमंगित हो उठता है। शाहजी के पुत्र शिवाजी के बदन (चेहरे) पर श्री महादेवजी की कथाओं में (कथाओं के सुनने पर) बड़ा प्रेम झलकने लगता है। भूषण कवि कहते हैं कि संसार भर के हिन्दुओं के उद्धार के लिए और तुर्कों के नाश के लिए वह वीर खौल उठता है (जोश में आ जाता है)। और बादशाहों से युद्ध करने की बात चलने पर वीर-केसरी शिवाजी के नेत्रों में उत्साह उमड़ आता है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के दान, भक्तिभाव, वीर भाव आदि का स्वाभाविक वर्णन है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहैं ताही,
ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं।
कहे तें कहत बात कहे तें पियत खात,
भूषन भनत ऊँची साँसन जहत हैं॥
पौढ़े हैं तो पौढ़े बैठे-बैठे खरे-खरे हम,
को हैं कहा करत यों ज्ञान न गहत हैं।
साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि,
साहि सब रातौ दिन सोचत रहत हैं॥३२९॥

शब्दार्थ—चहत हैं = देखते हैं। जहत = (जुहोति) छोड़ते हैं।

पौढ़े=लेटे हुए। ज्ञान न गहत हैं=सुध नहीं ग्रहण करते, सुध-बुध मारी गई है।

अर्थ—किसी के कहने-सुनने पर जिस ओर देखने लगते हैं, उसी ओर एकटक तीन-चार घड़ी तक देखते रहते हैं। कहने पर ही बात करते हैं, कहने पर ही खाते पीते हैं, और भूषण कहते हैं कि वे सदा लंबी-लंबी साँसें छोड़ते रहते हैं। लेते हैं तो लेटे ही हैं, बैठे हैं तो बैठे ही हैं और खड़े हैं तो खड़े ही हैं, हम कौन हैं क्या करते हैं इस प्रकार का उन्हें ज्ञान नहीं है। हे शाहजी के सुपुत्र शिवाजी, तेरी शत्रुता के कारण इसी प्रकार सब बादशाह रात-दिन सोचते रहते हैं।

विवरण—शिवाजी की शत्रुता के कारण चिंतित बादशाहों की अवस्था का स्वाभाविक चित्र कवि ने यहाँ खींच दिखाया है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

उमड़ि कुडाल मैं खवासखान आए भनि,
भूषन त्यों धाए सिवराज पूरे मन के।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर,
मूछैं तरराने मुख बीर धीर जन के॥
एकै कहैं मार मार सम्हरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरे मार बीच बेसम्हार तन के।
कुंडन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर ठौर,
जीरन के ऊपर खडाके खड़गन के॥३३०॥

शब्दार्थ—कुडाल=सावंतवाड़ी से १३ मील उत्तर काली नदी पर स्थित है। जिस समय शिवाजी ने कुडाल पर चढ़ाई की, उस समय खवासखाँ बहुत बड़ी सेना ले कर शिवाजी से लड़ने आया। नवम्बर १६६३ ई० में शिवाजी ने खवासखाँ को हरा कर भगा दिया। इसके बाद बीजापुर के मददगार तथा कुडाल के जागीरदार लक्ष्मण सावंत देसाई से लड़ाई हुई। सावंत जान ले कर भाग गया। कुडाल पर शिवाजी का अधिकार हो गया। पूरे मन के=बड़े उत्साह से। हय=घोड़े। घोर=ज़ोर से। तरराने=खड़ी हो गईं। सम्हरि=सँभलो। मार=लड़ाई, युद्ध। बेसम्हार=बेसुध। कुण्डन=

लोहे का टोप। जीरन = जिरह बख्तर, कवच। खड़का = तलवार बजने की आवाज़।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि ज्योंही (बीजापुर का सेनापति) खवासखाँ (सेना सहित) कुडाल स्थान पर चढ़ कर आया, त्योंही शिवाजी ने उसपर पूर्ण उत्साह से धावा बोल दिया। तब मरदाने (युद्ध के मारू) बाजे सुन-सुन कर घोड़े ज़ोर से हिनहिनाने लगे और धैर्यशील वीर पुरुषों के मुखों पर मूछें तन गईं—खड़ी हो गईं। कोई 'मारो मारो' कहते थे, कोई 'सँभलो सँभलो' कहने लगे और शरीर की सुध-बुध भूल कर लड़ाई के बीच में म्लेच्छ गिरने लगे। जगह-जगह पर सिर के टोपों पर चोट पड़ने से कटाक-कटाक शब्द होता था और कवचों पर तलवारों के पड़ने से खड़ाक-खड़ाक की आवाज़ आती थी।

विवरण—यहाँ युद्ध का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

चौथा उदाहरण—कवित्त मनहरण

आगे आगे तरुन तरायले चलत चले,
तिनके अमोद मन्द-मन्द मोद सकसै।
अड़दार बड़े गड़दारन के हाँके सुनि,
अड़े गैर-गैर माहिं रोस रस अकसै।
तुण्डनाय सुनि गरजत गुंजरत भौंर,
भूषन भनत तेऊ महामद छकसै।
कीरति के काज महाराज सिवराज सब,
ऐसे गजराज कविराजन को बकसै॥३३१॥

शब्दार्थ—तरायले = तरल, चंचल, चपल। अमोद = आमोद, सुगंधि। मोद = आह्लाद। सकसै = फैलता है। अड़दार = अड़ियाल। गड़दार = वे नौकर जो मस्त हाथी को कभी रिझा कर और कभी डंडे से मार कर ठीक करते हैं। हाँक = टिचकार, पशुओं को चलाने की आवाज़। गैर = गैल, राह, रास्ता। रोस रस = क्रोध। अकसे = बिगड़े। तुंडनाय = नरसिंहा, एक प्रकार का बाजा, तुरही अथवा (तुंडनाद) सूँड से निकला हुआ शब्द। मद छकसै = मद छके, मतवाले। बकसै = देते हैं।

अर्थ—चलते समय जो नौजवान और चंचल हाथी (सबसे) आगे आगे चलते हैं, और जिनकी मंद-मंद सुगन्ध से आह्लाद फैलता है, (मदमस्त होने के कारण) जो बड़े अड़ियल हैं, और गड़दारों (साँटेदारों) की हाँकों को सुन कर क्रोध से बिगड़े हुए मार्ग में (स्थान-स्थान पर) अड़ जाते हैं, जो नरसिंहे की आवाज सुन कर गरज उठते हैं तथा जिनके मद के ऊपर भौंरे गूँज रहे हैं, अथवा जिनके (सूँड से निकली) गरजने की आवाज सुन कर भौंरे गँजने लगते हैं, और जो बड़े मद से छके हुए हैं अर्थात् बड़े मदमस्त हैं, भूषण कहते हैं कि यश पाने के लिए महाराजा शिवाजी ऐसे अनेक गजराज कविराजों को देते हैं।

विवरण—यहाँ मदमस्त हाथियों का स्वाभाविक वर्णन है।

भाविक

भयो, होनहारो अरथ, बरनत जहँ परतच्छ।
ताको भाविक कहत हैं, भूषन कवि मति स्वच्छ ॥३३२॥

शब्दार्थ—भयो = हुआ, गत, भूत। होनहारो = होने वाला, भविष्यत्। मतिस्वच्छ = निर्मल बुद्धि।

अर्थ—जहाँ भूत और भविष्यत् की घटनाएँ वर्तमान की तरह वर्णन की जायँ वहाँ निर्मल-बुद्धि भूषण कवि भाविक अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अजौं भूतनाथ मुण्डमाल लेत हरषत,
भूतन अहार लेत अजहूँ उछाह है।
भूषन भनत अजौं काटे करवालन के,
कारे कुंजरन परी कठिन कराह है।
सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो,
कीन्हों कतलाम दिली-दल को सिपाह है।
नदी रन मंडल रुहेलन रुधिर अजौं,
अजौं रविमंडल रुहेलन की राह है ॥३३३॥

अर्थ—अजौं = आज भी, अब भी। कुंजरन = हाथियों। कराह = पीड़ा प्रकट करने वाली आवाज, चिंग्घाड़। रनमंडल = रणभूमि। रुहेलनि = रुहेल-

खंड के रहने वाले लोग, पठान।

अर्थ—वीर केसरी शिवाजी ने सलहेरि के पास दिल्ली की सेना के सिपाहियों का ऐसा कत्ले आम किया कि आज भी (वहाँ से) भूतनाथ (श्रीमहादेवजी) मुंडमाला लेते हुए बड़े आनन्दित होते हैं और भूत-प्रेत गणों को अब भी आहार लेने में बड़ा उत्साह है। भूषण कवि कहते हैं कि तलवारों से कटे हुए काले-काले हाथी अब भी बड़े जोर से कराह रहे हैं और युद्ध भूमि में आज भी रुहेलों के खून से निकली हुई नदी बह रही है और अब भी युद्ध-मंडल में रुहेलों का रास्ता है (जो वीर युद्ध में मरते हैं वे सूर्य-मंडल को भेद कर स्वर्ग को जाते हैं)।

विवरण—यहाँ सलहेरि के युद्ध में हुई भूतकालीन घटना का 'अजौं' इस पद से कवि ने वर्तमानवत् वर्णन किया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

गज घटा उमड़ी महा घन-घटा सी घोर,
भूतल सकल मद्जल सों पटत है।
बेला छाँड़ि उचलत सातौ सिंधु-बारि मन,
मुदित महेस मग नाचत कढ़त है॥
भूषन बढ़त भौंसिला भुवाल को यों तेज,
जेतो सब बारहौ तरनि मैं बढ़त है।
सिवाजी खुमान दल दौरत जहान पर,
आनि तुरकान पर प्रलै प्रगटत है॥३३४॥

शब्दार्थ—गजघटा = हाथियों का समूह। पटत = पट जाता है, भर जाता है। बेला = समुद्र का किनारा। कढ़त है = निकलते हैं। बढ़त = बढ़ता है, फैलता है। बारहौ तरनि = बारहों सूर्य, प्रलयकाल में बारहों सूर्य एक साथ उदित होते हैं।

अर्थ—हाथियों का झुंड बादलों की बड़ी घनघोर घटा के समान उमड़ कर समस्त पृथ्वी को अपने मदजल से पाट देता है, छा देता है—सातों समुद्रों का जल अपने-अपने किनारों को—अपनी मर्यादा को—त्याग कर उछल रहा है और मन में अति प्रसन्न हो कर श्रीमहादेवजी मार्ग में नाचते हुए

तांडव नृत्य करते हुए निकलते हैं (महादेव सृष्टि के संहारक हैं, अतः प्रलय के चिह्न देख कर प्रसन्न होते हैं)। भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी का तेज ऐसा बढ़ रहा है जैसा कि बारहों सूर्यों का तेज प्रकट होता है। इस भाँति जब उनकी सेना संसार पर चढ़ाई करती है तो तुर्कों के लिए प्रलय-सी होती हुई दिखाई पड़ती है (प्रलय के समय में मेघों का घोर वर्षा करना, समुद्र का मर्यादा त्यागना, और बारहों सूर्यों का एक समय ही प्रकट होना आदि बातें होती हैं, वे बातें शिवाजी की सेना चलने पर यहाँ प्रकट हुई है)।

विवरण—यहाँ भविष्य में होने वाली प्रलय का 'शिवाजी खुमान दल दौरत जहान पर आनि तुरकान पर प्रलै प्रकटत है' इस पद से वर्तमान में प्रकट होना कथन किया गया है।

भाविक छवि

जहँ दूरस्थित बस्तु को, देखत बरनत कोय।
भूषन भूषन-राज भनि, भाविकछवि सो होय ॥३३५॥

अर्थ—जहाँ दूरस्थित (परोक्ष) वस्तु को भी प्रत्यक्ष देखने के समान वर्णन किया जाय वहाँ भूषण कवि भाविक छवि अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

सूबन साजि पठावत है नित फौज लखे मरहट्टन केरी।
औरँग आपनि दुग्ग जमाति बिलोकत तेरियै फौज दरेरी ॥
साहितनै सिवसाहि भई भनि भूषन यों तुव धाक घनेरी।
रातहु द्योस दिलीस तकै तुव सैनिक सूरति सूरति घेरी ॥३३६॥

शब्दार्थ—सूबा = सूबेदार। केरी = की। तेरियै = तेरी ही। दरेरी = मर्दित, नष्ट-भ्रष्ट की गई। द्योस = दिवस, दिन। तकै = देखता है। सूरति = शक्ल, सूरत शहर।

अर्थ—प्रतिदिन मराठों की फौज को देख कर औरंगज़ेब अपने सूबेदारों को भली-भाँति सुसज्जित करके भेजता है, हे शिवाजी (फिर भी) वह तेरी सेना द्वारा अपने दुर्ग-समूहों को नष्टभ्रष्ट किया हुआ देखता है। भूषण कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी तुम्हारी इतनी अधिक धाक हो गई है, तुम्हारा इतना आतंक छा गया है कि दिल्लीश्वर औरंगज़ेब रात-दिन ही सूरत

शहर को घेरे हुए तुम्हारे सैनिकों की शक्लें देखा करता है।

विवरण—यहाँ आगरे में बैठे हुए औरंगज़ेब का दूरस्थ सूरत नगर को रात-दिन शत्रुओं से घिरा हुआ देखना कथन किया गया है। अतः भाविक छवि अलंकार है। अन्य कवियों ने इस अलङ्कार को भाविक अलङ्कार के ही अन्तर्गत माना है; परन्तु भूषण ने इसे भिन्न माना है। भाविक अलङ्कार में 'काल' विषयक वर्णन किया जाता है और इसमें 'स्थान' विषयक वर्णन होता है।

उदात्त

अति सम्पति बरनन जहाँ, तासों कहत उदात।
कै आने सु लखाइए, बड़ी आन की बात ॥३३७॥

शब्दार्थ—आन की = अन्य की, किसी व्यक्ति की। बड़ी आन = बड़ी शान, महत्त्व।

अर्थ—जहाँ अति संपत्ति (लोकोत्तर समृद्धि) का वर्णन हो अथवा किसी महान पुरुष के संसर्ग से किसी अन्य वस्तु का महत्त्व दिखाया जाय वहाँ उदात्त अलंकार होता है।

विवरण—उदात्त के उपर्युक्त लक्षण के अनुसार दो भेद हुए (१) जहाँ अत्यन्त संपत्ति का वर्णन हो (२) जहाँ किसी महापुरुष के सम्बन्ध से किसी वस्तु को महान कहा जाय।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

द्वारन मतंग दीसैं आँगन तुरंग हीसैं,
बन्दीजन बारन असीस जस-रत हैं।
भूषन बखानैं जरबाफ के सम्याने ताने,
झालरन मोतिन के झुंड झलरत हैं॥
महाराज सिवा से नेवाजे कविराज ऐसे,
साजि कै समाज तेहि ठौर बिहरत हैं।
लाल करैं प्रात तहाँ नीलमनि करैं रात,
याही भाँति सरजा की चरचा करत हैं ॥३३८॥

शब्दार्थ—मतंग = हाथी। दीसैं = दृष्टिगत होते हैं, दिखाई देते हैं।

हीसैं = हिनहिनाते है। बारन = द्वारों पर। जस-रत = यश में रत, गुण-गान में मग्न। झलरत = झूलते हैं, लटकते हैं। बिहरत हैं = बिहार करते हैं, क्रीड़ा करते हैं, आनंद-मौज उड़ाते हैं।

अर्थ—द्वारों पर हाथी खड़े दिखाई देते हैं, आँगनों में घोड़े हिनहिना रहे हैं, और बंदीजन दरवाज़ों पर खड़े आशीर्वाद दे रहे हैं, तथा यशोगान में मग्न हैं। भूषण कहते हैं कि वहाँ कलाबत्तू के काम किये हुए शामियाने तने हैं और उनकी झालरों में मोतियों के झुंड लटक रहे हैं। इस प्रकार के साज सजा कर शिवाजी के कृपापात्र (शिवाजी से जिन्होंने दान पाया है वे) कविराज उस स्थान पर विचरते हैं जहाँ लालमणि (के प्रकाश) से प्रातःकाल होता है, और नीलमणि (की चमक) से रात्रि होती है, अर्थात् लालमणि की ललाई से उषाकाल हो जाता है और नीलम की नीलिमा से रात की तरह अंधकार छा जाता है। इस प्रकार (ऐश्वर्य पा कर) वे कवि वीर-केसरी शिवाजी की चर्चा किया करते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के कृपापात्र कवियों की लोकोत्तर समृद्धि का वर्णन है, अतः प्रथम प्रकार का उदात्त अलंकार है।

दूसरे भेद का उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहु जनि आगे खता खाहु मति यारो,
गढ़-नाह के डरन कहैं खान यों बखान कै।
भूषन खुमान यह सो है जेहि पूना माहिं,
लाखन मैं सासताखाँ डारयो बिन मान कै॥
हिंदुवान द्रुपदी की ईजति बचैबे काज,
झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान कै।
वहै है सिवाजी जेहि भीम ह्वै अकेले मारयो,
अफजल-कीचक को कीच घमसान कै॥३३९॥

शब्दार्थ—खता = भूल, गलती। गढ़नाह = गढ़पति, शिवाजी। खान = पठान, प्रायः काबुली लोगों को खान कहते हैं, अथवा बहादुरखाँ जिसे औरंगज़ेब ने सन् १६७२ ई० में दक्षिण का सूबेदार नियत किया था। बिन मान = बेइज्ज़त। प्रमान कै = प्रतिज्ञा करके। कीचक = राजा विराट का

साला, जिसने द्रौपदी का सतीत्व नष्ट करना चाहा था, उसे भीम ने मार डाला था। कीच घमसान कै = घोर युद्ध करके।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी के डर से डरे हुए खान (पठान आदि वा बहादुर खाँ) इस प्रकार कहते हैं कि मित्रो, आगे (दक्षिण में) न जाओ, धोखा न खाओ या भूल मत करो। यह वही गढ़पति चिरजीवी (शिवाजी) है जिसने पूना में लाखों सिपाहियों के बीच में शाइस्ताखाँ को बेइज़्ज़त कर डाला था और यह वही शिवाजी है, जिसने भीम हो कर अकेले ही हिन्दू-रूपी द्रौपदी की इज़्ज़त को बचाने के लिए प्रतिज्ञा कर के विराट नगर (की भाँति दुर्ग) से बाहर निकल कर (भीमसेन ने कीचक को नगर के बाहर मारा था, इसी तरह शिवाजी ने भी अपने किले से बाहर निकल कर अफ़ज़लखाँ को मारा था) अफ़ज़लखाँ रूपी कीचक को घोर युद्ध कर के मार डाला।

विवरण—यहाँ भीम की कीचक-वध विषयक वार्ता का शिवाजी द्वारा अफ़ज़लखाँ के मारे जाने रूप कार्य से सम्बन्ध जोड़ कर शिवाजी का महत्त्व प्रकट किया गया है, अतः द्वितीय उदात्त अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

या पूना मैं मति टिकौ, खानबहादुर आय।
ह्याँई साइस्तखान को, दीन्ही सिवा सजाय ॥३४०॥

अर्थ—हे बहादुर खाँ! इस पूना नगर में आ कर तुम न ठहरो क्योंकि यहीं शिवाजी ने शाइस्ताखाँ को सजा दी थी।

विवरण—यहाँ शिवाजी के द्वारा शाइस्तखाँ को दंडित करने रूप महान कार्य के सम्बन्ध से पूना नगर को महत्त्व दिया गया है।

अत्युक्ति

जहाँ सूरतादिकन की, अति अधिकाई होय।
ताहि कहत अतिउक्ति हैं, भूषन जे कवि लोय ॥३४१॥

शब्दार्थ—सूरतादिकन = सूरता (शूरता) आदि बातों की।

अर्थ—जहाँ वीरता आदि बातों का अत्यधिक वर्णन हो वहाँ कविजन अत्युक्ति अलंकार कहते हैं।

विवरण—इस अलंकार में शूरता, दान-वीरता, सत्यवीरता, उदारता,

आदि भावों का वर्णन होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सिवराज ऐसे देत गजराज,
जिन्हैं पाय होत कविराज बेफिकिरि हैं।
झूलत झलमलात झूलैं जरबाफन की,
जकरे जँजीर जोर करत किरिरि हैं।
भूषन भँवर भननात घननात घंट,
पग झननात मानो घन रहे घिरि हैं।
जिनकी गरज सुन दिग्गज बे-आब होत,
मद ही के आब गरकाब होत गिरि हैं॥३४२॥

शब्दार्थ—बेफिकिरि = बेफिक्र, निश्चिन्त। झूलैं = घोड़ों और हाथियों की पीठ पर ओढ़ाया जानेवाला कीमती कपड़ा। जरबाफ = सोने का काम किया हुआ रेशमी कपड़ा। जकरे = जकड़े हुए, बँधे हुए। किरिरि = कट कटा कर। बे-आब = निस्तेज, फीका। आब = पानी। गरकाब = गर्क + आब, पानी में डूबना।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी कवियों को ऐसे हाथी देते हैं कि जिन्हें पा कर वे निश्चिन्त हो जाते हैं, उन्हें किसी तरह का फिक्र नहीं रहता और जिन हाथियों पर कलाबत्तू के काम की चमचमाती हुई झूलें झूलती रहती हैं, जो जंजीरों से बाँधे जाने पर कटकटा कर (छुड़ाने के लिए) बल लगाते हैं, जिनपर (मद-रस-लोभी) भौंरे सदा गुञ्जारते रहते हैं, जिनके घंटे बजते हैं और पैरों में पड़ी जंजीरें और घंटियाँ ऐसी खनखनाती हैं, मानो बादल घिरे हुए (गरज रहे) हों और जिनके गर्जन को सुन कर दिग्गज निस्तेज हो जाते हैं और जिनके मद-जल में पहाड़ भी डूब जाते हैं।

विवरण—यहाँ महाराज शिवाजी के दान की अत्युक्ति है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही,
जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सो।

भूषन भनत तेरे दान-जल-जलधि मैं,
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो।
चंदकर किंजलक चाँदनी पराग, उड़,
वृन्द मकरंद बुन्द पुंज के सरीक सो।
कंद सम कयलास नाक-गंग नाल तेरे,
जस पुंडरीक को अकास चंचरीक सो ॥३४३॥

शब्दार्थ—जगदेव = पँवार-वंशीय राजपूतों में एक प्रसिद्ध तेजस्वी राजा। इसका नाम राजपूताना, गुजरात, मालवा आदि देशों में वीरता तथा उदारता के लिए प्रसिद्ध है। जजाति = ययाति, एक प्रतापी राजा, जिसके पुत्र यदु के नाम से यादव वंश चला। अम्बरीक = अम्बरीष, एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा था। पुराणों में यह परम वैष्णव प्रसिद्ध है। खरीक = तिनका। किंज-लक = किंजल्क, कमल फूल के बीच की बहुत बारीक पीली सींकें। पराग = पुष्प-धूलि। उड़वृन्द = तारागण। पुंज = समूह। सरीक सो = शरीक हुआ हुआ सा, सदृश। कंद = जड़। नाक-गंग = आकाश गंगा। पुंडरीक = श्वेत कमल। चंचरीक = भौंरा। नाल = कमल के फूल की डंडी।

अर्थ—आजकल के इस समय में (जगत् में) हे शिवाजी ! जगदेव जनक, ययाति और अम्बरीष के समान (यशस्वी) तू ही है। भूषण कहते हैं कि तेरे दान के संकल्प-जल के समुद्र में तिनके के समान गुणियों का दारिद्रय बह गया। चन्द्रमा की किरणें तेरे यशरूपी श्वेत कमल का केसर हैं, चाँदनी उसका पराग है, और तारागण मकरंद की बूँदों के समूह के समान हैं। कैलास पर्वत उसकी जड़ है, आकाशगंगा उसकी नाल है और आकाश (उसपर मँडराने वाले) भौंरे के समान है—अर्थात् तेरा यश इतना विस्तीर्ण है कि आकाश भी उसी के विस्तार में आ जाता है।

विवरण—यहाँ दान और यश की अत्युक्ति है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

महाराज सिवराज के, जेते सहज सुभाय।
औरन को अति-उक्ति से, भूषन कहत बनाय ॥३४४॥

अर्थ—महाराज शिवाजी की जो बातें स्वाभाविक हैं उन्हीं को भूषण

कवि अन्य राजाओं के लिए अत्युक्ति के समान वर्णन करते हैं। अर्थात् जो गुण शिवाजी में स्वाभाविक हैं, यदि उन गुणों का किसी दूसरे में होना वर्णन किया जाय तो उसे अत्युक्ति ही समझना चाहिये।

विवरण—यहाँ शिवाजी के अलौकिक गुणों की अत्युक्ति है।

निरुक्ति

नामन को निज बुद्धि सों, कहिए अरथ बनाय।
ताको कहत निरुक्ति हैं, भूषन जे कविराय ॥३४५॥

अर्थ—जहाँ अपनी बुद्धि से नामों (संज्ञा शब्दों) का कोई दूसरा ही अर्थ बना कर कहा जाय वहाँ कवि लोग निरुक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

कवि गन को दारिद-द्विरद, याही दल्यो अमान।
यातें श्री सिवराज को, सरजा कहत जहान ॥३४६॥

शब्दार्थ—दारिद-द्विरद = दारिद्रय रूपी हाथी। दल्यो = दलन किया, नष्ट किया। अमान = बहुत।

अर्थ—कवि लोगों के दारिद्रय-रूपी महान हाथी को इन्होंने नष्ट कर दिया, इसीलिए महाराज शिवाजी को संसार सरजा (सिंह) कहता है।

विवरण—वस्तुतः सरजा शिवाजी की उपाधि है। परन्तु कवियों के दारिद्रय-रूपी हाथी को मारने से उन्हें संसार सरजा (सिंह) कहता है, यह 'सरजा' शब्द की मनमानी किन्तु युक्ति-युक्त व्युत्पत्ति है, इसलिए यहाँ निरुक्ति अलङ्कार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

हर्‌यो रूप इन मदन को, याते भो सिव नाम।
लिये विरद सरजा सबल, अरि-गज दलि संग्राम ॥३४७॥

अर्थ—इन्होंने कामदेव का रूप हर लिया है अर्थात् कामदेव की सुन्दरता को इन्होंने छीन लिया है अतः इनका नाम शिव (शिवाजी) पड़ा (क्योंकि शिवजी ने भी मदन का रूप उसे भस्म करके हर लिया था) और शत्रु-रूपी हाथियों को दलन करके इन्होंने सरजा (सिंह) की सबल उपाधि पाई।

विवरण—यहाँ शिवाजी का 'शिव' नाम प्रकृत है। परन्तु मदन के

रूप को नष्ट करने से उनका नाम 'शिव' हुआ यह अर्थ कल्पित किया गया है। इसी प्रकार शत्रु-रूपी हाथी को मारने से 'सरजा' पदवी मिली, यह भी कल्पित अर्थ है, वास्तव के 'सरजा' शिवाजी की उपाधि है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त-मनहरण

आजु सिवराज महाराज एक तुही सर-
नागत जनन को दिवैया अभै-दान को।
फैली महिमण्डल बड़ाई चहुँ ओर तातें,
कहिए कहाँ लौं ऐसे बड़े परिमान को॥
निपट गँभीर कोऊ लाँघि न सकत बीर,
जोधन को रन देत जैसे भाऊखान को।
'दिल दरियाव' क्यों न कहैं कविराव तोहि,
तो मैं ठहरात आनि पानिप जहान को॥३४८॥

शब्दार्थ—सरनागत=शरण में आये हुए। गँभीर=गहरा। भाऊखान=भाऊसिंह, छन्द सं० ३५ देखो। दरियाव=समुद्र। दिलदरियाव= दरियादिल, उदार।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी! आजकल एक आप ही शरणागत लोगों को अभयदान देने वाले हैं। इसलिए आपकी कीर्ति समस्त संसार में चारों ओर ऐसी फैल गई है कि उसके परिमाण को (विस्तार को) कोई कहाँ तक वर्णन कर सकता है। भाऊसिंह जैसे वीर योद्धाओं को आप सदा रण देते हैं—युद्ध में लड़ कर उन्हें मार डालते हैं और आप बड़े गंभीर हैं इसलिए कोई भी वीर आपका उल्लंघन नहीं कर सकता (अर्थात् आपकी बात कोई नहीं टाल सकता)। फिर समस्त कवि आपको दारियादिल (उदारचेता) क्यों न कहें जब कि उसमें समस्त संसार का पानिप भी (जल तथा इज़्ज़त) आ कर जमा होता है। (अर्थात् शिवाजी समुद्र की तरह अपरिमेय और गंभीर हैं और सबका पानी रखने वाले हैं इसलिए कवि लोग उन्हें दिलदरियाव क्यों न कहें)।

विवरण—यहाँ कवि की उक्ति शिवाजी के प्रति है कि आपमें संसार का पानी आ कर ठहरने से आप को दिलदरियाव क्यों न कहा जाय। वह उदाहरण ठीक नहीं है, 'दिलदरियाव' विशेषण है, नाम नहीं है।

हेतु

"या निमित्त यहई भयो", यों जहँ बरनन होय ।
भूषन हेतु बखानहीं, कवि कोविद सब कोय ॥३४९॥

अर्थ—इसी कारण से यह कार्य हुआ अर्थात् इसके ऐसा होने का निमित्त यही है, जहाँ इस प्रकार का वर्णन हो वहाँ सब विद्वान कवि लोग हेतु अलंकार कहते हैं ।

विवरण—जहाँ कारण का कार्य के साथ वर्णन हो वहाँ हेतु अलंकार समझना चाहिए । किसी किसी ने इस हेतु अलंकार को काव्यलिंग में ही सम्मिलित किया है ।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दारुन दइत हरनाकुस बिदारिबे को,
भयो नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषन भनत त्योंही रावन के मारिबे को,
रामचंद भयो रघुकुल सरदार है।
कंस के कुटिल बल-बंसन बिधुंसिबे को,
भयो जदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे को तेरो अवतार है ॥३५०॥

शब्दार्थ—दारुन = दारुण, भयानक । दइत = दैत्य । हरनाकुस = हिरण्यकशिपु, यह दैत्यराज प्रसिद्ध विष्णु भक्त प्रह्लाद का पिता था । जब इसने अपने पुत्र को विष्णु-भक्त होने के कारण बहुत तंग किया तब भगवान ने नृसिंहावतार धारण कर इसका अंत किया । बिदारिबे को = फाड़ने को । बिधुंसिबे को = विध्वंस करने को, नाश करने के लिए । पुरहूत = इन्द्र ।

अर्थ—महादारुण (भयंकर हिरण्यकशिपु दैत्य को विदीर्ण करने के लिए (भगवान का) विकराल तेजवाला नृसिंह अवतार हुआ । भूषण कवि कहते हैं कि उसी प्रकार रावण को मारने के लिए रघुकुल के सरदार श्री रामचन्द्रजी (अवतीर्ण) हुए और कंस के कुटिल एवं बलवान वंश को नष्ट करने के लिए यदुपति वसुदेव के बेटे श्रीकृष्णचन्द्र का अवतार हुआ । इसी

भाँति है पृथ्वी पर इन्द्र-रूप, शाहजी के सुपुत्र, महाराज शिवाजी ! म्लेच्छों का नाश करने के लिए आपका अवतार हुआ है।

विवरण—"म्लेच्छों को मारने के लिए आपका अवतार हुआ है" इसमें कार्य के साथ कारण का कथन होने से हेतु अलंकार है।

अनुमान

जहाँ काज तें हेतु कै, जहाँ हेतु ते काज।
जानि परत अनुमान तहँ, कहि भूषन कविराज ॥३५१॥

अर्थ—जहाँ कार्य से कारण और कारण से कार्य का बोध हो वहाँ भूषण कवि अनुमान अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चित अनचैन आँसू उगमत नैन देखि,
बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहि नै।
भूषन भनत बूझे आए दरबार तें,
कंपत बार-बार क्यों सम्हार तन नाहिनै ॥
सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै।
सिवाजी की संक मानि गए हौ सुखाय तुम्हें,
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै ॥३५२॥

शब्दार्थ—अनचैन = बेचैन, व्याकुल। कहियत काहिनै = क्यों नहीं कहते। हीनो = क्षीण, फीका। चितौत = चितवत, देखते।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अपने-अपने स्वामियों के चित्त में बेचैनी एवं उनके नेत्रों में जल उमड़ा हुआ देख कर मुसलमानियाँ कहती हैं कि आप पूछने पर भी बतलाते क्यों नहीं ? (आपको क्या दुःख है ?) जब से आप दरबार से आये हैं तब से बार-बार काँप रहे हैं, आपको शरीर की सुध-बुध नहीं है (क्या हो गया ?) आपका दिल धड़क रहा है, सारे शरीर में पसीना आ रहा है, रूप-रंग फीका पड़ गया और न आप दाईं-बाईं ओर को देखते ही हैं (सीधे सामने को ही आपकी नज़र बँधी है)। जान पड़ता है, कि बादशाह (औरङ्गज़ेब) ने आपको दक्षिण देश का सूबेदार बनाया है इसी

कारण आप शिवाजी के भय से सूख गये हैं। (आपके शरीर की ऐसी दशा हो गई है)।

विवरण—सुध-बुध भूलना, पसीना आना, रंग फीका पड़ जाना आदि कार्यों द्वारा दक्षिण की सूबेदारी मिलने का अनुमान किया गया है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अंझा-सी दिन की भई संझा-सी सकल दिसि,
गगन लगन रही गरद छवाय है।
चील्ह गीध बायस समूह घोर रोर करैं,
ठौर-ठौर चारों ओर तम मँडराय है॥
भूषन अँदेस देस-देस के नरेस गन,
आपुस मैं कहत यों गरब गँवाय है।
बड़ो बड़वा को जितवार चहुँधा को दल,
सरजा सिवा को जानियत इत आय है॥३५३॥

शब्दार्थ—अंझा = अनध्याय, नागा। संझा = संध्या। लगन = लगी। बायस = कौवा। रोर = शब्द, चिल्लाहट। अँदेस = अंदेशा, संदेह। बड़वा = बड़वानल, समुद्र की आग।

अर्थ—दिन का अनध्याय सा हो गया है, अर्थात् दिन छिप सा गया है, सब दिशाओं में सन्ध्या सी हो गई है। आकाश में लग कर चारों ओर धूल छा रही है। चील, गिद्ध और कौवों का समूह भयङ्कर शब्द कर रहा है, स्थान-स्थान पर चारों ओर अंधकार छा रहा है। (यह सब देख कर) भूषण कहते हैं कि देश-देश के शंकित (डरे हुए) राजा लोग अपना अभिमान गँवा कर आपस में कहते हैं कि बड़वानल से भी (तेज में) अधिक और चारों दिशाओं को जीतने वाली (जगद्विजयी) शिवाजी की सेना इधर आती मालूम पड़ती है।

विवरण—यहाँ आकाश में छाई हुई धूल को देख कर शिवाजी की सेना के आगमन का बोध होता है, अतः अनुमान अलंकार है।

शब्दालंकार

दोहा

जे अरथालंकार ते, भूषन कहे उदार।
अब शब्दालंकार ये, कहत सुमति अनुसार ॥३५४॥

अर्थ—जितने भी अर्थालङ्कार हैं उन सब का वर्णन उदार भूषण ने कर दिया है। अब इन शब्दालङ्कारों का भी वे अपनी बुद्धि के अनुसार यहाँ वर्णन करते हैं।

छेक एवं लाटानुप्रास

स्वर समेत अच्छर पदनि, आवत सदृस प्रकास।
भिन्न अभिन्न पदन सों, छेक लाट अनुप्रास ॥३५५॥

शब्दार्थ—सदृस प्रकास = समानता प्रकट हो।

अर्थ—जहाँ भिन्न-भिन्न पदों में स्वरयुक्त अक्षरों के सादृश्य का प्रकाश हो वहाँ छेकानुप्रास और जहाँ अभिन्न पदों का सादृश्य प्रकाश हो वहाँ लाटानुप्रास होता है—अर्थात् छेकानुप्रास में वर्णों का सादृश्य होता है और लाटानुप्रास में शब्दों का।

विवरण—अन्य आचार्यों ने अनुप्रास अलङ्कार के पाँच भेद माने हैं—छेक, वृत्ति, श्रुति, अन्त्य और लाट। इनमें से छेक, वृत्ति और लाट प्रमुख हैं। छेक में एक वर्ण की या अनेक वर्णों की एक बार ही आवृत्ति होती है, परन्तु वृत्यनुप्रास में एक या अनेक वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होती है। महाकवि भूषण ने छेक और वृत्ति में भेद नहीं किया, अतः उन्होंने अनुप्रास के दो ही भेद दिये हैं। उनके दिये हुए प्रायः सब उदाहरणों में वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास दोनों ही मिलते हैं। इस तरह उन्होंने वृत्यनुप्रास को 'छेक' के ही अन्तर्गत माना है।

छेकानुप्रास का उदाहरण—अमृतध्वनि†

दिल्लिय दलन दबाय करि सिव सरजा निरसंक।
लूटि लियो सूरति सहर बंकक्करि अति डंक॥

---

† इसमें छः चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं।

बंकक्करि अति डंकक्करि अस संकक्कुलि खल।
सोचच्चकित भरोचच्चलिय विमोचच्चख जल॥
तट्ठट्ठइमन कट्ठट्ठिक सोइ रट्ठट्ठिल्लिय।
सद्ददिसि दिसि भद्दबि भइ रद्दिल्लिय॥३५६॥

शब्दार्थ—निरसंक = निश्शंक, निर्भय। बंकक्करि अति डंक = अत्यंत टेढ़ा डंका कर के, जोरों से डंका बजा कर अथवा अपने डंक को टेढ़ा करके—बिच्छू आदि डंक मारने वाले जीव जब कुपित होते हैं, तब मारने के लिए अपना डंक टेढ़ा कर लेते हैं; भाव यह है कि उनकी तरह कुपित हो कर। संकक्कुलि = शंकाकुलित करके, डरा कर। सोचच्चकित = चकित हो सोचते हैं। भरोचच्चलिय = भड़ोंच शहर की ओर चले। भड़ोंच शहर सूरत से ४० मील दूर नर्मदा नदी के उत्तर तट पर स्थित है। विमोचच्चख जल = (विमोचत् + चख जल) आँखों से आँसू गिराते हुए। तट्ठट्ठइमन (तत् + ठई = मन) तत् अर्थात् परमात्मा (शिव) को मन में ठान कर। कट्ठट्ठिक = (कट = हाथियों के गंड-स्थल) उनको ठिकाने लगा कर। सोई = उसी को, अर्थात् शिवजी के नाम को। रट्ठट्ठिल्लिय = (रट् + ठट् + ठिल्लिय), रट (बार बार कह) कर ठट (समूह) को ठेल दिया, भगा दिया। सद्दद्दिसिदिसि = (सद्यःदिशि दिशि) तुरन्त सब दिशाओं में। भद्दद्बि = भद्द हो कर और दब कर। भई रद्दिल्लीय = दिल्ली रद्द हो गई।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी ने निर्भय हो कर दिल्ली की सेना को दबा कर और बड़े जोर से डंका बजा कर (अथवा अत्यधिक कुपित हो कर) सूरत नगर को लूट लिया। उन्होंने जोर से डंका बजा कर (अथवा अत्यधिक कुपित हो कर) दुष्टों को ऐसा शंकित कर दिया कि वे सोच से चकित हो (सोचते-

---

प्रथम दो चरण मिल कर एक दोहा होता है, और अन्तिम चार चरणों में काव्य छन्द होता है। अंत के चारों चरणों में आठ-आठ मात्राओं पर यति होती है और अन्त में कम से कम दो वर्ण लघु अवश्य होते हैं। छन्द के आदि तथा अंत में एक ही शब्द होता है। द्वितीय चरण के अन्तिम शब्द तीसरे चरण के आदि में रखे जाते हैं।

सोचते हैरान हो) कर नेत्रों से जल गिराते हुए भड़ोंच शहर की ओर भाग गये। शिवाजी ने शिवजी को मन में ठान कर हाथियों के गंड-स्थलों को ठिकाने लगा कर अर्थात् विदीर्ण करके उसी अर्थात् शिवजी के नाम को रटते हुए (हर हर महादेव के नारे लगाते हुए) शत्रु-समूह को ढकेल दिया। इस भाँति उनके परास्त हो जाने पर समस्त दिशाओं में तुरन्त उनकी भद्द हो गई और साथ ही दिल्ली भी दब कर रद्द हो गई (अर्थात् दिल्ली की बादशाहत की कीर्त्ति मिट्टी में मिल गई, दिल्ली दब कर चौपट हो गई)।

विवरण—कई शब्दों की एक बार और कइयों की अनेक बार आवृत्ति होने से यह छेक और वृत्यनुप्रास का उदाहरण है, जिनमें महाकवि भूषण ने कोई भेद नहीं किया। भूषण ने छेकानुप्रास का जो लक्षण दिया है, उसमें 'स्वर समेत' पद विचारणीय है, क्योंकि स्वर बिना मिले भी छेकानुप्रास होता है। जैसे—'दिल्लिय दलन' में 'द' का छेकानुप्रास है, किन्तु 'दिल्लिय' का 'द्' 'इ' स्वर वाला है और दलन का 'द्' 'अ' स्वर वाला है। अतः यही कहना पड़ता है कि यदि स्वर की समानता हो तो और अच्छा है।

दूसरा उदाहरण—अमृतध्वनि

गत बल खान दलेल हुव, खान बहादुर मुद्ध।
सिव सरजा सलहेरि ढिग क्रुद्धद्धरि किय जुद्ध।
क्रुद्धद्धरि किय जुद्धद्धुव अरिअद्धद्धरि करि।
मुंडड्डरि तहँ रुंडड्डुकरत डुंडड्डग भरि।
खेदिद्दर बर छेदिद्दय करि मेदद्दधि दल।
जंगग्गति सुनि रंगग्गलि अवरंग्गत बल॥३५७॥

शब्दार्थ—गतबल = बलहीन। खान दलेल = दिलेरखाँ, यह औरंगज़ेब की ओर से दक्षिण का सूबेदार था। शिवाजी से हारने के बाद यह दक्षिण और मालवा का सूबेदार रहा। सन् १६७२ में इसने चाकन और सलहेरि को साथ-साथ घेरा। सलहेरि में शिवाजी ने इसे बहुत बुरी तरह हराया। इसकी सारी सेना तहस-नहस हो गई। सन् १६७६ ई० में इसने गोलकुंडा पर धावा किया, तब मधुनापन्त से इसे हारना पड़ा। खान बहादुर = बहादुर खाँ। मुद्ध = मुधा, व्यर्थ, अथवा मुग्ध, मूढ़। सलहेरि = छन्द १०६ के शब्दार्थ देखो। क्रुद्धद्धरि

=क्रोध धारण करके। किय जुद्धद्धुव=ध्रुव युद्ध किया, घोर लड़ाई की। अद्धद्धरि करि=शत्रुओं को पकड़ कर आधा काट कर, आधा-आधा कर के। मुंडड्डुरि=मुंड डाल कर। रुंडड्डकरत=रुंड डकार रहे हैं, बोल रहे हैं। डुंडड्डग भरि=डुंड (टुंडे) डग भरते हैं, हाथ कटे वीर दौड़ते हैं। खेदिद्दर=(खेदिद्+दर) दर (दल) को खेद कर, भगा कर। छेदिद्दय=छेद कर। मेदद्दधि दल=फौज की मेदा (चर्बी) को दही की तरह बिलो डाला। जंगग्गति=जङ्ग का हाल। रंगग्गलि=रंग गल गया। अवरंगग्गत बल=औरङ्गज़ेब का बल जाता रहा, हिम्मत टूट गई।

अर्थ—सलहेरि के पास सरजा राजा शिवाजी ने क्रोध धारण करके ऐसा युद्ध किया कि दिलेरखाँ बलहीन हो गया और बहादुरखाँ व्यर्थ सिद्ध हुआ (कुछ न कर सका) अथवा मुग्ध (मूढ़) हो गया। क्रोध धारण करके शिवाजी ने घोर लड़ाई की और शत्रुओं को पकड़-पकड़ कर काट डाला। वहाँ मुंड लुढ़कने लगे, रुंड डकारने (धाड़ मारने) लगे और हाथकटे वीर (इधर-उधर) दौड़ने लगे। मुसलमानों की सेना को खदेड़ कर उसके बल को छेद डाला और सारी सेना की चर्बी को ऐसा मथ डाला जैसा कि दही को मथ डालते हैं। युद्ध की ऐसी दशा सुन कर बादशाह औरंगज़ेब का रंग उड़ गया। (अर्थात् उसका मुँह फीका पड़ गया) और उसकी समस्त हिम्मत जाती रही।

विवरण—अलंकार स्पष्ट है।

तीसरा उदाहरण – अमृतध्वनि

लिय धरि मोहकमसिंह कहँ अरु किसोर नृपकुम्म।
श्री सरजा संग्राम किय भुम्मिम्मधि करि धुम्म॥
भुम्मिम्मधि किय धुम्मिम्मढ़ि रिपु जुम्मम्मलि करि।
जंगग्गरजि उतंगग्गरब मतंगग्गन हरि॥
लक्खक्खन रन दक्खक्खलनि अलक्खक्खिति भरि।
मोलल्लहि जस नोलल्लरि बहलोलल्लिय धरि॥३५८॥

शब्दार्थ—मोहकमसिंह=छन्द २४१ का शब्दार्थ देखिए। किसोरनृप कुम्म=नृप-कुमार किशोरसिंह, यह कोटा-नरेश महाराज माधवसिंह का पुत्र था। दक्षिण में यह मुगलों की ओर से लड़ने गया था। वहीं शिवाजी से भी

लड़ा होगा। किसी-किसी का कहना है कि यह भी मोहकमसिंह के साथ सलहेरि के धावे में मराठों द्वारा पकड़ा गया था, और पीछे मोहकमसिंह की तरह इसे भी छोड़ दिया गया था। भुम्मम्मधि = भूमि में। धुम्मम्मद़ि = धूम से मद कर, धूमधाम से सज कर। जुम्मम्मलि करि = जोम (समूह) को मल कर। जंगग्गरजि = जंग में गरज कर। उतंगग्गरब = बड़े गर्व वाले। मतंगग्गन = हाथियों के समूह। लक्खक्खन = लाखों को क्षण भर। दक्खक्खलनि = दक्ष दुष्टों से। अलक्ख-क्खिति भर = क्षिति (पृथ्वी) को ऐसा भर दिया कि वह अलक्षित हो गई। मोलल्लहि जस नोलल्लरि = लड़ कर नवल (नया) यश मोल लिया (प्राप्त किया)। बहलोलल्लिय धरि = बहलोलखाँ को पकड़ लिया।

अर्थ—वीर केसरी शिवाजी ने पृथ्वी पर धूम मचा कर युद्ध किया और मोहकमसिंह तथा नृप-कुमार किशोरसिंह को पकड़ लिया और धूम-धाम के साथ शत्रुओं के समूहों को मल कर (नष्ट कर) युद्ध में गर्जना करके, बड़े घमंड वाले हाथियों के समूह को हर करके, क्षण भर में लाखों दक्ष दुष्टों (मुसलमानों) से युद्धभूमि को ऐसा भर दिया कि वह अलक्षित हो गई। इस भाँति युद्ध करके और बहलोल खाँ को पकड़ कर शिवाजी ने नूतन यश मोल लिया (अर्थात् बहलोल खाँ को परास्त करने से शिवाजी की कीर्ति और भी बढ़ गई)।

चौथा उदाहरण—अमृतध्वनि

लिय जिति दिल्ली मुलुक सब, सिव सरजा जुरि जंग।
भनि भूषन भूपति भजे, भंगग्गरब तिलंग॥
भंगग्गरब तिलंगग्गयउ कलिंगग्गलि अति।
दुदंदबि दुहु दंददलनि बिलंददहसति॥
लच्छच्छिन करि म्लेच्छच्छय किय रच्छच्छबि छिति।
हल्लल्लगि नरपल्लल्लरि नरपल्लल्लिय जिति॥३५९॥

शब्दार्थ—भंगग्गरब = (भङ्ग + गर्व) जिसका गर्व भङ्ग (चूर-चूर) हो गया हो। तिलङ्ग = तैलङ्ग, तिलङ्गाना, आधुनिक आंध्र देश, महानदी और कृष्णा के बीच बसा पूर्वी समुद्र के तट का प्रदेश, इस देश की भाषा तेलगू है। गयउ कलिगग्गलि अति = कलिंग देश (आधुनिक उड़ीसा प्रदेश के आसपास का प्राचीन समुद्र-तटस्थ देश) अत्यन्त गल गया

(अस्तव्यस्त हो गया)। दुंदद्दबि दुहु दंदद्दलनि = (युद्ध में) दब कर दोनों दलों (तिलंग और कलिंग) को दंद (दुःख) हुआ। बिलंदद्दहसति = बिलंद (बुलंद, बड़ा) दहशत (डर), बड़ा डर। लच्छच्छिन = क्षण भर में लाखों। म्लेच्छच्छय = म्लेच्छों का नाश। किय रच्छच्छवि छिति = छिति (पृथ्वी, भारत भूमि) की शोभा की रक्षा की। हल्लल्लगि = हल्ला (धावा) करके। नरपल्लल्लरि (नरपाल + लरि) राजाओं से लड़ कर। परनल्लल्लिय जिति = परनाले को जीत लिया। परनाला छन्द १०६ के शब्दार्थ में देखिये।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी ने युद्ध करके दिल्ली के सब (दक्षिणी) मुल्क (परगने) जीत लिये। भूषण कवि कहते हैं कि उन देशों के राजा लोग भाग उठे और तैलंग देश के राजा का घमंड नष्ट हो गया तथा कलिंग देश भी अत्यन्त गल गया—अस्त-व्यस्त हो गया। युद्ध में दब जाने से उन दोनों (तैलंग और कलिंग देश के राजाओं) को बड़ा दुःख और भारी डर हो गया। क्षण भर में लाखों म्लेच्छों का नाश करके महाराज शिवाजी ने भारत-भूमि की शोभा की रक्षा की और हल्ला करके (धावा बोल कर) तथा राजाओं से लड़ कर परनाले के किले को विजय कर लिया।

पाँचवाँ उदाहरण—छप्पय

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत घिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषन तेज कियो अटल।
सिवराज साहि सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोल दल॥२६०॥

शब्दार्थ—मुंड = मूँड, सिर। पटत = पाट रही हैं, भर रही हैं। घन = बहुत। सिद्ध = वे तांत्रिक लोग जो मुर्दों पर बैठ कर अपना योग तंत्र सिद्ध करते हैं। रसत मन = मन में आनन्दित होते हैं। बूत = बूता, शक्ति। मंडि = इकट्ठे हो कर। गन = भूत-प्रेतादि गण। डंडि = द्वन्द्व (झगड़ा)। दलि = दलन करके, नष्ट करके। अडोल = अचल।

अर्थ—कहीं मूँड (सिर) कटते हैं, कहीं कबंध नाचते हैं, कहीं हाथियों

की बहुत सी सूँड़ें कट कर पृथ्वी को पाट दे रही हैं (भर रही हैं)। कहीं मुर्दों पर बैठे गिद्ध पक्षी शोभा पाते हैं। कहीं सिद्ध (तांत्रिक) लोग हँसते हैं और उनके मन में आनन्द बढ़ रहा है (क्योंकि मुर्दे बहुत से हैं)। कहीं भूत फिरते हुए आपस में बल-पूर्वक लड़ते हैं, कहीं देवदूत (मृतक वीर पुरुषों की आत्माओं को स्वर्ग ले जाने के लिए) इकट्ठे हो रहे हैं। कहीं कालिका नृत्य करती है तो कहीं भूत-गण मंडल बना कर कर इकट्ठे हो कर शोर मचा रहे हैं, और झगड़ा कर रहे हैं। भूषण कवि कहते हैं कि इस भाँति शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी ने घोर युद्ध कर और बहलोल खाँ की अचल सेना को नष्ट करके तलवार के बल से अपना तेज अटल कर दिया।

छठा उदाहरण—छप्पय

क्रुद्ध फिरत अति जुद्ध जुरत नहिं रुद्ध मुरत भट।
खग्ग बजत अरि बग्ग तजत सिर पग्ग सजत चट॥
दुक्कि फिरत मद झुक्कि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि।
रङ्ग रकत हर संग छकत चतुरङ्ग थकत भनि॥
इमि करि संगर अतिही विषम भूषन सुजस कियो अचल।
सिवराज साहिसुव खग्ग बल दलि अडोल बहलोल दल॥३६१॥

शब्दार्थ—रुद्ध = रुके हुए। बग्ग = घोड़े की बाग, लगाम। चट = तुरंत। दुक्कि = घात में छिप कर। मद झुक्कि = मद में झूम कर। कुक्कि = कूक, चीख। हर = महादेव। संग = साथ, साथी। संगर = युद्ध।

अर्थ—वीरगण क्रोधित हो घूम-घूम कर युद्ध में जुड़ते हैं और शत्रु द्वारा आगे से रोके जाने पर भी वापिस नहीं लौटते (अर्थात् युद्ध किये ही जाते हैं) तलवारें ज़ोर से चल रही हैं; शत्रुओं के हाथों से घोड़ों की लगामें छूट रही हैं (तलवार का घाव लगने पर योद्धा) झटपट उसपर सिर की पगड़ी बाँध देते हैं। कई योद्धा शत्रु की घात में छिपे फिरते हैं; कोई मदोन्मत्त हो कर लड़ रहे हैं और कोई चीख मार कर गिर पड़ते हैं। महादेव के साथी भूत-प्रेतादि रक्तपान करके अघा जाते हैं और चतुरङ्गिनी सेना थक जाती है। भूषण कवि कहते हैं कि इस प्रकार बड़ा भयंकर युद्ध करके और अपनी तलवार के ज़ोर से बहलोलखाँ की अचल सेना को नष्ट कर महाराज शिवाजी ने अपना

सुयश अटल कर दिया।

सातवाँ उदाहरण—कवित्त मनहरण

बानर बरार बाघ बैहर बिलार बिग,
बगरे बराह जानवरन के जोम हैं।
भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं,
भीतर भवन भरे लीलगऊ लोम हैं।
ऐंडायल गजगन गैंडा गरराात गनि,
गेहन मैं गोहन गरूर गहे गोम हैं।
शिवाजी की धाक मिले खलकुल खाक बसे,
खलन के खैलन खबीसन के खोम हैं ॥३६२॥

शब्दार्थ—बरार = बरिआर, प्रबल। बैहर = भयंकर। बिग = भेड़िया। बगरे = फैले। बराह = सूअर। जोम = समूह, झुण्ड। भालुक = भालू, रीछ। लीलगऊ = नीलगाय। लोम = लोमड़ी। ऐंडायल = अड़ियल, मतवाले। गरराात = गर्जना करते हैं। गेहन = घरों। गोहन = गोह, छिपकली की जाति का जन्तु। गोम = गोमायु, सियार। खैलन = खैरन, खेड़ों में, गाँवों में। **खबीस** = दुष्ट आत्मा, भूत-प्रेत, बोल-चाल में बूढ़े कंजूस आदमी को भी खबीस कहते हैं। खोम = कौम, समूह।

अर्थ—बली एवं भयंकर बन्दर, व्याघ्र, बिलाव, भेड़िये और सूअर आदि जानवरों के झुण्ड के झुण्ड (चारों ओर) फैल गये। भूषण कवि कहते हैं कि बड़े भयंकर भालू (रीछ), नीलगाय और लोमड़ियाँ शत्रुओं के घरों के भीतर भर गये (अर्थात् उन्होंने वहाँ उजाड़ समझ अपना निवासस्थान बना लिया)। मतवाले हाथी और गैंडों के झुंड ज़ोर-ज़ोर से गर्जना करते हैं और गोह और गरूर गहे (अभिमानी) गीदड़ घरों में हैं। इस तरह शिवाजी महाराज की धाक से दुष्टों (मुसलमानों) के वंश के वंश धूल में मिल गये हैं और अब उनके ग्रामों में (डेरों में) भूत-प्रेतों के झुण्ड बस गये हैं।

लाटानुप्रास का उदाहरण—कवित्त मनहरण

तुरमती तहखाने तीतर गुसलखाने,
सूकर खिलहखाने कूकत करीस हैं।

हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,
पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं ॥
भूषन सिवाजी गाजी खग्गसों खपाए खल,
खाने खाने खलन के खेरे भये खीस हैं ।
खड़गी खजाने खरगोस खिलवतखाने,
खीसैं खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं ॥३६३॥

शब्दार्थ—तुरमती = बाज की किस्म का एक शिकारी पक्षी । सिलहखाने = हथियार रखने का स्थान, शस्त्रालय । करीस = गजराज । हरमखाने = अन्तःपुर, जनानखाना । स्याही = साही, एक जन्तु जिसके शरीर पर लंबे लंबे काँटे होते हैं । सुतुरखाने = ऊँटों का बाड़ा । पाढ़ा = एक प्रकार का हिरण । पीलखाना = हाथियों का स्थान । करंजखाना = मुर्गों के रहने का स्थान । कीस = बन्दर । खपाए = नष्ट किये । खाने-खाने = स्थान-स्थान । खीस = नष्ट, बरबाद । खीसैं = दाँत । खड़गी = गैंडा । खिलवतखाने = सलाह का एकांत कमरा । खसखाने = खस की टट्टी लगा हुआ कमरा ।

अर्थ—तहखाने में बाज़, स्नानागार में तीतर तथा शस्त्रालय में सूअर और हाथी ज़ोर-ज़ोर से शब्द कर रहे हैं । अन्तःपुर में हिरन, सुतुरखाने में साही, फीलखाने में पाढ़े और मुर्गों के स्थान पर कीस (बन्दर) रहते हैं । भूषण कवि कहते हैं कि विजयी महाराज शिवाजी ने अपनी तलवार से दुष्टों (मुसलमानों) को नष्ट कर दिया और उनके घर और गाँव बरबाद हो गये हैं । उनके खज़ानों में गैंडे रहने लग गये हैं । एकान्त कमरों में खरगोश और खसखाने में भूत-प्रेत दाँत निकाल-निकाल कर खाँसते हैं (अर्थात् सब स्थान उजाड़ हो गये हैं, शिवाजी के शत्रुओं के घरों में कहीं मनुष्य नहीं रहते) ।

विवरण—'खाने' शब्द की एक ही अर्थ में भिन्न-भिन्न पदों के साथ आवृत्ति होने से लाटानुप्रास है ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

औरन के जाँचे कहा, नहिं जाँच्यो सिवराज ?
औरन के जाँचे कहा, जो जाँच्यो सिवराज ? ॥३६४॥

शब्दार्थ—जाँच्यो = याचना की; माँगा ।

अर्थ—यदि शिवाजी से याचना नहीं की—यदि शिवाजी से नहीं माँगा—तो औरों से याचना करना किस काम का? पर्याप्त धन कभी न मिलेगा। और यदि शिवाजी से याचना कर ली तो औरों से माँगना ही क्या? शिवाजी याचकों को इतना धन दे देते हैं कि याचक को फिर किसी से माँगने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

यमक

भिन्न अरथ फिरि फिरि जहाँ, वेई अच्छर वृन्द।
आवत हैं, सो जमक करि, बरनत बुद्धि बलंद॥३६५॥

अर्थ—जहाँ वही अक्षर-समूह बार-बार आवे परन्तु अर्थ भिन्न हो, वहाँ विशाल-बुद्धि मनुष्य यमक अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पूनावारी सुति कै अमीरन की गति लई,
भागिबे को मीरन समीरन की गति है।
मार्‌यो जुरि जंग जसवंत जसवंत जाके,
संग केते रजपूत रजपूत-पति है।
भूसन भनै यों कुल भूषन भुसिल सिव-
राज तोहि दीन्ही सिवराज बरकति है।
नौहू खंड दीप भूप भूतल के दीप आजु,
समै के दिलीप दिलीपति को सिदति है॥३६६॥

शब्दार्थ—समीरन = वायु। जसवंत = (१) मारवाड़ के महाराज यशवन्तसिंह (२) यशवाले, यशस्वी। रजपूत = राजपूत। रजपूत-पति = (रज = राजपूती आन, पूत = पवित्र, पति = स्वामी) पवित्र राजपूती आन के स्वामी। राज-बरकति = राज्य की वृद्धि। दिलीप = अयोध्या के प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंशी राजा, जिनकी स्त्री सुदक्षिणा के गर्भ से राजा रघु उत्पन्न हुए थे। वे बड़े गोभक्त थे। महर्षि वसिष्ठ की कामधेनु गौ के लिए अपनी जान देने को तैयार हो गये थे, इसी कारण भूषण ने ब्राह्मण और गौ के भक्त शिवाजी को दिलीप कहा है। सिदति = सीदति, कष्ट देती है।

अर्थ—पूना में अमीरों (शाइस्ताखाँ आदि) की जो दुर्दशा हुई थी

उसे सुन कर मीर लोगों ने भागने के लिए हवा की गति ले ली है, अर्थात् (वे वहाँ से हवा हो गये) अत्यन्त तेजी से भाग गये। वीरकेसरी शिवाजी ने उस यशस्वी जसवन्तसिंह को युद्ध में भिड़ कर मार भगाया जिसके साथ कितने ही पवित्र रजपूती आन को निबाहने वाले राजपूत थे। भूषण कहते हैं कि हे नौखण्ड और सप्तद्वीपों के राजा, पृथ्वी के दीपक (पृथ्वी में श्रेष्ठ) और आज-कल के दिलीप तथा कुल-भूषण भौंसिला राजा शिवाजी, तुझे शिवजी ने राज्य में बरकत दी है, तेरी इतनी राज्य-वृद्धि की है कि वह दिल्लीपति औरंगज़ेब को कष्ट देती है, चुभती है।

विवरण—यहाँ मीरन, जसवन्त, रजपूत, भूषन, सिवराज, दीप और दिलीप आदि अक्षर-समूह की आवृत्ति भिन्न-भिन्न अर्थ में होने से यमक है। यमकालंकार और लाटानुप्रास में यह भेद है कि यमकालङ्कार में जिन शब्दों वा शब्द-खंडों की आवृत्ति होती है उनके अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं परन्तु लाटानुप्रास में एक ही अर्थ वाले शब्दों एवं वाक्यों की आवृत्ति होती है, केवल अन्वय से ही तात्पर्य में भेद होता है।

पुनरुक्तवदाभास

भासति है पुनरुक्ति सी, नहिं निदान पुनरुक्ति।
वदाभासपुनरुक्त सों, भूषन बरनत जुक्ति ॥३६७॥

अर्थ—जहाँ पुनरुक्ति का आभास मात्र हो, अर्थात् जहाँ पुनरुक्ति-सी जान पड़े, परन्तु वास्तव में पुनरुक्ति न हो वहाँ पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अरिन के दल सैन संग रमैं समुहाने,
टूक टूक सकल कै डारै घमसान मैं।
बार बार रूरो महानद परवाह पूरो,
बहत है हाथिन के मद जल दान मैं ॥
भूषन भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल,
सूर, रवि कैसो तेज तीखन कृपान मैं ॥

माल-मकरंद जू के नन्द कलानिधि तेरो,
सरजा सिवाजी जस जगत जहान मैं ॥३६८॥

शब्दार्थ—सैन संग रमैं = शयन (में) संग रमैं अर्थात् साथ ही साथ मरे पड़े हैं। समुहाने = सामने आने पर, मुकाबला करने पर। कै डारे = कर डाले। रूरो = सुन्दर। सूर = शूर। जगत = जगता है, प्रसिद्ध है। जहान = दुनिया।

अर्थ—हे शिवाजी, घोर घमासान में शत्रुओं की सेना के सामने आने पर आपने उन सबके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, और वे अब सब शयन में साथ ही रमते हैं—साथ साथ मरे पड़े हैं। और आपने अपने दान के उस संकल्प-जल से जिसमें हाथियों का मद बह रहा है, बार-बार सुन्दर नदियों के प्रवाह को भर दिया है। भूषण कवि कहते हैं कि हे विशालबाहु वीर भौंसिला राजा! आपकी तीक्ष्ण तलवार में सूर्य के समान तेज है। हे माल मकरंद जी के कुलचन्द्र महाराज वीरकेसरी शिवाजी! आपका यश सारे संसार में जग रहा है, फैल रहा है।

विवरण—यहाँ दल और सैन, संगर और घमसान, सूर और रवि, जगत और जहान तथा मद और दान आदि शब्दों का एक ही अर्थ प्रतीत होता है, किन्तु वस्तुतः पृथक्-पृथक् अर्थ है। अतः यहाँ पुनरुक्तवदाभास है।

चित्र

लिखे सुने अचरज बढ़े, रचना होय विचित्र।
कामधेनु आदिक घने, भूषन बरनत चित्र ॥३६९॥

अर्थ—जिस विचित्र वाक्य-रचना के देखने और पढ़ने में आश्चर्य उत्पन्न हो उसे चित्र कहते हैं। ऐसे अलंकार कामधेनु आदि अनेक प्रकार के होते हैं।

विवरण—ऐसी रचना में चित्र भी बनते हैं, जैसे कमल, चँवर, कृपाण, धनुष आदि।

उदाहरण (कामधेनु चित्र)—दुर्मिल सवैया

धुव जो	गुरता	तिन को	गुरु भूषन	दानि बड़ो	गिरजा	पिव है
हुव जो	हरता	रिन को	तरु भूषन	दानि बड़ो	सिरजा	छिव है
भुव जो	भरता	दिन को	नर भूषन	दानि बड़ो	सरजा	सिव है
तुव जो	करता	इन को	अरु भूषन	दानि बड़ो	बरजा	निव है

शब्दार्थ—धुव = ध्रुव, अचल। भूषन = अलंकार, श्रेष्ठ। गिरजा-पिव = गिरिजापति, महादेव। हुव = हुआ। हरता = हरने वाला। रिन = ऋण। तरु-भूषण = वृक्षों में श्रेष्ठ, कल्पवृक्ष। सिरजा = बनाया गया है। भरता = भरण-पोषण करने वाला, स्वामी। दिन को = प्रतिदिन, आज कल। करता = कर्ता, रचयिता। वर + जानि + वहै = उसे श्रेष्ठ जान।

अर्थ—(इस छन्द के रूप-भेद से कई अर्थ हो सकते हैं, उनमें से एक इस प्रकार होगा) जिनकी गुरुता (उत्कृष्टता) अचल है उन (देवताओं) में परमदानी महादेव जी सर्वश्रेष्ठ (उपस्थित) हैं और धन संकट को दूर करने वाला महादान की सीमा कल्प-वृक्ष भी उपस्थित है। परन्तु आजकल पृथ्वी का भरण-पोषण करने वाले मनुष्यों में श्रेष्ठ सरजा राजा शिवाजी ही बड़े दानी प्रसिद्ध हैं। हे भूषण, तू जो इन कामधेनु आदि अन्य अलंकारों को बनाने वाला है तू उन्हीं शिवाजी को सभी दानियों में श्रेष्ठ समझ।

विवरण—इस विचित्र शब्द योजना वाले छन्द से ७ × ४ = २८ सवैये बन सकते हैं। भिन्न-भिन्न सवैये का अर्थ भी भिन्न-भिन्न होगा। पर उनमें बड़ी खींचातानी करनी पड़ती है अतः उनका वर्णन नहीं किया गया।

संकर

भूषन एक कवित्त मैं, भूषन होत अनेक।
संकर ताको कहत हैं, जिन्हैं कबित की टेक ॥३७१॥

अर्थ—जहाँ एक कवित्त में अनेक अलंकार हों वहाँ कविता-प्रेमी सज्जन 'संकर' नामक उभयालंकार कहते हैं।

विवरण—उभयालंकार के दो भेद होते हैं—'संसृष्टि' और 'संकर'। जहाँ पर अलंकार तिल-तंडुल (तिल और चावल) की भाँति मिले रहते हैं वहाँ 'संसृष्टि' और जहाँ नीर-क्षीर की तरह मिले रहते हैं वहाँ संकर होता है। भूषण का दिया हुआ लक्षण संकर का न हो कर उभयालंकार का लक्षण है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

ऐसे बाजिरात देत महाराज सिवराज,
भूषन जे बाज की समाजैं निदरत हैं।
पौन पायहीन, दृग घूँघट मैं लीन, मीन,
जल मैं बिलीन, क्यों बराबरी करत हैं ?
सबते चलाक चित तेऊ कुलि आलम के,
रहैं उर अन्तर मैं धीर न धरत हैं।
जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर
एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं ॥३७२॥

शब्दार्थ—बाजिराज = श्रेष्ठ घोड़ा। पायहीन = बिना पाँव के। लीन = छिपे। मीन = मछली। विलीन = लुप्त। कुलि आलम = कुल आलम, समस्त संसार। उर अन्तर = हृदय के भीतर। तीर एक भरि = एक तीर भर की दूरी, जितनी दूर पर जा कर एक तीर गिरे उतनी दूरी को एक तीर कहते हैं।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी महाराज ऐसे श्रेष्ठ घोड़े देते हैं कि जो (अपनी तेजी के सम्मुख) बाज पक्षियों के समाज को भी मात करते हैं। पवन चरण-हीन है अर्थात् हवा के पैर नहीं हैं; (युवतियों के चंचल) नेत्र घूँघट में छिपे हुए हैं, और मछली पानी में छिपी रहती है इसलिए ये सब उन (चंचल घोड़ों) की समता कैसे कर सकते हैं। सबसे अधिक चंचल मन है परन्तु वह भी समस्त संसार के प्राणियों के हृदयों में रहता है और (घोड़ों की चंचलता की समता न कर सकने के कारण) धैर्य नहीं धारण करता। (वे ऐसे चंचल एवं तेज़ हैं कि) जिन पर चढ़ कर आगे को तीर चलाने पर तीर एक तीर के फासले पर पीछे को ही पड़ते हैं (अर्थात् उन पर

चढ़ कर जो आगे को तीर चलाते हैं तो तीर घोड़ों से एक तीर के फासले पर पीछे रह जाते हैं, घोड़े तेज़ गति होने के कारण छूटे हुए तीर के लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने से पहले ही उससे कहीं आगे बढ़ जाते हैं।

विवरण—यहाँ प्रथम चरण में अनुप्रास एवं ललितोपमा, द्वितीय और तृतीय चरण में अनुप्रास एवं चतुर्थ प्रतीप तथा अन्तिम चरण में यमक एवं अत्युक्ति अलंकार होने से संकर अलंकार है।

ग्रंथालंकार नामावली

गीता छन्द*

उपमा अनन्वै कहि बहुरि, उपमा-प्रतीप प्रतीप।
उपमेय उपमा है बहुरि, मालोपमा कवि-दीप॥
ललितोपमा है बहुरि परिनाम पुनि उल्लेख।
सुमिरन भ्रमौ संदेह सुद्धापह्नुत्यौ सुभ-बेख॥३७३॥
हेतु अपह्नुत्यौ बहुरि परजस्तपह्नुति जान।
सुभ्रांतपूर्णअपह्नुत्यौ छेकअपह्नुति मान॥
बर कैतवापह्नुति गनौ उतप्रेक्ष बहुरि बखानि।
पुनि रूपकातिसयोक्ति भेदक अतिसयोक्ति सुजानि॥३७४॥
अरु अक्रमातिसयोक्ति चंचल अतिसयोक्तिहि लेखि।
अत्यन्त अतिसै उक्ति पुनि सामान्य चारु बिसेखि॥
तुलियोगिता दीपक अवृत्ति प्रतिवस्तुपम दृष्टान्त।
सु निदर्सना व्यतिरेक और सहोक्ति बरनत सान्त॥३७५॥
सु बिनोक्ति भूषन समासोक्तिहु परिकरौ अरु बंस।
परिकरि सुअंकुर स्लेष त्यों अप्रस्तुतौपरसंस॥
परयायउक्ति गनाइए व्याजस्तुतिहु आक्षेप।
बहुरो बिरोध बिरोधभास बिभावना सुख-खेप॥३७६॥

---

*गीता छन्द में २६ मात्राएँ होती हैं, १४, १२ पर यति होती है, अंत में गुरु लघु होते हैं।

सु बिसेषउक्ति असंभवौ बहुरे असङ्गति लेखि ।
पुनि विषम सम सुविचित्र प्रहषन अरु विषादन पेखि ॥
कहि अधिक अन्योन्यहु बिसेष ब्याघात भूषन चारु ।
अरु गुम्फ एकावली मालादीपकहु पुनि सारु ॥३७७॥
पुनि यथासंख्य बखानिए परयाय अरु परिवृत्ति ।
परिसंख्य कहत विकल्प हैं जिनके सुमति-सम्पत्ति ॥
बहुरयो समाधि समुच्चयो पुनि प्रत्यनीक बखानि ।
पुनि कहत अर्थापत्ति कबिजन काव्यलिंगहि जानि ॥३७८॥
अरु अर्थअंतरन्यास भूषन प्रौढ़ उक्ति गनाय ।
संभावना मिथ्याध्यवसितऽरु यों उलासहि गाय ॥
अवज्ञा अनुज्ञा लेस तद्‌गुन पूर्वरूप उलेखि ।
अनुगुन अतद्‌गुन मिलित उन्मीलितहि पुनि अवरेखि ॥३७९॥
सामान्य और विशेष पिहितौ प्रश्नउत्तर जानि ।
पुनि व्याजउक्तिरु लोकउक्ति सुछेकउक्ति बखानि ॥
बक्रोक्ति जान सुभावउक्तिहु भाविकौ निरधारि ।
भाविकछबिहु सु उदात्त कहि अत्युक्ति बहुरि बिचारि ॥३८०॥
बरने निरुक्तिहु हेतु पुनि अनुमान कहि अनुप्रास ।
भूषन भनत पुनि जमक गनि पुनरुक्तवद आभास ॥
युत चित्र संकर एकसत भूषन कहे अरु पाँच ।
लखि चारु ग्रंथन निज मतो युत सुकवि मानहु साँच ॥३८१॥

विवरण—पिछले वर्णन किये गये अलंकारों की सूची भूषण ने यहाँ दी है, जो कुल १०५ हैं ।

दोहा

सुभ सत्रहसै तीस पर, बुध सुदि तेरस मान ।
भूषन सिव-भूषन कियो, पढ़ियो सुनो सुजान† ॥३८२॥

---

† यहाँ मास नहीं लिखा है । महामहोपाध्याय पंडित श्री सुधाकर ने

अर्थ—भूषण कवि ने शुभ संवत् १७३० (श्रावण) सुदी तेरस बुधवार को यह 'शिवराज-भूषण' समाप्त किया। पण्डित लोग इसे पढ़ें और सुनें।

आशीर्वाद

मनहरण कवित्त

एक प्रभुता को धाम, दूजे तीनौ वेद काम,
रहैं पंच आनन षडानन सरवदा।
सातौ बार आठौ याम जाचक नेवाजै नव,
अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा॥
सिवराज भूषन अटल रहै तौलौं जौलौं,
त्रिदस भुवन सब, गंग औ नरमदा।
साहितनै साहसिक भौंसिला सुरज-बंस,
दासरथि राज तौलौं सरजा थिर सदा॥३८३॥

शब्दार्थ—तीनों वेद = ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। पञ्च आनन = पाँच मुखवाले, महादेव। षडानन = षट् आनन, कार्तिकेय, देवताओं के सेनापति। कृपन = कृपाण, तलवार। त्रिदस = देवता। साहसिक = साहसी। दासरथि = रामचन्द्र।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी एक तो प्रभुता के धाम रहें,

मिश्रबन्धुओं की प्रार्थना पर एक पंचांग संवत् १७३० का बनाया था जिसमें शुक्ला त्रयोदशी बुधवार, कार्तिक में १४ दंड ५५ पल थी और श्रावण में ३६ दंड ४० पल थी। जान पड़ता है कि श्रावण मास में ही यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था।

कई प्रतियों में इस दोहे की प्रथम पंक्ति का पाठ इस प्रकार है—

संवत् सतरह तीस पर, सुचि वदि तेरसि भान।

अर्थात् संवत् १७३० के आषाढ़ (या ज्येष्ठ क्योंकि शुचि ज्येष्ठ और आषाढ़ दोनों मासों को कहते हैं) की बदी त्रयोदश आदित्यवार के दिन शिवराज-भूषण समाप्त हुआ।

संसार में सदा शासन करें, दूसरे तीनों वेदों के अनुसार कार्य करें और सदा पंचानन महादेव के समान दानी रहें तथा षडानन (कार्तिकेय) की भाँति सेनापति रहें, असुरों का संहार करते रहें। सातों दिन, आठों पहर (चौबीसों घंटे) नये-नये याचकों को दान दें। गदाधारी विष्णु की भाँति इन कृपाणधारी शिवाजी का अवतार सदा स्थिर रहे। और शिवाजी का राज्य तब तक अटल रहे जब तक देवता, सब (चौदह) भुवन, गंगा और नर्मदा हैं, और सूर्यवंशी, साहसी, भौंसिला, शाहजी के पुत्र शिवाजी तब तक स्थिर रहें, जब तक पृथ्वी में राम-राज्य प्रख्यात है।

अलंकार—भूषण ने इस पद में एक से ले कर चौदह तक गिनती कही है एक, दूजै, तीनों, वेद (चार), पंच (पाँच), षड (छह), सातों, आठों, नव, अवतार (दस), शिव (ग्यारह), भूषन (बारह), त्रिदस (तेरह), भुवन (चौदह)। अतः यहाँ रत्नावली अलंकार है, अर्थात् यहाँ प्रस्तुतार्थ के वर्णन में अन्य क्रमिक पदार्थों के नाम भी यथाक्रम रखे गये हैं।

दोहा

पुहुमि पानि रवि ससि पवन, जब लौं रहै अकास।
सिव सरजा तब लौं जियौ, भूषन सुजस प्रकास ॥३८४॥

शब्दार्थ—पुहुमि = पृथ्वी। पानि = पानी।

अर्थ—भूषण कवि आशीर्वाद देते हैं कि जब तक पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और आकाश हैं, तब तक हे वीर-केसरी शिवाजी आप जीवित रहें और आपके सुयश का प्रकाश होवे।

पद्य-सूची